Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

भास - विरचितं

स्वप्नवासवदत्तम्

संस्कृत - हिन्दी - व्याख्या - समुपेतम्

डा॰ धर्मेन्द्र कुमार गुप्त

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

21

नदास - दिल्ली-६

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

Usha Satyavrat
Kamala Nehru
College.
New Delhi

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

महाकविभासविरचितं

स्वप्नवासवदत्तम्

श्रीविजयानन्दशास्त्रि 'खण्डूड़ी' कृत-विजयवैजयन्तीसमाख्य-
संस्कृतव्याख्या-हिन्दीभाषानुवाद-समुपेतम्

COMPLIMENTARY

भूमिका-टिप्पणी-परिशिष्टादि-लेखकः
संपादकश्च
डा० धर्मेन्द्रकुमार गुप्तः
शास्त्री, विद्यावाचस्पतिः, एम० ए०, एम० ओ० एल०, पी-एच० डी०
संस्कृतप्राध्यापकः, पंजाबीविश्वविद्यालयः,
पटियाला

भारत भारती

मेहरचन्द लछमनदास, दिल्ली-६

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

प्रकाशक
मेहरचन्द लछमनदास
अध्यक्ष—संस्कृत बुक-डिपो
२७३६, कूचा चेलाँ, दरियागंज, दिल्ली
विक्रयकेन्द्र : १, अन्सारी रोड, दरियागंज, दिल्ली-११०००६

मुद्रक
श्री भारत भारती प्राइवेट लिमिटेड, दरियागंज, दिल्ली

सर्वेऽधिकाराः प्रकाशकायत्ताः

प्रथमं संस्करणम्
१९७५ ई० (वि० सं० २०३२)

BHĀSA'S
SVAPNAVĀSAVADATTA
with Pt. Vijayānanda Śāstrī Khaṇḍūrī's **Vijaya-vaijayantī**
(Sanskrit commentary) and Hindi translation
Edited with critical introduction, exhaustive notes, and useful appendices
by
Dr DHARMENDRA KUMAR GUPTA

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

अवतरणिका

संस्कृत साहित्य में भास का विशिष्ट स्थान है; और भास के नाटकों में **स्वप्नवासवदत्त**, काव्यगुणों एवं नाटकीय तत्त्वों की दृष्टि से, निस्संदेह सर्वश्रेष्ठ कृति है। कथावस्तु की रोचकता और भाषा-शैली की सरसता एवं सरलता के कारण, यह नाटक संस्कृत के कतिपय लोकप्रिय नाटकों में प्रमुख स्थान रखता है। अनेक शताब्दियों की विस्मृति की गुहा से निकलने के पश्चात्, सन् १९१२ ई० में, यह नाटक पहली बार प्रकाश में आया, और तब से अब तक इसके अनेक संस्करण, अनुवाद एवं व्याख्याग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। भास-नाटकों एवं उनसे संबन्धित विविध समस्याओं पर अधिकारी विद्वानों द्वारा लिखी गई आलोचनात्मक सामग्री भी आज पुष्कल मात्रा में प्राप्त होती है। पिछले लगभग छः दशकों में भास-साहित्य और विशेषतः **स्वप्नवासवदत्त** पर किया गया कार्य भास की एवं भास-नाटकों में **स्वप्न-नाटक** की लोकप्रियता का ज्वलन्त प्रमाण है।

स्वप्नवासवदत्त के कतिपय संस्करण, पिछले कुछ दशकों में, छात्रों की परीक्षा-संबन्धी आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर तैयार किए गए हैं। इनमें से कुछ संस्करण हिन्दी माध्यम से संस्कृत का अध्ययन करने वाले छात्रों के उपयोग के लिए हैं। प्रस्तुत संस्करण भी इसी दिशा में एक प्रयास है। अन्य अनेक संस्करणों के रहते इस संस्करण की आवश्यकता क्यों पड़ी ?—इस स्वाभाविक प्रश्न का उत्तर पाने के लिए पाठक, कृपया, इसकी विषय-सूची पर एक दृष्टि डालें एवं इसके विविध अंशों का, गुणग्राहिणी समीक्षक-बुद्धि एवं तुलनात्मक दृष्टि से, अवलोकन करें।

प्रस्तुत संस्करण में उच्च श्रेणी के छात्रों एवं व्युत्पन्न छात्रों के विशेष उपयोग के लिए मूलपाठ के साथ, उसके नीचे, संस्कृत टीका दी गई है। पण्डित विजयानन्दशास्त्री 'खण्डूड़ी' द्वारा रचित यह टीका सरल, मूलानुसारिणी एवं भाव-बोधिनी है; अपने समय में यह संस्कृत माध्यम वाले छात्रों में अत्यन्त लोकप्रिय रही है। मूलपाठ के साथ, उसके सामने के पृष्ठ पर, हिन्दी अनुवाद दिया गया है। यह अनुवाद मूल शब्द का अनुगामी होते हुए भी उसमें निहित भाव का यथावत् संग्राहक है एवं हिन्दी भाषा की प्रकृति के सर्वथा अनुकूल है।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

ग्रन्थ के आरम्भ में विस्तृत समालोचनात्मक भूमिका दी गई है, जिसमें त्रिवेन्द्रम-नाटकों से संबन्धित प्रायः सभी समस्याओं पर, अद्यतन सामग्री का पूर्ण उपयोग करके, सरल किंतु समीक्षात्मक ढंग से विचार किया गया है। इसके अन्तर्गत, **स्वप्नवासवदत्त** के विशिष्ट संदर्भ में भास की नाट्यकला का, नाटकीय तत्त्वों के आधार पर, सुबोध मूल्यांकन भी किया गया है। नाटक के प्रमुख पात्रों का चरित्रचित्रण इस भूमिका का एक विशिष्ट अंश है।

नाटक के अन्त में विशद टिप्पणियाँ हैं। इन टिप्पणियों में व्याकरण, श्लोकान्वय, भाव, भावसौन्दर्य, काव्यसौष्ठव, अलंकारयोजना एवं व्याख्याभेद आदि से संबन्धित प्रायः सभी अपेक्षित सामग्री का, पृष्ठक्रम से, क्रमबद्ध संकलन है। **स्वप्नवासवदत्त**, और उसके माध्यम से भास, के हृदय को हृदयंगम करने में ये विपुल टिप्पणियाँ सहायक सिद्ध होंगी, ऐसी आशा है।

अन्त में कतिपय परिशिष्ट हैं जिनमें **स्वप्नवासवदत्त** में प्रयुक्त छन्दों का परिचय, नाटक में आए सुभाषितों का संकलन, इसमें प्रयुक्त विभिन्न नाट्य-शास्त्रीय पारिभाषिक शब्दों का व्याख्या-संकेत, मूल तथा सहायक ग्रन्थों की सूची एवं पद्यों की अनुक्रमणिका दी गई है।

प्रस्तुत ग्रन्थ की भूमिका, टिप्पणियों एवं परिशिष्टों के लेखन में मैंने इस विषय पर लिखी गई विविध रचनाओं से तथा **स्वप्नवासवदत्त** के विभिन्न संस्करणों के भूमिकाभाग से यथेष्ट सहायता ग्रहण की है, जिसके लिए मैं उनके विद्वान् लेखकों एवं संपादकों का हृदय से आभारी हूँ। ग्रन्थ के रुचिर प्रकाशन के लिए, मैसर्स मेहरचन्द लछमनदास, दिल्ली, के वर्तमान स्वत्वाधिकारी, श्री सुदर्शनकुमार एवं श्री राजेन्द्रकुमार, शतशः धन्यवाद के पात्र हैं।

पुस्तक में मुद्रण-संबन्धी कतिपय अशुद्धियों के संशोधन के लिए, कृपया, **गच्छतः स्खलनं क्वापि** का अवश्य अवलोकन करें।

—**संपादक**

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

विषय-सूची

अवतरणिका ... ... iii-iv

संक्षेपसूची vi

भूमिका ... ... vii-lvi

(संस्कृत साहित्य में भास की प्रसिद्धि vii ; त्रिवेन्द्रम से प्रकाशित तेरह नाटक और उनका भास-कर्तृकत्व ix ; भास का काल xvi ; जीवन और व्यक्तित्व xix ; भास के नाटक : सामान्य परिचय xix ; स्वप्नवासवदत्त का विशेष अध्ययन : कथावस्तु xxi ; कथा का मूल स्रोत एवं उसमें मौलिक उद्भावनाएँ xxv ; नाटकीय तत्त्वों के आधार पर स्वप्नवासवदत्त की समालोचना : कथावस्तु-योजना xxvii, चरित्रचित्रण xxx, संवाद xxxi, रस-परिपाक xxxii, प्रकृतिचित्रण xxxiv, शैली : अलंकार-योजना xxxiv, भाषा xxxvi, छन्दोयोजना xxxviii, नाट्यशिल्प तथा मञ्चयोग्यता xxxviii, जीवन-दर्शन तथा संदेश xl, उपसंहार xli ; प्रमुख पात्रों का चरित्रचित्रण : उदयन xli, वासवदत्ता xlv, पद्मावती xlix, यौगन्धरायण lii, वसन्तक liv)

नाटक के पात्र, नाटक में उल्लिखित अन्य पात्र ... lvi

स्वप्नवासवदत्त (मूलपाठ, संस्कृत टीका एवं हिन्दी अनुवाद) १–१२८

टिप्पणियाँ १२९–१८२

परिशिष्ट १८३-१९१

(**प्रथम** : नाटक में प्रयुक्त छन्द १८३; **द्वितीय** : नाटक में आए सुभाषित १८७; **तृतीय** : नाटक में प्रयुक्त पारिभाषिक शब्द १८८; **चतुर्थ** : मूल एवं सहायक ग्रन्थों की सूची १८९; **पञ्चम** : पद्यों की अकारादिक्रम से सूची १९१)

गच्छतः स्खलनं क्वापि (अशुद्धि-संशोधन) १९२

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

संक्षेप-सूची

अनु०	अनुमानतः, लगभग	प०	पञ्चमी विभक्ति
अव्य० स०	अव्ययीभाव समास	पर०	परस्मैपद, परस्मैपदी
आत्म०	आत्मनेपद, आत्मनेपदी	पा०	पाणिनि : अष्टाध्यायी
उ० पु०	उत्तम पुरुष	प्र०	प्रथमा विभक्ति
उभय०	उभयपदी	प्रतिज्ञा०	प्रतिज्ञायौगन्धरायण
एक०	एकवचन	प्र० पु०	प्रथम पुरुष
कर्मधा०	कर्मधारय तत्पुरुष	बहु०	बहुवचन
कुवलया०	कुवलयानन्द	बहु० स०	बहुव्रीहि समास
क्रियावि०	क्रियाविशेषण	म० पु०	मध्यम पुरुष
च०	चतुर्थी विभक्ति	शाकु०	(अभिज्ञान)शाकुन्तल
टि०	टिप्पणी	ष०	षष्ठी विभक्ति
तत्पु०	तत्पुरुष समास	स०	सप्तमी विभक्ति
तु०	तुलनीय, तुलना कर	साद०	साहित्यदर्पण
तृ०	तृतीया विभक्ति	स्त्री०	स्त्रीप्रत्यय; स्त्रीलिङ्ग
द्र०	द्रष्टव्य, देखें	स्वप्न०	स्वप्नवासवदत्त
द्वि०	द्वितीयाविभक्ति; द्विवचन		

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

भूमिका

संस्कृत नाटक-साहित्य में भास का महत्त्वपूर्ण स्थान है। भास को संस्कृत का प्रथम ज्ञात नाटककार माना जाता है जिसके कि नाटक आज उपलब्ध हैं। भास के नाटकों में नाट्यकला की न्यूनाधिक परिपक्वता यह सूचित करती है कि भास से पूर्व नाटक-साहित्य की परंपरा विद्यमान थी। स्पष्टतः इन नाटकों के परिपक्व स्वरूप ने इनसे पहले के प्रारम्भिक प्रयत्नों को उपेक्षा और विस्मृति की गुहा में निलीन कर दिया। नाट्यगुणों और संख्या—दोनों दृष्टियों से भास-नाटकों का संस्कृत साहित्य में विशिष्ट स्थान है। भास संस्कृत साहित्य का, संभवतः, एकमात्र नाटककार है जिसके इतने अधिक (तेरह) नाटक आज उपलब्ध हैं। विषयवस्तु की विविधता, पात्रों की बहुलता, सहज रसपरिपाक, भाषा की स्वाभाविकता एवं सरलता और नाट्यशिल्प के कौशल की दृष्टि से भी भास-नाटक संस्कृत साहित्य में महनीय स्थान के अधिकारी हैं। इतना होते हुए भी, यह दुर्भाग्य का विषय है कि, भास के जीवन, व्यक्तित्व, काल एवं कृतियों के संबन्ध में अभी तक अनिश्चय अथवा संदेह का धुँधला वातावरण बना हुआ है।

संस्कृत साहित्य में भास की प्रसिद्धि

वर्तमान शताब्दी के आरम्भ के कुछ वर्षों तक भास के संबन्ध में हमें केवल इतना ही ज्ञात था कि वह एक प्रसिद्ध नाटककार था और कि इस रूप में उसकी कीर्ति कालिदास (अनु० ४०० ई०; अन्य मत के अनुसार, पहली शती ई०पू०) से पूर्व फैल चुकी थी। हमारी यह जानकारी संस्कृत साहित्य में प्राप्त भास-संबन्धी निम्नलिखित संकेतों एवं उल्लेखों पर आधारित थी :

१. कालिदास ने अपने नाटक **मालविकाग्निमित्र** की प्रस्तावना में लिखा है : **प्रथितयशसां भाससौमिल्लककविपुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य वर्तमानकवेः कालिदासस्य क्रियायां कथं बहुमानः**, अर्थात् 'भास, सौमिल्लक, कविपुत्र, आदि ख्यातनामा लेखकों की कृतियों के रहते कौन मनुष्य वर्तमान कवि कालिदास की प्रस्तुत कृति के प्रति आदरवान् होगा ?'

२. बाणभट्ट (सातवीं शती ई० का पूर्वभाग) ने **हर्षचरित** के आमुख में भास की चर्चा करते हुए लिखा है : **सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः। सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव ॥** अर्थात् 'जिस प्रकार कोई व्यक्ति ऐसे मन्दिरों के निर्माण द्वारा यश प्राप्त करता है जिनका आरम्भ स्थपति के हाथों होता है, जिनमें अनेक मंज़िलें होती हैं एवं जिनके ऊपर पताकाएँ फहराती हैं, उसी प्रकार भास ने अपने ऐसे नाटकों से पुष्कल प्रसिद्धि प्राप्त की जिनका आरम्भ सूत्रधार

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

से होता है (नान्दी से नहीं), जिनमें पात्रों की संख्या प्रचुर है एवं जिनमें पताकाओं (=प्रासङ्गिक कथाओं) का भी सुचारु योग है।'

३. दण्डी (अनु० ७०० ई०) ने अपने गद्यकाव्य **अवन्तिसुन्दरीकथा** के आमुख में भास के संबन्ध में लिखा है : **सुविभक्तमुखाद्यङ्गैर्व्यक्तलक्षणवृत्तिभिः । परेतोऽपि स्थितो भासः शरीरैरिव नाटकैः ।।**, अर्थात् 'भास, दिवंगत होकर भी, शरीर-भूत अपने ऐसे नाटकों के माध्यम से जीवित है जिनमें मुख, प्रतिमुख आदि संधियों के अङ्ग भलीभांति विभक्त अर्थात् स्फुट हैं एवं जिनमें भूषण, अक्षरसंघात आदि नाट्यलक्षण तथा आरभटी आदि नाट्यवृत्तियां स्पष्ट हैं।'

४. वाक्पतिराज (आठवीं शती ई० का द्वितीय चरण) ने भास के संबन्ध में लिखा है : **भासम्मि जलणमित्ते कुंतीदेवे अ जस्स रहुआरे। सोबंधवे अ बंधम्मि हारियंदे अ आणंदो ।।** [संस्कृतच्छाया : **भासे ज्वलनमित्रे कुन्तीदेवे च यस्य रघुकारे। सौबन्धवे च बन्धे हारिचन्द्रे चानन्दः ।।**] (गउडवहो), अर्थात् 'जो अग्नि के मित्र भास के नाटकों में, कुन्तीदेव एवं कालिदास की कृतियों में तथा हरिचन्द्र के गद्यकाव्यों में आनन्दानुभूति प्राप्त करता है,······।'

५. राजशेखर (अनु० ९०० ई०) ने भास का उल्लेख करते हुए कहा है : **भासनाटकचक्रेऽपि च्छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम् । स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः ।।**, अर्थात् 'विदग्ध आलोचकों ने भास के नाटकों के परीक्षण के लिए जब उन्हें अग्नि में झोंक दिया, तब उनमें से **स्वप्नवासवदत्त** को अग्नि न जला सकी; दूसरे शब्दों में, उक्त नाटक अग्निपरीक्षा में खरा उतरा।' एक अन्य पद्य में राजशेखर ने अपने पूर्ववर्ती कवियों का नामोल्लेख करते हुए उनमें भास को सर्वप्रथम स्थान दिया है। यह पद्य है : **भासो रामिलसोमिलौ वररुचिः श्रीसाहसाङ्कः कविर्मेण्ठो भारविकालिदासतरलाः स्कन्दः सुबन्धुश्च यः । दण्डी बाणदिवाकरौ गणपतिः कान्तश्च रत्नाकरः सिद्धा यस्य सरस्वती भगवती के तस्य सर्वेऽपि ते ।।**

६. जयदेव (अनु० १२०० ई०) ने अपने **प्रसन्नराघव** नाटक की प्रस्तावना में कहा है : **यस्याश्चोरश्चिकुरनिकरः कर्णपूरो मयूरो भासो हासः कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः । हर्षो हर्षो हृदयवसतिः पञ्चबाणस्तु बाणः केषां नैषा कथय कविताकामिनी कौतुकाय ।।** इसमें निहित रूपक-योजना के अनुसार, भास कविता-कामिनी का हास है, जब कि चोरकवि उसका केशकलाप, मयूर उसका कर्णपूर, कालिदास उसका विलास, हर्ष उसका हर्ष एवं बाण उसके हृदय में निवास करने वाला कामदेव है।

भास से संबद्ध उक्त उल्लेखों के अतिरिक्त उसके नाम से प्रसिद्ध लगभग तेरह पद्य संस्कृत के सूक्तिसंग्रहों में प्राप्त होते हैं। इस शती के आरम्भ के कुछ वर्षों तक भास के संबन्ध में हमारी जानकारी केवल उपरिनिर्दिष्ट मात्र थी।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

त्रिवेन्द्रम से प्रकाशित तेरह नाटक और उनका भास-कर्तृकत्व

सन् १९०९ ई० में महामहोपाध्याय टी० गणपति शास्त्री को त्रावणकोर (वर्तमान केरल) राज्य में पद्मनाभपुरम् के निकट मणलिक्कर मठ से ताड़पत्रों पर लिखित, लगभग तीन सौ वर्ष प्राचीन, एक पाण्डुलिपि प्राप्त हुई। मलयालम लिपि में लिखित इस पाण्डुलिपि में १०५ पत्र थे जिनमें निम्नलिखित दस नाटक लेखबद्ध थे : **स्वप्न-नाटक (-वासवदत्त)**, **प्रतिज्ञा(यौगन्धरायण)**, **पञ्चरात्र**, **चारुदत्त**, **दूतघटोत्कच**, **अविमारक**, **बालचरित**, **मध्यमव्यायोग**, **कर्णभार**, और **ऊरुभङ्ग**। बाद की खोजों में तीन अन्य नाटक—**अभिषेक**, **प्रतिमा** और **दूतवाक्य**—उपलब्ध हुए। इन नाटकों का प्रकाशन गणपति शास्त्री ने १९१२ और १९१५ ई० के बीच त्रिवेन्द्रम से किया। उन्होंने बाण और राजशेखर के उपरिनिर्दिष्ट उल्लेखों के आधार पर इन नाटकों को भास-कृत माना।

उक्त नाटकों के लेखक के प्रश्न पर विस्तृत चर्चा करने से पूर्व इस समस्या का समाधान आवश्यक है कि ये नाटक एक ही लेखक की कृतियाँ हैं अथवा एकाधिक लेखकों की। इन नाटकों में प्राप्त कतिपय समानताओं के आधार पर इन्हें एक ही लेखक की कृतियाँ माना जाता है। ये समानता-सूत्र ये हैं :

१. इन नाटकों का आरम्भ **नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः** इस नाट्य-निर्देश से होता है, एवं तदनन्तर इनमें मङ्गल-श्लोक आता है। इस प्रकार ये सभी नाटक 'सूत्रधार-कृतारम्भ' हैं। संस्कृत के प्रायः अन्य नाटकों में मङ्गल-श्लोक अथवा -श्लोकों के अनन्तर ही उक्त नाट्यनिर्देश आता है।

२. इन नाटकों में आमुख के लिए 'स्थापना' शब्द का प्रयोग मिलता है, जबकि संस्कृत के प्रायः अन्य नाटकों में इसके लिए 'प्रस्तावना' शब्द आता है।[1]

३. इन नाटकों का आमुख संक्षिप्त है एवं उसमें प्ररोचना[2] का अभाव है।

४. प्रायः इन सभी नाटकों में पात्रों की प्रचुर संख्या है; इस प्रकार ये नाटक बाण के शब्दों में 'बहुभूमिक' कहे जा सकते हैं।

५. चार नाटकों—**स्वप्न०**, **प्रतिज्ञा०**, **पञ्चरात्र** और **प्रतिमा**—के मङ्गल-श्लोकों में संबद्ध नाटक के प्रमुख पात्रों का नामनिर्देश प्राप्त होता है, जहाँ मुद्रा अलंकार की सुन्दर स्थिति दृष्टिगोचर होती है (द्र० **उदयनवेन्दु०**, १.१, पर टि०)।

---

१. इसके अपवादस्वरूप, कुछ अन्य नाटक भी ऐसे हैं जिनमें 'प्रस्तावना' के स्थान पर 'स्थापना' शब्द का प्रयोग मिलता है। ये नाटक हैं महेन्द्रविक्रमवर्मा का मत्तविलासप्रहसन, शूद्रक, ईश्वरदत्त आदि के भाण (चतुर्भाणी), शक्तिभद्र-कृत आश्चर्यचूडामणि एवं कुछ अन्य दक्षिण भारतीय नाटक (कल्याणसौगन्धिक, तपतीसंवरण, सुभद्राधनंजय आदि)।

२. लेखक एवं नाटक के नाम के नाटकीय निर्देश द्वारा प्रस्तुत अभिनेय वस्तु अथवा नाटक की प्रशंसा करके श्रोताओं को उस ओर प्रवृत्त करने का प्रयास प्ररोचना कहलाता है; तु० साद० ६ ३० वृत्ति : 'प्रस्तुताभिनयेषु प्रशंसातः श्रोतॄणां प्रवृत्त्युन्मुखीकरणं प्ररोचना'।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

६. प्रायः सभी नाटकों की स्थापना में नाटकीय वस्तु की अवतारणा के लिए **'एवमार्यमिश्रान् विज्ञापयामि। अये किं नु खलु मयि विज्ञापनव्यग्रे शब्द इव श्रूयते ? अङ्ग पश्यामि।'** इस प्रस्तावना-प्रकार का, जिसे नाटकीय परिभाषा में प्रयोगातिशय कहते हैं (द्र० पृ० १३४), प्रयोग किया गया है।

७. दो नाटकों—**चारुदत्त** और **दूतघटोत्कच** (जिनमें भरतवाक्य नहीं है)—को छोड़कर, सभी नाटकों का भरतवाक्य प्रायः समान है जो इस प्रकार है : **इमां सागरपर्यन्तां हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम्। महीमेकातपत्राङ्कां राजसिंहः प्रशास्तु नः॥**

८. प्रायः सभी नाटकों में प्रतिबिम्बित सामाजिक जीवन में अपूर्व समानता है। सभी नाटक ब्राह्मणधर्म एवं उसके अन्तर्गत वैष्णव संप्रदाय के प्रभाव की सूचना देते हैं। प्रायः सभी नाटकों में ब्राह्मणों के प्रति आदरभाव व्यक्त है। कतिपय नाटकों में मातृमूलक नाम अथवा विशेषण पद की योजना है; यथा—**यादवीमातः, शौरसेनीमातः, वैदेहीपुत्रः, कौसल्यामातः** आदि। संगीत-प्रेम की अभिव्यक्ति भी एकाधिक नाटकों में समान है।

९. इन नाटकों में पताकास्थानक एवं अन्य नाटकीय युक्तियों (devices) का प्रचुर प्रयोग प्राप्त होता है, एवं इनके प्रयोग में, प्रकार और प्रभाव की दृष्टि से, पर्याप्त समानता दीख पड़ती है।

१०. इन नाटकों में कतिपय नाटकीय स्थितियों (situations) एवं दृश्यों (scenes) के अङ्कन में पर्याप्त साम्य लक्षित होता है; उदाहरणतः (१) **बालचरित** के तृतीय अङ्क का गोपाल-दृश्य **पञ्चरात्र** के द्वितीय अङ्क के प्रारम्भिक दृश्य से मेल खाता है; (२) **प्रतिज्ञा०** में महासेन की अपनी पुत्री के लिए योग्य वर की चिन्ता का अङ्कन **अविमारक** के प्रथम अङ्क में अङ्कित तत्समान स्थिति का संशोधित रूप है; (३) **प्रतिज्ञा०** और **स्वप्न०** दोनों नाटकों का संबन्ध उदयन-कथा से है; पहले नाटक में इस कथा का पूर्वभाग वर्णित है तथा दूसरे में उत्तर-भाग; (४) इसी प्रकार **प्रतिमा** और **अभिषेक** नाटकों में भी कथासाम्य एवं स्थिति-साम्य है; (५) **चारुदत्त** एवं **अविमारक** में वर्णित रात के समय नगर का दृश्य परस्पर समान है; (६) **प्रतिमा, प्रतिज्ञा०, मध्यमव्यायोग, दूतवाक्य, पञ्चरात्र** एवं **स्वप्न०** में मञ्च पर पाद्योदक उपस्थापित करने का प्रायः समान दृश्य अङ्कित है; (७) अग्नि का दृश्य अथवा उसका संकेत अनेक नाटकों में है जिसके आधार पर इनके लेखक को 'ज्वलन-मित्र' कहा जा सकता है (तु० भास के संबन्ध में वाक्पतिराज का कथन, पृ० viii); (८) स्वराज्य की पुनःप्राप्ति का वर्णन अनेक नाटकों का विषय है।

११. कतिपय नाटकों में मध्यवर्ग एवं निम्नवर्ग के पात्रों में नामसाम्य प्राप्त होता है। उदाहरणतः, **प्रतिज्ञा०** और **दूतवाक्य** में संबन्धित राजकुल के काञ्चुकीय का नाम बादरायण है। इसी प्रकार, **स्वप्न०, प्रतिज्ञा०, अभिषेक** और

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

प्रतिमा में आने वाली प्रतीहारी का नाम विजया है तथा **पञ्चरात्र** और **बालचरित** में आने वाले गोपालों का नाम वृषभदत्त और कुम्भदत्त है।

१२. इन नाटकों में उपमान-योजना और बिम्ब-योजना की दृष्टि से यथेष्ट साम्य दृष्टिगोचर होता है। उदाहरणार्थ, नक्षत्रों एवं उनके मध्य चन्द्रमा की उपमान के रूप में योजना **स्वप्न०, दूतवाक्य, प्रतिमा, अभिषेक** एवं **मध्यमव्यायोग** में प्राप्त होती है। **स्वप्न०** में इसका उदाहरण है : **ततो निष्क्रान्ते राजनि प्रोषितनक्षत्रचन्द्रमिव नभोऽरमणीयः संवृत्तः स ग्रामः** (पृ० ३०)।

१३. इन नाटकों में भावों, विचारों एवं शब्दों के प्रयोग में भी यत्र-तत्र साम्य दृष्टिगोचर होता है। उदाहरणतः, **प्रायेण हि नरेन्द्रश्रीः सोत्साहैरेव भुज्यते** (**स्वप्न०** ६.७) यह भाव, कुछ भिन्न शब्दों में, **चारुदत्त, दूतवाक्य** एवं **पञ्चरात्र** में भी व्यक्त हुआ है। इसी प्रकार, **किं वक्ष्यतीति हृदयं परिशङ्कितं मे**, जो **स्वप्न०** में दो बार (पृ० १०८, १२०) आया है, **अभिषेक** (४.७) में पुनरावृत्त हुआ है। **लिम्पतीव तमोऽङ्गानि** इत्यादि श्लोक **बालचरित** (१.१५) और **चारुदत्त** (१.१६) दोनों में आया है। **धर्मस्नेहान्तरे न्यस्ता** यह श्लोकांश **प्रतिज्ञा०** (२.७) और **अभिषेक** (६.२३) दोनों में है। **अलमिदानीं भवानतिमात्रं संतप्य** यह वाक्य **स्वप्न०** (पृ० १०६), **अविमारक** एवं **चारुदत्त** नाटकों में आया है। कुछ अन्य वाक्य-वाक्यांश हैं **कः कालः [त्वामन्विष्यामि]** (**स्वप्न०** पृ० ४२, **प्रतिमा, चारुदत्त**); **अकरुणाः खल्वीश्वराः** (**स्वप्न०** पृ० ४४, ६२, **अभिषेक**)। कतिपय नाटकों में प्राप्त कुछ अन्य विशिष्ट प्रयोग हैं **यवनिका** ('घूंघट' या 'परदे' के अर्थ में)—**स्वप्न०** (पृ० १२४), **प्रतिमा, ऊरुभङ्ग** और **अविमारक** में, **विस्मित** ('अभिमानी' के अर्थ में)—**स्वप्न०** (पृ० ६), **दूतवाक्य** और **पञ्चरात्र** में, **व्यपा** √**श्रि** ('प्रार्थना या याचना करने' के अर्थ में)—**स्वप्न०** (पृ० १८), **मध्यमव्यायोग** और **पञ्चरात्र** में, **दूतसंपात**—**स्वप्न०** (पृ० १४) और **अविमारक** में, **सुमनोवर्णकम्**—**स्वप्न०** (पृ० ५२) और **अविमारक** में; **दारुपर्वतकः**—**स्वप्न०** (पृ० ६०) और **अविमारक** में।

१४. इन सभी नाटकों में अनुष्टुभ् छन्द के प्रति विशेष आग्रह लक्षित होता है। अन्य विशिष्ट छन्द वसन्ततिलका और शार्दूलविक्रीडित हैं जो प्रायः सभी नाटकों में प्रचुर संख्या में प्रयुक्त हैं।

१५. इन सभी नाटकों में अपाणिनीय प्रयोगों की पर्याप्त संख्या है। प्राकृत व्याकरण संबन्धी अशुद्धियाँ भी इन नाटकों में पर्याप्त मात्रा में हैं।

१६. भाषा-शैली, संवाद-योजना आदि की दृष्टि से भी इन नाटकों में परस्पर पर्याप्त साम्य है। अनुप्रास और यमक के प्रति विशेष आग्रह प्रायः सभी नाटकों में लक्षित होता है। छोटे-छोटे संवादों की योजना भी प्रायः सभी नाटकों की समान विशेषता है।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

उपरिनिर्दिष्ट समानता के सूत्रों के आधार पर टी० गणपति शास्त्री, डा० ए०बी० कीथ, डा० लक्ष्मणस्वरूप, डा० ए०डी० पुसालकर तथा प्रो० सी० आर० देवधर आदि प्रमुख विद्वानों का मत है कि उक्त सभी नाटक एक ही लेखक की कृतियाँ हैं। फिर भी कुछ विद्वान्, यथा डा० सी० कुन्हन राजा, इस आधार पर इन नाटकों के अभिन्नकर्तृक होने में संदेह करते हैं कि एक ही नाटककार द्वारा इतने अधिक नाटकों की रचना असंभावित है, क्योंकि संस्कृत के किसी एक नाटककार द्वारा लिखित नाटकों की अधिकतम संख्या तीन है—वैसे साधारणतः एक नाटककार का एक ही नाटक प्राप्त होता है। स्पष्टतः इस युक्ति में कोई विशेष बल नहीं है।

यह सिद्ध हो जाने पर कि उक्त सभी नाटक अभिन्नकर्तृक हैं, अब केवल इस प्रश्न का समाधान शेष रह जाता है कि इन नाटकों का वह 'अभिन्न कर्ता' कौन है। आज प्रायः सभी विद्वान् भास को इन नाटकों का 'अभिन्न कर्ता' मानते हैं। इस मत की पुष्टि में सबसे बड़ी युक्ति यह है कि इन नाटकों में से एक नाटक, अर्थात् स्वप्न०, निस्संदेह भास की रचना है। स्वप्न० के भास-कृत होने में निम्नलिखित प्रमाण प्रस्तुत किए जाते हैं :

१. राजशेखर (अनु० ९०० ई०) ने निम्नांकित पद्य में भास के नाटक-चक्र के अन्तर्गत स्वप्न० का स्पष्ट उल्लेख किया है : **भासनाटकचक्रेऽपि च्छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम्। स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः॥** (सूक्तिमुक्तावली में उद्धृत।)

२. रामचन्द्र-गुणचन्द्र (बारहवीं शती ई० का अन्त) ने अपने **नाट्यदर्पण** में **स्वप्न०** को भास-कृत कहा है। **नाट्यदर्पण** से संबद्ध उद्धरण इस प्रकार है : **यथा भासकृते स्वप्नवासवदत्ते शेफालिकाशिलातलमवलोक्य वत्सराजः—पादाक्रान्तानि पुष्पाणि सोष्म चेदं शिलातलम्। नूनं काचिदिहासीना मां दृष्ट्वा सहसा गता॥** यह पद्य यद्यपि नाटक की पाण्डुलिपि में नहीं मिलता, तथापि नाटक में, चतुर्थ अङ्क के तीसरे श्लोक के बाद, राजा और विदूषक के माधवी-लतामण्डप में बैठने के अनन्तर, राजा की उक्ति के रूप में, इस पद्य की स्वाभाविक स्थिति मानी जा सकती है (द्र० प्रस्तुत संस्करण, पृ० ६४-६६)। प्रतीत होता है कि लिपिकर्ता के प्रमाद से अथवा अन्य किसी कारण से उक्त पद्य पाण्डुलिपि में स्थान पाने से रह गया।

उपर्युक्त प्रमाण यह सिद्ध करते हैं कि **स्वप्न०** भास की रचना है, परंतु कुछ विद्वान् आज उपलब्ध **स्वप्न०** की प्रामाणिकता पर संदेह प्रकट करते हैं। उनके संदेह का आधार यह है कि प्राचीन ग्रन्थों में '**स्वप्न०** से उद्धृत' पद्य और गद्य-भाग एवं कुछ अन्य बातें वर्तमान **स्वप्न०** में उपलब्ध नहीं होतीं। उदाहरणतः —

१. अभिनवगुप्त (अनु० ९८०--१०२० ई०) ने **ध्वन्यालोक** पर लिखी अपनी **लोचन** टीका में **स्वप्न०** से निम्नलिखित पद्य को उद्धृत किया है :

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

संचितपक्ष्मकवाटं नयनद्वारं स्वरूपतडनेन। उद्घाट्य सा प्रविष्टा हृदयगृहं मे नृपतनूजा ॥ यह पद्य वर्तमान **स्वप्न०** में उपलब्ध नहीं होता और इसे नाटक में कहीं व्यवस्थापित भी नहीं किया जा सकता।

२. शारदातनय (बारहवीं शती ई०) ने अपने **भावप्रकाश** में प्रशान्त नाटक के वर्णन-प्रसङ्ग में **स्वप्न०** से निम्नलिखित श्लोक उद्धृत किया है : **पद्मावत्या मुखं वीक्ष्य विशेषकविभूषितम् । जीवत्यावन्तिकेत्येतज्ज्ञातं भूमिभुजा यथा ॥** यह श्लोक भी वर्तमान **स्वप्न०** में अनुपलब्ध है।

३. सागरनन्दी (तेरहवीं-चौदहवीं शती ई०) ने अपने **नाटकलक्षणरत्नकोश** में लिखा है : **यथा स्वप्नवासवदत्ते, [नेपथ्ये] सूत्रधारः [उत्सारणां श्रुत्वा पठति]—अये कथं तपोवनेऽप्युत्सारणा ? [विलोक्य] कथं मन्त्री यौगन्धरायणो वत्सराजस्य राज्यप्रत्यायनं कर्तुकामः पद्मावतीयजनेनोत्सार्यते।** यह पाठ वर्तमान **स्वप्न०** में उपलब्ध पाठ से मेल नहीं खाता।

४. **अमरकोशटीकासर्वस्व** के लेखक सर्वानन्द (बारहवीं शती ई०) के अनुसार, मूल **स्वप्न०** का संबन्ध उदयन और वासवदत्ता के विवाह की कथा से था, परन्तु वर्तमान **स्वप्न०** की कथा उदयन और पद्मावती के विवाह से संबन्धित है।

परन्तु पाठ-संबन्धी उक्त विषमताओं (discrepancies) का समाधान संभव है, एवं उस समाधान के आधार पर तथा कुछ अन्य प्रमाणों के बल पर यह कहा जा सकता है कि आज उपलब्ध **स्वप्न०** एक प्रामाणिक रचना है। उक्त विषमताओं के समाधान में कहा जा सकता है कि (१) अभिनवगुप्त द्वारा उद्धृत पद्य को नाटक के स्वप्न-दृश्य में **वयस्य, प्रियमावेदये । धरते खलु वासवदत्ता** (पृ० ९६) के बाद स्थान दिया जा सकता है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि अभिनवगुप्त ने **अभिनवभारती** में **स्वप्न०** में (कन्दुक)क्रीडा का उल्लेख किया है जो वर्तमान **स्वप्न०** के द्वितीय अङ्क (पृ० ३४-३६) में प्राप्त होता है; (२) शारदातनय द्वारा उद्धृत पद्य को, **ज्ञातं भूमिभुजा यथा** के स्थान पर **ज्ञातमेव पुरा मया** पढ़कर, वर्तमान **स्वप्न०** में ५.८ (**शय्यायामवसुप्तं**, पृ० ९६) के अनन्तर रखा जा सकता है; (३) सागरनन्दी के उद्धरण के संबन्ध में कहा जा सकता है कि या तो उसने अपनी स्मृति के आधार पर उक्त अंश को गलत उद्धृत किया है या उसके उद्धरण का आधार **स्वप्न०** का कोई दूसरा संस्करण अथवा रूपान्तर है; (४) **अमरकोशटीकासर्वस्व** में उपलब्ध पाठ स्पष्टतः अशुद्ध है। उसका अपेक्षित संशोधन[3] करके पढ़ने पर यह सिद्ध होगा कि

३. उपलब्ध पाठ : 'द्वितीयः स्वदिशमात्मसात्कर्तुमुदयनस्य पद्मावतीपरिणयोऽर्थशृङ्गारः । तृतीयः स्वप्नवासवदत्ते तस्यैव वासवदत्तापरिणयः कामशृङ्गारः ।' संशोधित पाठ द्वितीयः स्वदिशमात्मसात्कर्तुमुदयनस्य पद्मावतीपरिणयोऽर्थशृङ्गारः स्वप्नवासवदत्ते । तृतीयस्तस्यैव वासवदत्तापरिणयः कामशृङ्गारः ।'

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

उसके अनुसार **स्वप्न०** की कथा का संबन्ध उदयन और पद्मावती के विवाह से है।

स्वप्न० की प्रामाणिकता के संबन्ध में कुछ अन्य प्रमाण ये हैं : (१) भोज (१०००-१०५० ई०) ने अपने **शृङ्गारप्रकाश** में **स्वप्न०** की कुछ घटनाओं (यथा, उदयन द्वारा अस्वस्थ पद्मावती को देखने समुद्रगृह जाना, वहाँ उसे न पाकर उसकी शय्या पर सो जाना तथा सपने में वासवदत्ता को देखकर उससे बातें करना) का उल्लेख किया है, जो वर्तमान **स्वप्न०** में उसी क्रम से वर्णित हैं; (२) किसी अज्ञातनामा टीकाकार की **शाकुन्तलव्याख्या** (चौदहवीं शती ई०) में '**स्वप्न०** से उद्धृत' निम्नलिखित अंश वर्तमान **स्वप्न०** (पृ० २) में उपलब्ध होता है : **एवमार्यमिश्रान् विज्ञापयामि। अये, किं नु खलु मयि विज्ञापनव्यग्रे शब्द इव श्रूयते? अङ्ग पश्यामि। [नेपथ्ये] उस्सरह उस्सरह अय्या उस्सरह।**

उक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि वर्तमान **स्वप्न०** एक प्रामाणिक रचना है। इसके अतिरिक्त किसी अन्य भास-कृत **स्वप्न०** की कल्पना के लिए कोई ठोस आधार नहीं है। हाँ, यह संभव है कि **स्वप्न०** के वर्तमान संस्करण के अतिरिक्त एकाध अन्य संस्करण अथवा रूपान्तर भी रहे हों। इस बात की भी संभावना की जा सकती है कि वर्तमान **स्वप्न०** मूल **स्वप्न०** का, अभिनय के प्रयोजन से किया गया, कुछ परिवर्तित संस्करण हो। त्रिवेन्द्रम से प्रकाशित अन्य नाटकों के संबन्ध में भी यही बात कही जा सकती है।

एक ओर **स्वप्न०** को भास-कृत मान लेने पर एवं दूसरी ओर त्रिवेन्द्रम से प्रकाशित उक्त सभी नाटकों को अभिन्नकर्तृक मान लेने पर यह बात स्वतः सिद्ध हो जाती है कि उक्त नाटक भास की कृतियाँ हैं। इस मत की पुष्टि में निम्नलिखित अतिरिक्त प्रमाण भी हैं :

१. बाण ने भास-संबन्धी अपने पद्य (पृ० vii पर उद्धृत) में भास-नाटकों के जिन तत्त्वों का निर्देश किया है वे इन नाटकों में प्राप्त होते हैं। बाण द्वारा निर्दिष्ट ये तत्त्व हैं : (क) सूत्रधार द्वारा नाटकों का आरम्भ, (ख) पात्रों की अधिकता, और (ग) पताकाओं अर्थात् प्रासङ्गिक कथाओं की योजना। इनमें से प्रथम तत्त्व के संबन्ध में कुछ विद्वानों का मत है कि यह बात केवल भास-कृत नाटकों के संबन्ध में ही नहीं कही जा सकती, क्योंकि दक्षिण भारत के कुछ अन्य नाटक भी (यथा, **तपतीसंवरण**, **सुभद्राधनंजय**, **मत्तविलासप्रहसन**, **आश्चर्यचूडामणि**, **चतुर्भाणी** आदि) सूत्रधार से आरम्भ होते हैं, तथा कालिदास, हर्ष आदि के नाटकों की दक्षिण से प्राप्त पाण्डुलिपियाँ भी सूत्रधार से आरम्भ होती हैं। परंतु इस अतिव्याप्ति के समाधान के रूप में कहा जा सकता है कि ऊपर उल्लिखित **तपतीसंवरण** आदि नाटकों (जो प्रायः सभी बाण के बाद के हैं) के लेखकों के संबन्ध में किसी प्रकार के संदेह का अवसर नहीं है।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

२. दण्डी ने **अवन्तिसुन्दरीकथा** के प्रस्तावना-भाग के एक पद्य (पृ० viii पर

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

उद्धृत) में भास-नाटकों की निम्नलिखित विशेषताओं की ओर संकेत किया है : (क) मुख, प्रतिमुख आदि संधियों के विविध अङ्गों की स्पष्टता, (ख) भूषण, अक्षरसंघात आदि छत्तीस नाट्यलक्षणों का स्पष्ट प्रयोग, और (ग) आरभटी, कैशिकी, सात्वती और भारती वृत्तियों की सुस्पष्ट योजना। दण्डी द्वारा निर्दिष्ट ये विशिष्टताएँ आलोच्य नाटकों में प्राप्त होती हैं।

३. वाक्पतिराज ने अपने एक पद्य (पृ० viii पर उद्धृत) में भास को 'ज्वलन-मित्र' अर्थात् अग्नि का मित्र कहा गया है। आलोच्य नाटकों में अग्नि-संबन्धी अनेक प्रसङ्ग एवं प्रचुर संकेत प्राप्त होते हैं,[४] जिन्हें देखते हुए इनके लेखक को 'ज्वलन-मित्र' कहना सर्वथा उपयुक्त प्रतीत होता है।

४. जयदेव ने अपने एक पद्य (पृ० viii पर उद्धृत) में भास को 'कविता-कामिनी का हास' कहा है। आलोच्य नाटकों में हास्य-विनोद के अनेक सुन्दर प्रसङ्ग हैं एवं हास्य रस का यथेष्ट परिपाक है।

कुछ विद्वान् (यथा, ए० के० पिशारोटि एवं कुप्पुस्वामी शास्त्री) शक्तिभद्र के नाटक **आश्चर्यचूडामणि** और त्रिवेन्द्रम-नाटकों—विशेषतः रामकथा पर आधारित तीन नाटकों—के बीच कुछ समानता-सूत्रों के आधार पर इन नाटकों को शक्तिभद्र-कृत मानने का प्रस्ताव करते हैं, परंतु इस मत की पुष्टि में कोई ठोस प्रमाण नहीं है। वास्तव में शक्तिभद्र भास से प्रभावित लेखक है। कुछ अन्य विद्वान् (यथा, ए० आर० सरस्वती एवं के० जी० शंकर) **चारुदत्त** को शूद्रक के **मृच्छकटिक** का संक्षिप्त रूप मानकर कुछ त्रिवेन्द्रम-नाटकों को शूद्रक-रचित प्रतिपादित करते हैं, परंतु वास्तव में **मृच्छकटिक चारुदत्त** का संशोधित एवं परिवर्धित रूप है, **चारुदत्त मृच्छकटिक** का संक्षिप्त रूप नहीं। दूसरी बात यह है कि ये दोनों कृतियाँ समकालीन नहीं मानी जा सकतीं। **मृच्छकटिक** इन दोनों में निश्चयतः बाद की रचना है, और उसका लेखक शूद्रक किसी भी स्थिति में त्रिवेन्द्रम-नाटकों का कर्ता नहीं माना जा सकता।

डा० सी० कुन्हन राजा ने इन नाटकों के कतिपय प्राकृत गद्यपद्यांशों के, और विशेषतः कुछ शब्दों के विशिष्ट प्रयोग के, आधार पर इन नाटकों पर केरल प्रदेश का प्रभाव मानकर इन्हें चाक्यारों अर्थात् केरल के परंपरागत नटों अथवा किन्हीं केरल-प्रदेशीय नाटककारों द्वारा विरचित बताया है। इसी प्रकार, कुप्पुस्वामी शास्त्री ने इन नाटकों में 'संबन्ध' शब्द के प्रयोग में मलाबार में प्रचलित 'संबन्ध' नामक विवाह-प्रकार के प्रति संकेत माना है। परन्तु दूसरी ओर कुछ अन्य विद्वान् इन नाटकों पर केरल-प्रदेश का प्रभाव नहीं देखते, और न ही वे

४. तु० स्वप्न० पृ० २४ प्रभृति (लावाणक-दाह), पञ्चरात्र १.६-१६, बालचरित २.२४, दूतवाक्य ३२, दूतघटोत्कच २२। अभिषेक और अविमारक में अग्नि का पुरुषपात्र के रूप में प्रवेश है।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

चाक्यार नटों को इन नाटकों का कर्ता मानते हैं। अधिक से अधिक इतना ही कहा जा सकता है कि चाक्यार नटों ने रङ्गमञ्च की सुविधा की दृष्टि से इन नाटकों में जहाँ-तहाँ कुछ परिवर्तन मात्र किया है, जैसा कि उन्होंने संस्कृत के कुछ अन्य नाटकों (यथा, **मृच्छकटिक, अभिज्ञानशाकुन्तल, नागानन्द** आदि) में भी किया है।

भास का काल

भास का काल संस्कृत साहित्य के इतिहास का संभवतः सर्वाधिक विवादपूर्ण विषय है। इस संबन्ध में विशेषतः उल्लेखनीय बात यह है कि विविध विद्वानों द्वारा निर्दिष्ट भास के काल में एक-दो शताब्दियों का अन्तर न होकर लगभग सोलह शताब्दियों का महान् अन्तर है। जहाँ एक ओर टी० गणपति शास्त्री एवं हरप्रसाद शास्त्री आदि विद्वान् छठी से चौथी शती ई०पू० में भास की स्थिति मानते हैं, वहाँ रामावतार शर्मा एवं रंगाचार्य शास्त्री आदि लेखक त्रिवेन्द्रम-नाटकों को दसवीं-ग्यारहवीं शती ई० में विरचित मानते हैं। इन दो काल-सीमाओं के बीच भी विविध विद्वानों ने विभिन्न ई० अथवा ई० पू० शताब्दियों को इन नाटकों का रचनाकाल माना है। इन नाटकों का रचनाकाल ईसा के पूर्व मानने वाले विद्वानों में, ए०डी० पुसालकर एवं वी०आर०आर० दीक्षितार पाँचवीं-चौथी शती ई०पू० को, आर०वी० जागीरदार एवं के०पी० कुलकर्णी तीसरी शती ई०पू० को और के०एच० ध्रुव एवं काशीप्रसाद जायस्वाल दूसरी-पहली शती ई०पू० को भास-नाटकों का काल प्रतिपादित करते हैं। उक्त नाटकों का काल ईसा के बाद मानने वाले विद्वानों में प्रमुख हैं लक्ष्मणस्वरूप (दूसरी शती), ए०बी० कीथ (तीसरी शती), एम० विंटरनिट्ज़ (चौथी शती), सी० आर० देवधर एवं एल० डी० बार्नेट (सातवीं शती) और पी० वी० काणे एवं सी० कुन्हन राजा (नवीं शती)।

त्रिवेन्द्रम-नाटकों को भास-कृत मान लेने पर, वे सभी मत जो सातवीं शती ई० में या उसके बाद इन नाटकों के रचित होने का प्रस्ताव करते हैं अमान्य ठहरते हैं, क्योंकि सातवीं शती ई० के पूर्वभाग में विद्यमान बाण ने भास-नाटकों का स्पष्ट उल्लेख किया है (द्र० पृ० vii)। वस्तुतः इन मतों का आधार या तो **चारुदत्त** को **मृच्छकटिक** का संक्षिप्त संस्करण मानने का सिद्धान्त है या महेन्द्र-विक्रमवर्मा (६००-६३० ई०) के नाटक **मत्तविलासप्रहसन** से त्रिवेन्द्रम-नाटकों का, कुछ दृष्टियों से, साम्य है। परन्तु उक्त आधार को किसी भी तरह निश्चायक नहीं माना जा सकता।

इन नाटकों का काल ईसा के पश्चात् निर्धारित करने वाले अन्य विद्वानों का मत, अर्थात् दूसरी, तीसरी अथवा चौथी शती ई० से संबन्धित मत, निम्नलिखित तथ्यों पर आधारित है :

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

१. इन नाटकों में प्रयुक्त प्राकृत भाषा अश्वघोष (अनु० १०० ई०) की प्राकृत के बाद की एवं कालिदास (अनु० ४०० ई०) की प्राकृत से पहले की अवस्था का प्रतिनिधित्व करती है।

२. भास कालिदास से पहले हुआ है, क्योंकि कालिदास ने अपने **मालविकाग्निमित्र** की प्रस्तावना में भास को 'प्रथितयशाः' नाटककार कहा है एवं उसकी तुलना में स्वयं को 'वर्तमानकवि' के रूप में निर्दिष्ट किया है।

भास को ईसा-पूर्व काल में स्थान देने वाले विद्वानों में अधिकांश विद्वान् उसे मौर्य-काल में अर्थात् चौथी शती ई०पू० में, अथवा उससे कुछ पूर्व पाँचवीं शती ई०पू में, रखते हैं। आज यही मत प्रायः बहुमान्य है। इस मत की पुष्टि में दिए जाने वाले प्रमाण एवं तर्क निम्नलिखित हैं :

आन्तरिक साक्ष्य—

१. त्रिवेन्द्रम-नाटकों में से कुछ नाटक **रामायण** और **महाभारत** की कथाओं पर आधारित हैं। इन जातीय महाकाव्यों का आविर्भाव-काल छठी शती ई०पू० से निश्चय से पहले का है। ये महाकाव्य, इस प्रकार, भास-नाटकों की ऊपरली सीमा निर्धारित करते हैं।

२. **प्रतिज्ञा०** और **स्वप्न०** में उदयन, प्रद्योत और दर्शक का उल्लेख या वर्णन है। इन इतिहास-प्रसिद्ध व्यक्तियों का काल छठी शती ई०पू० है। इस प्रकार यह शती, इस साक्ष्य के आधार पर भी, भास के काल की ऊपरली सीमा ठहरती है।

३. **प्रतिज्ञा०** एवं **अविमारक** में काशी राज्य का उल्लेख है जो पाँचवीं शती ई०पू० से पहले नष्टप्राय हो चुका था। **प्रतिज्ञा०** एवं **स्वप्न०** में मगध की राजधानी के रूप में राजगृह का उल्लेख है। यह स्थिति छठी शती ई०पू० में थी। बाद में, चौथी शती ई०पू० में, मगध की राजधानी पाटलिपुत्र बन गई थी; इस तथ्य की ओर एक हल्का-सा संकेत **चारुदत्त** में प्राप्त होता है।

४. **प्रतिमा** (५.८-गद्य) में साङ्गोपाङ्ग वेद, **मानवधर्मशास्त्र**, **माहेश्वरयोगशास्त्र**, **बार्हस्पत्यार्थशास्त्र**, मेधातिथि के **न्यायशास्त्र** एवं **प्राचेतसश्राद्धकल्प** का उल्लेख है। ये सभी ग्रन्थ निस्संदेह चौथी शती ई०पू० से पहले के हैं।

५. भास-नाटकों की भाषा में पाणिनि (पाँचवीं शती ई०पू०) के नियमों का अनेकत्र अतिक्रमण है। प्रतीत होता है कि ये नाटक उस समय लिखे गए जब पाणिनि के नियम अभी पूर्णतः प्रतिष्ठित नहीं हुए थे।

६. 'महाब्राह्मण' शब्द का प्रयोग भास-नाटकों में 'श्रेष्ठ ब्राह्मण' के प्राचीनतर अर्थ में हुआ है; बाद में इसका अर्थ 'अचारज' या 'नीच ब्राह्मण' हो गया था। इसी प्रकार, 'आर्यपुत्र' इस नाटक में 'राजा' के सामान्य अर्थ में प्रयुक्त हुआ है; बाद के नाटकों में इसका प्रयोग पत्नी द्वारा पति के लिए संबोधन-शब्द

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

के रूप में हुआ है। 'यवनिका' शब्द का प्रयोग भास-नाटकों में 'घूंघट' के अर्थ में हुआ है; उत्तरवर्ती साहित्य में यह, संभवतः यूनानी प्रभाव के फलस्वरूप, 'परदे' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

७. भास-नाटकों में प्रतिबिम्बित सामाजिक अवस्था पाँचवीं-चौथी शती ई०-पू० की सामाजिक अवस्था से साम्य रखती है। उदाहरणतः, प्रतिमा (३.४-गद्य) में मन्दिरों के सीमान्त में बालू बिखेरने की प्रथा का उल्लेख है ; यह प्रथा आपस्तम्ब (पाँचवीं शती ई०पू०) द्वारा ही उल्लिखित है।

८. भास-नाटकों के भरत-वाक्यों में उल्लिखित 'राजसिंह' संभवतः नन्दवंशी राजा उग्रसेन है जिसका काल पाँचवीं-चौथी शती ई०पू० है।

बाह्य साक्ष्य—

१. तमिल काव्य **शिलप्पदिकारम्** (दूसरी शती ई०) में **बालचरित** नामक एक नाटक का उल्लेख है जो निस्संदेह भास-रचित **बालचरित** है। इससे स्पष्ट है कि भास दूसरी शती ई०पू० तक पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका था।

२. अश्वघोष (अनु० १०० ई०) पर भास का प्रभाव दीख पड़ता है। भास का एक श्लोक (प्रतिज्ञा० १.१८) है : **काष्ठादग्निर्जायते मथ्यमानाद् भूमिस्तोयं खन्यमाना ददाति। सोत्साहानां नास्त्यसाध्यं नराणां मार्गारब्धाः सर्वयत्नाः फलन्ति ॥** इसका प्रभाव अश्वघोष के निम्नलिखित श्लोक (बुद्धचरित १३.६०) पर देखा जा सकता है : **काष्ठं हि मथ्नंल्लभते हुताशं भूमिं खनन्विन्दति चापि तोयम्। निर्बन्धिनः किंचन नास्त्यसाध्यं न्यायेन युक्तं च कृतं च सर्वम् ॥** भास की प्राकृत अश्वघोष की प्राकृत की अपेक्षा पहले की है, एवं इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए यहाँ अश्वघोष को ही भास से प्रभावित मानना समीचीन है।

३. 'प्रथितयशाः' भास की तुलना में कालिदास ने स्वयं को 'वर्तमान-कवि' कहा है; स्पष्ट है कि भास कालिदास से कुछ शताब्दियाँ पूर्व हुआ था। कालिदास का काल यदि पहली शती ई०पू० को माना जाए, तो भास को लगभग चौथी शती ई०पू० में स्थान देना होगा।

४. भास के **चारुदत्त** और शूद्रक के **मृच्छकटिक** में परस्पर पर्याप्त साम्य है। इनमें **मृच्छकटिक** निश्चयतः **चारुदत्त** का परिवर्धित रूपान्तर है। **मृच्छकटिक** का रचनाकाल पहली-दूसरी शती ई० है। ऐसी स्थिति में भास को उससे पहले, स्वभावतः ईसा से पूर्व, मानना होगा।

५. कौटिल्य ने अपने **अर्थशास्त्र** (१०.३.३१) में भास के **प्रतिज्ञा०** (४.२) से, स्रोत का निर्देश किए बिना, निम्नलिखित श्लोक उद्धृत किया है : **नवं शरावं सलिलस्य पूर्णं सुसंस्कृतं दर्भकृतोत्तरीयम्। तत्तस्य मा भून्नरकं च गच्छेद् यो भर्तृपिण्डस्य कृते न युध्येत् ॥** चन्द्रगुप्त मौर्य (राज्यारोहण : ३२१ ई०पू०)

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

के अमात्य कौटिल्य का काल चौथी शती ई०पू० है। भास को कौटिल्य से कुछ पूर्व, चौथी या पाँचवीं शती ई०पू० में, मानना होगा।

इस प्रकार, आन्तरिक एवं बाह्य साक्ष्यों के आधार पर भास का काल चौथी अथवा पाँचवीं शती ई०पू० सिद्ध होता है।

जीवन और व्यक्तित्व

प्रो० के० एच० ध्रुव के अनुसार, भास नाटककार का नाम न होकर उसका गोत्र-नाम है। भाष (>भास) अगस्त्य गोत्र के हैमोदक विभाग के अन्तर्गत एक गोत्र का नाम है; भास का संबन्ध इसी गोत्र से रहा होगा। इस स्थिति में यह मानना होगा कि भास का व्यक्तिगत नाम अज्ञात है। कुछ भी हो, आज हम भास को 'भास' इस नाम से ही जानते हैं।

प्रो० के० जी शंकर स्वप्न० और **अविमारक** के मङ्गल-श्लोक में 'युष्मद्' के एकवचन (त्वां, ते) के प्रयोग के आधार पर भास को किसी देश का राजा मानते हैं; उनके अनुसार, यदि भास को दर्शकों के प्रति संकेत करना अभीष्ट होता तो वह एकवचन के स्थान पर बहुवचन (वः) का प्रयोग करता। परंतु वस्तुतः एकवचन के उक्त प्रयोग के आधार पर यह कहना अधिक समीचीन होगा कि भास किसी राजा का आश्रयवर्ती कवि था और कि उसने 'त्वाम्' एवं 'ते' के माध्यम से उसी राजा की ओर संकेत किया है। भास ने वर्णव्यवस्था, यज्ञ, कर्मकाण्ड आदि के प्रति अपनी विशेष आस्था प्रकट की है; इससे प्रतीत होता है कि वह परंपरावादी ब्राह्मण था। भास और धावक (जिसका शाब्दिक अर्थ 'धोबी' है) को एक मानकर भास को जाति से धोबी बताना निराधार है: आन्तरिक साक्ष्य से इसकी पुष्टि नहीं होती। मङ्गल-श्लोकों के तथा नाटकों में अभिव्यक्त विचारों के आधार पर यह निस्संदेह कहा जा सकता है कि भास वैष्णव संप्रदाय का अनुयायी था एवं भक्तिमार्ग के प्रति आस्थावान् था। वह बहुज्ञ एवं बहुश्रुत था; **रामायण, महाभारत,** पुराण, धर्मशास्त्र आदि से उसका पूर्ण परिचय था। स्वभाव से वह विनम्र परंतु स्वाभिमानी, धर्मभीरु, उदार, कोमलहृदय एवं विनोदी प्रकृति का कलाप्रेमी मनुष्य था।

दक्षिण भारत से सामान्यतः अपरिचय एवं उत्तर भारत के जनपदों, नगरों, नदियों आदि के विशद और विशिष्ट वर्णन के आधार पर भास को उत्तर भारत का निवासी मानना होगा। उसके नाटकों के पात्र एवं उनमें अङ्कित दृश्य मुख्यतः उत्तर भारत से संबद्ध हैं।

भास के नाटक : सामान्य परिचय

भास के तेरह नाटकों का, उनके विविध स्रोतों के आधार पर, निम्नलिखित प्रकार से वर्गीकरण किया जा सकता है :

१. **रामायण** पर आधारित : **प्रतिमा** और **अभिषेक**।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

२. कृष्ण-कथा से संबद्ध : **बालचरित** ।

३. **महाभारत** पर आधारित : **मध्यमव्यायोग, दूतवाक्य, दूतघटोत्कच, कर्णभार, ऊरुभङ्ग** और **पञ्चरात्र** ।

४. उदयन-कथा से संबद्ध : **प्रतिज्ञायौगन्धरायण** और **स्वप्नवासवदत्त** ।

५. कल्पनामूलक : **चारुदत्त** और **अविमारक** ।

रामायण पर आधारित नाटकों में, **प्रतिमा** सात अङ्कों का नाटक है। इसमें राम के वनगमन तक की कथा का वर्णन है। **अभिषेक** में, छः अङ्कों में, इससे आगे की, राम के राज्याभिषेक तक की, घटनाओं का अङ्कन है।

कृष्ण-कथा से संबद्ध नाटक **बालचरित** में, पाँच अङ्कों में, कृष्ण के जन्म से लेकर उसके द्वारा कंस के वध तक की कथा का वर्णन है। इसका आधार संभवतः मूल **महाभारत** का वह अंश है जिसपर वर्तमान **हरिवंश** आधारित है।

महाभारत पर आधारित नाटकों में, **मध्यमव्यायोग** एक अङ्क का व्यायोग है। इसमें मध्यम पाण्डव भीम का अपने पुत्र घटोत्कच से नाटकीय ढंग से पुनर्मिलन वर्णित है। **दूतवाक्य** भी एकाङ्की व्यायोग है। इसमें महाभारत-युद्ध से पूर्व पाण्डवों की ओर से संधिप्रस्ताव लेकर कृष्ण के दुर्योधन की सभा में जाने का और असफल होकर लौटने का वर्णन है। **दूतघटोत्कच** भी एक अङ्क का व्यायोग है। इसमें अभिमन्यु की मृत्यु के बाद घटोत्कच के कौरवों के पास दूत के रूप में जाने का एवं उन पर आने वाली भावी विपत्ति की सूचना देने का वर्णन है। **कर्णभार** में, एक अङ्क में, कर्ण द्वारा ब्राह्मणवेषधारी इन्द्र को अपना कवच और कुण्डल दान करने का अङ्कन है। **ऊरुभङ्ग** में, एक अङ्क में, द्रौपदी के अपमान के प्रतिशोध के रूप में भीम द्वारा दुर्योधन की जाँघ (ऊरु) का भञ्जन करके उसका वध करने का वर्णन है। **पञ्चरात्र** तीन अङ्कों का समवकार है। इसमें द्रोण द्वारा दुर्योधन से आधे राज्य की दक्षिणा माँगने एवं दुर्योधन द्वारा यह वचन देने का कि यदि पाँच रात्रियों में पाण्डव मिल जाएंगे तो उन्हें आधा राज्य दे दिया जाएगा और अन्त में इस वचन को निभाने का वर्णन है।

उदयन-कथा से संबद्ध नाटकों में **प्रतिज्ञायौगन्धरायण** में, चार अङ्कों में, उक्त कथा का पूर्वभाग वर्णित है। इसके अन्तर्गत, यौगन्धरायण द्वारा उज्जयिनी में बन्दी बनाए गए उदयन को उसकी प्रेयसी वासवदत्ता समेत वहाँ से मुक्त करने की प्रतिज्ञा और उसकी पूर्ति के साथ उदयन-वासवदत्ता के प्रेम-विवाह का अङ्कन है। **स्वप्नवासवदत्त** में उदयन-कथा के उत्तरभाग का वर्णन है। इसके अन्तर्गत, यौगन्धरायण के प्रयत्नों से उदयन और पद्मावती के विवाह एवं तद्द्वारा मगधराज की सैनिक सहायता प्राप्त होने से उदयन की पुनः राज्य-प्राप्ति की घटनाएँ अङ्कित हैं।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

कल्पनामूलक नाटकों में **चारुदत्त** अपूर्ण नाटक है। इसमें, चार अङ्कों में, निर्धन किंतु उदार ब्राह्मण चारुदत्त के वसन्तसेना नामक गणिका से प्रणय-संबन्ध का वर्णन है। **अविमारक** में, छः अङ्कों में, राजकुमार अविमारक के कुन्तिभोज की पुत्री कुरङ्गी के साथ प्रणय-विवाह का वर्णन है।

उक्त तेरह नाटकों के अतिरिक्त, दो अन्य नाटकों—**वीणावासवदत्त** और **यज्ञफल**—को भी, भास-नाटकों से इनके कतिपय समानता-सूत्रों के आधार पर, भास-कृत सिद्ध करने का प्रयत्न कुछ विद्वानों ने किया है, परन्तु अधिकांश विद्वान् इन्हें भास रचित मानने के विरुद्ध हैं। भास द्वारा लिखित एक नाट्यशास्त्रीय रचना एवं कुछ अन्य काव्यकृतियों की भी चर्चा की जाती है, परंतु इस संबन्ध में परिपुष्ट प्रमाण के अभाव में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता।

स्वप्नवासवदत्त का विशेष अध्ययन

कथावस्तु

पृष्ठभूमि : **स्वप्नवासवदत्त** की कथावस्तु का संबन्ध छठी शती ई०पू० के भारत के तीन प्रमुख राज्यों—वत्स, अवन्ति और मगध—से है। ये तीनों राज्य उत्तर भारत में थे। इनमें वत्स राज्य प्रयाग (इलाहाबाद) के पश्चिम में गङ्गा-यमुना का दोआब था; इसकी राजधानी कौशाम्बी (वर्तमान कोसम) थी। अवन्ति राज्य नर्मदा नदी के उत्तर में विन्ध्यपर्वत के आँचल में फैला जनपद था; इसकी राजधानी उज्जयिनी (वर्तमान उज्जैन) थी। मगध काशी के पूर्व में गङ्गा के दक्षिणी भाग में शोण नद के दोनों ओर फैला विशाल राज्य था; इसकी राजधानी राजगृह (वर्तमान राजगीर, ज़िला पटना) थी।

प्रस्तुत नाटक की कथा का नायक उदयन वत्स का राजा था। अवन्ति का राजा महासेन प्रद्योत उसके साथ अपनी पुत्री वासवदत्ता का विवाह करना चाहता था। उसके अमात्य शालङ्कायन ने विन्ध्य के जंगल में हाथियों का शिकार कर रहे उदयन को छलपूर्वक बन्दी बना लिया। बन्दी उदयन वासवदत्ता को वीणा की शिक्षा देने के लिए नियुक्त हुआ। धीरे-धीरे उदयन और वासवदत्ता एक-दूसरे के प्रति आकर्षित हुए। उदयन, अपने कुशल मन्त्री यौगन्धरायण की सहायता से, वासवदत्ता को लेकर उज्जयिनी से भागने में सफल हुआ, और इस प्रकार दोनों का प्रणय-विवाह संपन्न हुआ।

उदयन वासवदत्ता के प्रेम में इतना लीन रहने लगा कि वह राज्य के कार्यों के प्रति उदासीन रहने लगा। फलस्वरूप उसके राज्य को पड़ोसी राजा आरुणि ने हथिया लिया। अपने राज्य को वापिस लेने के लिए उदयन के सचिव यौगन्धरायण और अमात्य रुमण्वान् ने एक योजना बनाई। राज-ज्योतिषियों से उन्हें विदित हुआ था कि मगध के राजा दर्शक की बहिन पद्मावती उदयन की पत्नी बनेगी। पद्मावती के साथ विवाह करने से उदयन को मगधराज की सैनिक

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

सहायता प्राप्त हो सकती थी, परंतु वासवदत्ता से उसका इतना प्रगाढ़ प्रेम था कि उसके रहते उसके दूसरे विवाह की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। यौगन्धरायण ने, अपनी योजना के अधीन, वत्स देश में स्थित लावाणक नामक ग्राम में (जहाँ उदयन शिकार के सिलसिले में सपरिवार टिका हुआ था), उदयन की अनुपस्थिति में, आग लगा दी और यह प्रसिद्ध कर दिया कि वासवदत्ता आग में जलकर मर गई तथा उसे बचाने के प्रयत्न में यौगन्धरायण भी आग की लपेट में आ गया। इस दारुण समाचार को सुनकर विक्षुब्ध हुए उदयन को रुमण्वान् ने धीरज बँधाया। इस प्रकार उदयन के द्वितीय विवाह के लिए (जो प्रस्तुत नाटक का विषय है) उपयुक्त पृष्ठभूमि तैयार की गई।

प्रथम अङ्क : लावाणक ग्राम से निकलकर यौगन्धरायण और वासवदत्ता, क्रमशः ब्राह्मण संन्यासी और आवन्तिका के वेष में, मगध की राजधानी राजगृह के निकटवर्ती किसी आश्रम में पहुँचते हैं। इसी समय मगधराज दर्शक की बहिन पद्मावती भी, उसी आश्रम में एकान्त जीवन बिता रही अपनी माँ से मिलने के लिए, अपने परिजन के साथ वहाँ आती है। अपने धर्मानुरागी स्वभाव के अनुरूप वह वहाँ घोषणा कराती है कि वह तपस्विजनों को मुँहमाँगी वस्तु प्रदान करेगी। यौगन्धरायण अवसर पाकर निवेदन करता है : "मुझे किसी पदार्थ की इच्छा नहीं, किंतु मेरी प्रार्थना है कि राजकुमारी जी मेरी इस बहिन (आवन्तिका) को, जिसका पति विदेश गया हुआ है, कुछ समय के लिए अपने पास रखें।" पद्मावती उसकी अभ्यर्थना को स्वीकार करती है। आवन्तिका (वासवदत्ता) पद्मावती के पास चली जाती है।

इसी समय वहाँ एक ब्रह्मचारी आता है। लावाणक ग्राम से आया वह ब्रह्मचारी उस ग्राम में आग लग जाने एवं उस आग में वासवदत्ता और यौगन्धरायण के जल मरने का समाचार सुनाता है। वह उक्त समाचार को सुनकर व्याकुल हो गए उदयन की करुण दशा का भी वर्णन करता है। यौगन्धरायण और वासवदत्ता अनजान बनकर यह सब-कुछ सुनते हैं। कुछ समय बाद यौगन्धरायण पद्मावती से अनुमति लेकर वहाँ से चला जाता है। पद्मावती भी आवन्तिका के साथ आश्रम में स्थित अपने कक्ष में चली जाती है।

द्वितीय अङ्क : राजकुमारी पद्मावती अपने भाई मगधराज दर्शक के राजप्रासाद के साथ लगी वाटिका में अपनी सखियों के साथ गेंद खेल रही होती है। वहीं बात-बात में उसकी चेटी आवन्तिका को बताती है कि राजकुमारी वत्सराज उदयन से विवाह-संबन्ध की इच्छुक है। इसी बीच पद्मावती की धात्री वहाँ आकर समाचार देती है कि किसी कार्यवश यहाँ आए उदयन ने, महाराज दर्शक के आग्रह करने पर, पद्मावती के साथ विवाह करना स्वीकार कर लिया है, और पद्मावती का वाग्दान भी हो गया है। वह यह भी सूचना देती है कि

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

कौतुक-मङ्गल (=विवाह-सूत्र बाँधने का मङ्गलाचार) आज ही संपन्न होगा। वह राजकुमारी को उक्त मङ्गलाचार के अनुष्ठान के लिए अपने साथ ले जाती है।

तृतीय अङ्क : आवन्तिका प्रमदवन के एक कोने में अपने भाग्य को कोस रही होती है। वह यह सोचकर दुःखी है कि अब उसका पति (उदयन) पराया होने वाला है। उधर विवाह की तैयारियाँ चल रही हैं। इसी सिलसिले में आवन्तिका से जयमाला गुँथवाने के लिए उसे ढूँढ़ती हुई महारानी की एक चेटी फूल लेकर उसके पास प्रमदवन पहुँचती है और उसे शीघ्र ही जयमाला तैयार करने को कहती है। आवन्तिका अपने भाग्य को कोसती हुई जयमाला गूँथकर उसे पकड़ा देती है।

चतुर्थ अङ्क : विवाह के अनन्तर उदयन राजकीय अतिथि के रूप में महाराज दर्शक के राजप्रासाद में निवास करता है। उसका मित्र विदूषक भी उसके साथ है। वे दोनों प्रमदवन में प्रवेश करते हैं। वहाँ पहले से पद्मावती भी वासवदत्ता और एक चेटी के साथ पहुँची हुई है। उदयन को देखकर वह निकटस्थ माधवी-लतामण्डप में घुस जाती है। उदयन और विदूषक लतामण्डप के पास जाते हैं एवं सहज भाव से उसके अन्दर प्रवेश करना चाहते हैं। यह देख चेटी भौंरों से घिरे लताद्वार की एक शाखा को हिलाकर उन्हें बाहर ही रोक देती है। वे बाहर ही एक शिलातल पर बैठ जाते हैं और आपस में बातें करने लग जाते हैं। विदूषक पूछता है : "आपको पहले वासवदत्ता अधिक प्रिय थी या अब पद्मावती अधिक प्रिय है?" उदयन उसके इस अटपटे प्रश्न को टालने का प्रयत्न करता है, किंतु विदूषक बहुत हठ करके उससे कहलवा लेता है : "सुन्दर और गुणवती होने पर भी पद्मावती वासवदत्ता में आबद्ध मेरे हृदय को हर नहीं पाती।" वासवदत्ता की स्मृति से उदयन की आँखें बरबस सजल हो जाती हैं। विदूषक मुँह धोने के लिए पानी लाने जाता है। इतने में आवन्तिका अवसर पाकर वहाँ से निकल जाती है और पद्मावती उदयन के पास पहुँचती है। विदूषक और उदयन "काश-कुसुम की धूल पड़ जाने से आँखें सजल हो गई हैं" यह बहाना बनाते हैं। पद्मावती सब-कुछ सुन-समझकर भी चुप रहती है। इसके बाद, स्थिति कहीं बिगड़ न जाए—यह सोचकर विदूषक राजा को वहाँ से चतुरतापूर्वक खिसका ले जाता है।

पञ्चम अङ्क : उदयन महाराज दर्शक के राजप्रासाद में ही निवास कर रहा है। वह विदूषक से पद्मावती की शिरोवेदना का समाचार पाकर, और साथ ही उससे यह जानकर कि उसकी शय्या, उपचार आदि का प्रबन्ध समुद्रगृह में किया गया है, वहाँ पहुँचता है। समुद्रगृह में पद्मावती अभी नहीं पहुँची है। वह उसकी प्रतीक्षा में उसकी शय्या पर स्वयं लेट जाता है। लेटते ही उसे नींद आ जाती है। विदूषक ठण्ड से बचाव के लिए चादर लेने चला जाता है। थोड़ी देर बाद आवन्तिका भी, पद्मावती के सिरदर्द की खबर पाकर, वहाँ आती है। वह उसी

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

शय्या पर, चादर ओढ़े सोए उदयन को पद्मावती समझकर, लेट जाती है। इसी समय राजा सपने में वासवदत्ता को देखता है और उसे प्रेमपूर्ण शब्दों में संबोधित करता है। साथ लेटी हुई आवन्तिका (वासवदत्ता) स्वप्न में बोल रहे राजा की बातों का उत्सुकतावश उत्तर देने लग जाती है, परंतु कुछ समय बाद ही, इस भय से कि कहीं राजा जागकर उसे पहचान न ले, वह वहाँ से चल पड़ती है। जाते-जाते वह राजा के, नीचे लटक रहे, हाथ को पलंग पर टिका देती है। इसी बीच अचानक राजा की नींद खुल जाती है। वह वासवदत्ता को पकड़ने का प्रयत्न करता है, परंतु दरवाजे से टकराकर वहीं रुक जाता है। इसी समय विदूषक लौटकर आता है। राजा उसे सारी घटना सुनाकर कहता है कि वासवदत्ता जीवित है, परंतु विदूषक उसकी बात को यह कहकर टाल देता है कि उसने वासवदत्ता को सपने में देखा होगा, क्योंकि वह तो कभी की मर चुकी है।

इसी समय कञ्चुकी आकर सूचना देता है कि अमात्य रुमण्वान् ने मगधराज की सहायता से आरुणि पर आक्रमण करने की पूरी तैयारी कर ली है। उदयन युद्ध के लिए तैयार होकर निकल पड़ता है।

षष्ठ अङ्क : युद्ध में आरुणि को पराजित करके उदयन अपना खोया राज्य पुनः प्राप्त करता है। अब वह पद्मावती के साथ अपनी राजधानी कौशाम्बी में आ गया है। पद्मावती के साथ आवन्तिका भी आई है। एक दिन उदयन को घोषवती वीणा की, जिसे वासवदत्ता अक्सर बजाया करती थी, मधुर ध्वनि सुनाई पड़ती है। अपने सेवक से उस वीणा को मँगवाकर एवं उसे पहचानकर वह वासवदत्ता की स्मृति में विह्वल हो जाता है। इसी समय उज्जयिनी से प्रद्योत का कञ्चुकी और वासवदत्ता की धात्री राजद्वार पर उपस्थित होते हैं। वे दोनों प्रद्योत की ओर से उदयन को, उसकी स्वराज्य-प्राप्ति पर, बधाई देने आए हैं। कञ्चुकी उदयन को प्रद्योत का संदेश देते हुए उसके समक्ष उस चित्र को रखता है जिसे प्रद्योत ने, विवाह-विधि के बिना ही उदयन और वासवदत्ता के उज्जयिनी से छिपकर निकल आने पर, उनके विवाह-संस्कार की रीति पूरी करने के लिए तैयार कराया था। उस चित्र में अङ्कित वासवदत्ता को देखकर पद्मावती उदयन को बताती है कि ठीक उसी आकृति की एक स्त्री उसके पास रहती है। वह कहती है कि उसके अपने विवाह से पूर्व कोई संन्यासी उसे अपनी प्रोषितपतिका बहिन बताकर उसके पास कुछ समय के लिए धरोहर के रूप में छोड़ गया था।

ठीक इसी समय संन्यासी के वेष में यौगन्धरायण वहाँ उपस्थित होता है और अपनी बहिन को वापिस माँगता है। आवन्तिका को वहाँ लाया जाता है। राजा उज्जयिनी से आए कञ्चुकी और धात्री को साक्षी बनाकर उक्त संन्यासी को उसकी बहिन लौटा देने का आदेश देता है। धात्री देखते ही वासवदत्ता को पहचान जाती है। अब यौगन्धरायण भी अपने वास्तविक स्वरूप को एवं

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

अपनी पूरी योजना को प्रकट कर देता है। उदयन अपनी प्रेयसी वासवदत्ता एवं प्रिय सचिव यौगन्धरायण को पुनः प्राप्त करके प्रसन्न होता है, एवं यह समाचार प्रद्योत को सुनाने के लिए, वासवदत्ता और पद्मावती को साथ लेकर, कञ्चुकी और धात्री के साथ उज्जयिनी चलने का प्रस्ताव करता है।

इसके बाद भरतवाक्य के अनन्तर नाटक सुखान्त रूप में समाप्त होता है।

कथा का मूल स्रोत एवं उसमें मौलिक उद्भावनाएँ

स्वप्नवासवदत्त की कथा का मूल स्रोत ऐतिहासिक है; उदयन, प्रद्योत और दर्शक इतिहास-प्रसिद्ध व्यक्ति हैं, एवं वासवदत्ता आदि कुछ अन्य पात्र भी संभवतः इतिहास से लिए गए हैं। परंतु यह मानना कठिन है कि भास ने अपनी कथा इतिहास अथवा पुराण से सीधे ग्रहण की है। प्रतीत होता है कि उदयन आदि के अपने समय (छठी शती ई०पू०) के बाद कालक्रम से उदयन-संबन्धी कथा में लोककथा के तत्त्व जुड़ गए; फलतः कथा को रूमानी वातावरण और रूप प्राप्त हो गया। आगे चलकर यह कथा लोककथा का एक भाग बन गई, एवं लोककथाओं के बृहत् संग्रह—गुणाढ्य की **बृहत्कथा**—में इसे स्थान प्राप्त हो गया। आज गुणाढ्य की **बृहत्कथा**, जिसका काल पहली शती ई०पू० माना जाता है, अपने मूल रूप में उपलब्ध नहीं है; दूसरी ओर, उसके तीन संस्कृत रूपान्तर —बुधस्वामी का **बृहत्कथाश्लोकसंग्रह**, क्षेमेन्द्र की **बृहत्कथामञ्जरी** और सोमदेव का **कथासरित्सागर**—बहुत बाद की रचनाएँ हैं। डा० कीथ के अनुसार, भास की उदयन-कथा का मूल स्रोत गुणाढ्य की **बृहत्कथा** है, परंतु जैसा कि उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है, भास गुणाढ्य से पूर्ववर्ती है। अतः संभव यही प्रतीत होता है कि भास और गुणाढ्य दोनों ने प्रचलित लोककथा को अपने-अपने ढंग से, परस्पर-निरपेक्ष रूप में, ग्रहण किया। इस तथ्य की पुष्टि इस बात से भी होती है कि **बृहत्कथा** के आज उपलब्ध संस्कृत रूपान्तरों में प्राप्त उदयन-कथा में एवं भास के दो नाटकों—**प्रतिज्ञा०** और **स्वप्न०**—में प्राप्त उदयन-कथा में परस्पर पर्याप्त अन्तर है। यह अन्तर निम्नलिखित विवरणों से संबन्धित है :

१. **बृहत्कथा** के रूपान्तरों में महासेन और प्रद्योत दो भिन्न व्यक्ति हैं; महासेन अवन्ति का राजा है और प्रद्योत मगध का। भास-नाटकों के अनुसार प्रद्योत अवन्ति का राजा है और उसे ही उसकी बहुत बड़ी सैन्यशक्ति के कारण 'महासेन' कहा जाता था। इन नाटकों में मगध का राजा दर्शक है जिसका उल्लेख **बृहत्कथा** के रूपान्तरों में नहीं मिलता।

२. इन रूपान्तरों के अनुसार पद्मावती मगध-नरेश की पुत्री है, जबकि भास ने इसे मगध-नरेश की बहिन बताया है।

३. भास ने वासवदत्ता को परिव्राजक-वेषधारी यौगन्धरायण की बहिन के रूप में उपस्थापित किया है, जबकि **बृहत्कथा** के रूपान्तरों में वह उसकी पुत्री

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

के रूप में प्रदर्शित है। बसन्तक, इन रूपान्तरों में, वासवदत्ता के साथ उसके भाई के रूप में मगध की राजधानी में रहता है, जबकि भास ने इसे राजा उदयन के साथ रखा है।

४. बृहत्कथा के रूपान्तरों में आरुणि के द्वारा वत्स राज्य को हथिया लेने का वर्णन नहीं है, जबकि यह भास के स्वप्न० की एक प्रमुख घटना है।

५. बृहत्कथा के रूपान्तरों के अनुसार, उदयन पद्मावती से विवाह कराने के स्पष्ट उद्देश्य से राजगृह जाता है, जबकि स्वप्न० के अनुसार वह किसी अन्य कार्य से राजगृह जाता है एवं वहाँ के राजा के आग्रह पर पद्मावती के साथ विवाह-संबन्ध स्वीकार करता है।

६. बृहत्कथा के रूपान्तरों के अनुसार वासवदत्ता-संबन्धी रहस्य का उद्घाटन एक अतिप्राकृतिक शक्ति (supernatural power) द्वारा होता है तथा उदयन और वासवदत्ता का पुनर्मिलन लावाणक में होता है; जबकि भास-नाटक में उक्त रहस्य का अनावरण अत्यन्त स्वाभाविक ढंग से होता है तथा नायक-नायिका का पुनर्मिलन कौशाम्बी में संपन्न होता है।

डा० पुसालकर के अनुसार, भास द्वारा वर्णित उदयन-कथा में, बृहत्कथा की उदयन-कथा की तुलना में, इतिहास की वास्तविकता अधिक है, क्योंकि गुणाढ्य की अपेक्षा भास, काल की दृष्टि से, उदयन के अधिक निकट है। फिर भी चूँकि भास एक नाटककार था, इतिहास-लेखक नहीं, अतः उसकी उदयन-कथा में यत्र-तत्र नाटकीय कल्पना की संभावना का निषेध नहीं किया जा सकता। भास ने निस्संदेह एक कुशल नाटककार की भाँति मूलकथा को नाटकीय कल्पना से सजाया-संवारा है, और उसे नवीन रूप में उपस्थापित किया है। भास की नाटकीय कल्पना उसकी उदयन-कथा की निम्नलिखित घटनाओं में झाँकती है : (१) पुष्पकभद्र आदि ज्योतिषियों की भविष्यवाणी, (२) अपने पति के हित के लिए वासवदत्ता का अपूर्व त्याग, (३) लावाणक के भयंकर अग्निकाण्ड में वासवदत्ता और यौगन्धरायण के जल मरने का लोकप्रवाद, (४) स्वप्नदृश्य, (५) आरुणि (जिसका इतिहास में कहीं उल्लेख नहीं मिलता) का वत्सदेश पर अधिकार, और (६) चित्र की कथारूढ़ि (motif) के माध्यम से वासवदत्ता-संबन्धी रहस्य का स्वाभाविक ढंग से अनावरण।

उक्त घटनाओं के अतिरिक्त, विविध वस्तु-वर्णनों, आख्यान-विवरणों, स्थितियों, संवादों एवं विभिन्न पात्रों के मनोभावों के मनोवैज्ञानिक उपस्थापन में उसकी बहुविध मौलिक उद्भावनाओं को पहचाना जा सकता है।

नाटकीय तत्त्वों के आधार पर स्वप्नवासवदत्त की समालोचना

स्वप्नवासवदत्त भास का सर्वश्रेष्ठ नाटक है; इस संबन्ध में प्राचीन और आधुनिक आलोचकों में पूर्ण सहमति है। प्राचीन आलोचक राजशेखर की यह

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

घोषणा महत्त्वपूर्ण है कि काव्यमर्मज्ञों द्वारा की गई भास-नाटकों की अग्नि-परीक्षा में स्वप्नवासवदत्त खरा उतरा है : **भासनाटकचक्रेऽपि च्छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम्। स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः॥**

आधुनिक आलोचक भी एक स्वर से इस नाटक की श्रेष्ठता स्वीकार करते हैं। यदि डा० वी० एस० सुक्थंकर इस नाटक को "समस्त सभ्य जगत् की गौरव-पूर्ण थाती" कहते हैं,[५] तो डा० जान्स्टन इसे "संपूर्ण संस्कृत नाट्य-साहित्य में अनुपम रचना" मानते हैं।[६] डा० कीथ के अनुसार, यह नाटक "भास की सर्वोच्च कृति एवं उसके नाटकों में सर्वाधिक परिपक्व रचना" है।[७] डा० सुशील-कुमार दे के मत में स्वप्नवासवदत्त "एक महान् नाटककार के प्रतिभा-स्पर्श की गरिमा को प्रकट करता है।"[८]

प्रस्तुत नाटक की श्रेष्ठता का आधार इसकी कतिपय काव्य-संबन्धी तथा नाटकीय विशेषताएँ हैं जो हमें वस्तुयोजना, चरित्रचित्रण, संवाद, रस, भाषा-शैली, नाट्यशिल्प, रङ्गमञ्च आदि विविध क्षेत्रों में दीख पड़ती हैं। नाटक के नामकरण का आधार कथावस्तु का वह अंश है जो स्वप्न-दृश्य के नाम से प्रसिद्ध है। यह दृश्य नाटक का एक प्रमुख और संभवतः सर्वोत्तम अंश है। यह वस्तुतः नाटक की कथावस्तु का हृदय है—उसका प्राण है। स्वप्नावस्था में स्थित प्रिय और जागरित अवस्था में विद्यमान प्रेयसी के बीच वार्तालाप एवं उनके मधुर किंतु क्षणिक मिलन का यह दृश्य नाटक का एक मार्मिक प्रसङ्ग है। कथावस्तु को चरमसीमा की ओर बढ़ाने में सहायक होने के साथ-साथ, यह घटना रोचकता की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है। संबद्ध पात्र—उदयन—के चरित्र के मनो-वैज्ञानिक अङ्कन में भी इस घटना का अपना महत्त्व है। नाटक के उक्त नाम-करण में नाट्यशास्त्रीय परंपरा का अनुपालन भी हुआ है (द्र० टि०, पृ० १३०)। उपर्युक्त बात नाटक के अन्य प्रचलित नामों—**स्वप्नवासवदत्ता** और **स्वप्ननाटक**—के संबन्ध में भी कही जा सकती है। वस्तुतः स्वप्न-दृश्य के आधार पर नाटक का नाम रखना भास की उर्वर नाटकीय कल्पना का सुन्दर निदर्शन है।

कथावस्तु-योजना : नाटक की कथावस्तु-योजना की प्रमुख विशेषता घट-नाओं की गतिशीलता है। घटनाओं के विकास-क्रम में कहीं भी गतिरोध नहीं है;

---

५. "The glorious heritage of the whole civilised world." द्र० ए० डी० पुसालकर : भास—ए स्टडी, पृ० २६०।

६. "......unique in the whole range of Sanskrit drama." द्र० डा० पुसालकर, पूर्वोक्त ग्रन्थ, पृ० २६०।

७. "The *Svapnavāsavadatta* is the poet's masterpiece and the most mature of his dramas." द्र० संस्कृत ड्रामा, पृ० १०३।

८. "It......reveals the sureness of touch of a great dramatist." द्र० हिस्ट्री आफ़ संस्कृत लिटरेचर, पृ० १११।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

घटनाएँ स्वाभाविक गति से नाटक के निर्वहण अथवा फलागम की ओर बढ़ती हैं। लेखक ने घटनाओं का विस्तृत ब्यौरा न देकर उनका संकेत अथवा संवादों के माध्यम से उनका संक्षिप्त उपस्थापन मात्र किया है। उदाहरणतः, वासवदत्ता और यौगन्धरायण के जल मरने की घटना की संक्षिप्त झाँकी मात्र उसने प्रस्तुत की है; और इस झाँकी में, ब्रह्मचारी के माध्यम से, केवल अपेक्षित सूचनाएँ दी गई हैं। द्वितीय एवं तृतीय अङ्कों में पद्मावती के क्रमशः वाग्दान और विवाह की घटनाओं की एक झलक मात्र है; इनमें उदयन और पद्मावती के बीच प्रणय-व्यापार का वर्णन नहीं है (संभवतः इसलिए नहीं कि भास को वासवदत्ता के प्रति उदयन के अनन्य एवं आदर्श प्रेम का अङ्कन करना अभीष्ट था)। हाँ, इन अङ्कों में वासवदत्ता की अन्तर्व्यथा का विशद चित्रण अवश्य है जिसका मनोवैज्ञानिक दृष्टि से विशेष महत्त्व है। विशेषतः तृतीय अङ्क में वासवदत्ता के भाग्य की वक्रता का नाटकीय उपस्थापन है; उसे स्वयं अपनी सौत के लिए कौतुकमाला गूँथनी पड़ती है।

नाटक में सुन्दर दृश्यों की कमी नहीं है, परंतु ये दृश्य नाटक के कार्य में व्याघात नहीं पहुँचाते। ये उसे किसी न किसी रूप में आगे बढ़ाने में सहायता पहुंचाते हैं। चतुर्थ अङ्क में प्रमदवन का दृश्य इस दृष्टि से उल्लेखनीय है। इस दृश्य में एक ओर उदयन और विदूषक तथा दूसरी ओर पद्मावती, वासवदत्ता और चेटी की उपस्थिति दिखाई गई है। उदयन और विदूषक पद्मावती आदि की वहाँ उपस्थिति से सर्वथा अनजान हैं, अतः वे निस्संकोच भाव से अपने हृदय का अनावरण कर देते हैं। दूसरी ओर, पद्मावती वासवदत्ता के संबन्ध में सब-कुछ जानती हुई भी इस तथ्य से अनजान है कि वह आवन्तिका के रूप में उसके पास ही विद्यमान है। फलतः वह भी अपने हृदय की हलचल को उन्मुक्त भाव से प्रकट कर देती है। वासवदत्ता के मानसिक अन्तर्द्वन्द्व को लेखक ने यहाँ उसके संवादों—विशेषतः स्वगत-भाषणों—के माध्यम से उकेरा है। नाटक के इस संपूर्ण दृश्य में विविध नाटकीय स्थितियों का सफल अङ्कन है। पञ्चम अङ्क का स्वप्न-दृश्य भी, जिसकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है, नाटक का मर्मस्पर्शी अंश है। अन्तिम पुनर्मिलन की प्रतीकात्मक पूर्वसूचना के रूप में इस दृश्य का नाटकीय महत्त्व भी है। नाटक का अन्तिम दृश्य वासवदत्ता के प्रत्यभिज्ञान (=पहचान) से संबन्धित है। इसका उपक्रम और विकास अत्यन्त स्वाभाविक ढंग से किया गया है; इसके लिए लेखक ने चित्रदर्शन की कथारूढ़ि (motif) की सहायता ली है।

नाटकीय वस्तु के विकास की पाँच अवस्थाओं (stages) की दृष्टि से नाटक की कथावस्तु की समीक्षा करते हुए कहा जा सकता है कि इसमें इनका सफल निदर्शन है। प्रथम अङ्क में यौगन्धरायण के इन शब्दों में नाटक-कार्य का 'आरम्भ' है : एषा सा मगधराजपुत्री पद्मावती नाम या पुष्पकभद्रादिभिरादेशिकैरादिष्टा

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

स्वामिनो देवी भविष्यतीति (पृ० १२)। 'यत्न' नामक दूसरी अवस्था यौगन्धरायण द्वारा वासवदत्ता को पद्मावती के पास धरोहर के रूप में रखने में लक्षित होती है। द्वितीय अङ्क में पद्मावती का वाग्दान और तृतीय अङ्क में उदयन से उसका विवाह 'प्राप्त्याशा' को सूचित करते हैं, क्योंकि इस विवाह-संबन्ध के परिणाम-स्वरूप उदयन को मगधराज से सैनिक सहायता की प्राप्ति की एवं तद्द्वारा स्वराज्य-प्राप्ति की आशा बँधती है। यहाँ से आगे नाटक का कार्य फलागम की ओर बढ़ता है। यह फलागम दो रूपों में सामने आता है : स्वराज्य-प्राप्ति, एवं उसके उपाय के रूप में तिरोहित की गई वासवदत्ता की पुनः प्राप्ति। इन दोनों फलों के संदर्भ में 'नियताप्ति' पञ्चम अङ्क में दीख पड़ती है : उदयन के स्वप्न-दर्शन में वासवदत्ता की नियताप्ति है एवं आरुणि के विरुद्ध उदयन के युद्धप्रयाण में स्वराज्य की नियताप्ति है। षष्ठ अङ्क में क्रमशः स्वराज्य-प्राप्ति और वासवदत्ता-प्राप्ति के रूप में 'फलागम' है।

कार्यावस्थाओं को परस्पर जोड़ने वाले तत्त्व संधि कहलाते हैं। ये भी संख्या में पाँच हैं। **स्वप्न०** की कथावस्तु में इनकी योजना के क्रम को भी लक्षित किया जा सकता है। प्रथम अङ्क में यौगन्धरायण द्वारा वासवदत्ता को पद्मावती के पास धरोहर के रूप में रखने तक की घटनाएँ 'मुख' संधि के अन्तर्गत आती हैं; ये सभी घटनाएँ फलप्राप्ति के संदर्भ में बीज रूप हैं। द्वितीय-तृतीय अङ्कों में संपन्न होने वाला उदयन और पद्मावती का विवाह 'प्रतिमुख' संधि का निदर्शन है, क्योंकि इस विवाह द्वारा स्वराज्य रूप फल की प्राप्ति के प्रधान उपाय—मगध से सैन्य सहायता की प्राप्ति—का न्यूनाधिक प्रकटीकरण हुआ है। चतुर्थ और, विशेषतः, पञ्चम अङ्क 'गर्भ' संधि को निदर्शित करते हैं, क्योंकि इन अङ्कों में फल-प्राप्ति के प्रधान उपाय का समुद्भेद (=सम्यक् प्रकटीकरण) होता है। जैसा कि ऊपर कहा गया है, यहाँ नाटक का फल दो भागों में विभक्त होकर सामने आता है : स्वराज्य-प्राप्ति एवं वासवदत्ता-प्राप्ति। पञ्चम अङ्क में इन दोनों फलों के प्रधान उपायों—क्रमशः आरुणि के विरुद्ध युद्धप्रयाण और वासवदत्ता का स्वप्नमिलन—का समुद्भेद हुआ है। प्रस्तुत नाटक के नामकरण का आधार गर्भसंधि द्वारा सूचित यही अर्थ—स्वप्नदृश्य—है। षष्ठ अङ्क के आरम्भ में उदयन के वासव-दत्ता-विषयक शोकोद्गार में एवं विशेषतः **तां तु देवीं न पश्यामि यस्या घोषवती प्रिया** (पृ० १०६)—इस कथन में 'विमर्श' संधि की स्थिति है, क्योंकि यहाँ वासवदत्ता-प्राप्ति रूप फल का मुख्य उपाय—स्वप्नमिलन—आँखों का भ्रम मात्र बनकर रह गया है। स्वराज्य-प्राप्ति रूप फल के संदर्भ में इस संधि का प्रस्तुत नाटक में अभाव है। षष्ठ अङ्क के अन्त में, जहाँ एक ओर उज्जयिनी से कञ्चुकी और धात्री आते हैं तथा दूसरी ओर यौगन्धरायण प्रकट होता है, अन्तिम, 'निर्वहण' नामक, संधि की स्थिति है, क्योंकि इस दृश्य में बीज समेत 'मुख'

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

आदि बिखरे अर्थ एकत्र समेट लिए जाते हैं।

चरित्रचित्रण : भास चरित्रचित्रण की कला में सिद्धहस्त है। स्वप्न० में उसकी यह कला विशेष रूप से प्रकट हुई है। इस क्षेत्र में उसकी प्रमुख विशेषता है आदर्श किंतु मानवीय चरित्रों की सृष्टि करना। स्वप्न० में अङ्कित चरित्र उच्च आदर्शों की प्रतिमूर्ति हैं। उदयन दूसरा विवाह करके भी अपनी पहली पत्नी के गुणों की याद अपने हृदय में संजोए हुए है; दूसरी ओर वह पद्मावती के प्रति भी अपने उत्तरदायित्व को भलीभाँति निभाता है। वासवदत्ता का त्याग अपूर्व है; वह स्वयं अपनी सौत लाने के उपक्रम का निमित्त बनती है। आदर्श प्रेमी और प्रेयसी के रूप में उदयन और वासवदत्ता भास की चरित्रचित्रण-कला की भव्यतम उपज हैं। पद्मावती भी शील और माधुर्य की खान है। नाटक में उसकी स्थिति प्रतिनायिका के रूप में न होकर उपनायिका के रूप में है। यौगन्धरायण की स्वामिभक्ति अद्भुत है। ये सभी चरित्र आदर्श-रूप होते हुए भी पूर्णतः मानवीय हैं। इनमें किसी प्रकार के अतिमानवीय या अविश्वसनीय तत्त्वों का मेल नहीं है। आदर्श होते हुए भी ये सभी पात्र यथार्थ हैं।

चरित्रचित्रण के अपने विशिष्ट कर्म के प्रति भास सर्वथा सजग है। वह अपने पात्रों के चरित्र के विभिन्न पहलुओं का उद्घाटन करने में प्रतिपल सावधान है। जब भी वह अवसर पाता है, वह इन पहलुओं के उद्घाटन के लिए विविध माध्यमों का प्रयोग करता है। उसके चरित्र-उद्घाटन के ये विविध माध्यम हैं घटनाएँ, संवाद, पात्रों की अपनी क्रियाएँ-प्रतिक्रियाएँ और उनके द्वारा अपने तथा दूसरों के चरित्र का प्रकाशन। प्रस्तुत नाटक में उदयन के चरित्र का उद्घाटन मुख्यतः घटनाओं के माध्यम से हुआ है; ये घटनाएँ हैं वासवदत्ता की प्रख्यापित मृत्यु, पद्मावती से उसका विवाह, एवं शत्रुविजय। वासवदत्ता का चरित्र मुख्यतः उसके अपने स्वगत-भाषणों में उभरा है जो नाटक में यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं। पद्मावती के चरित्र का प्रकाशन बहुधा कञ्चुकी, उदयन, वसन्तक आदि द्वारा उसके संबन्ध में कहे गए शब्दों से हुआ है। इसी प्रकार, मुख्यतः विभिन्न पात्रों की क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं के माध्यम से यौगन्धरायण के चरित्र की उपस्थापना हुई है।

भास की चरित्रचित्रण-कला की अन्यतम विशेषता उसके द्वारा विभिन्न पात्रों का मनोविश्लेषण है। उसके अधिकांश पात्रों में उसकी अपनी सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक दृष्टि झलकती है। इस दृष्टि से भास को 'लगभग आधुनिक' कहा जा सकता है।[१] पात्रों के मनोवैज्ञानिक अध्ययन की दृष्टि से लेखक स्वप्न० में विशेष रूप से सफल हुआ है। वासवदत्ता के मनोविश्लेषण में उसे विशेष सफलता मिली

१. तु० मीअरवार्य, जर्नल [illegible] CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection., पृ० २७८ (डा० पुसालकर, पूर्वोक्त ग्रन्थ, पृ० ६३, पर उद्धृत)।

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

है । अन्य पात्रों के चरित्र के उद्‌घाटन में भी भास ने, न्यूनाधिक रूप में, मनोविश्लेषण की पद्धति अपनाई है ।

भास के सभी पात्र सजीव हैं एवं स्वतन्त्र व्यक्तित्व से संपन्न हैं । वे नाटकीय कार्य को आगे बढ़ाने में किसी न किसी रूप में सहायक हैं । उसके नाटकों में, विशेषतः स्वप्न० में, शायद ही कोई ऐसा पात्र हो जिसका कथावस्तु के विकास में अथवा मुख्य चरित्रों के प्रकाशन में यथेष्ट योगदान नहीं है । उसके साधारण से साधारण पात्र भी, यथा स्वप्न० में कञ्चुकी, ब्रह्मचारी और चेटी, नाटकीय सार्थकता से संपन्न हैं ।

भास के चरित्र रूमानी गुणों से युक्त, भावुक और सहृदय हैं, यद्यपि वे इतने रूमानी नहीं जितने कालिदास और बाण के पात्र हैं तथा इतने भावुक और सहृदय नहीं जितने भवभूति के चरित्र हैं । उक्त लेखकों के पात्रों की तुलना में भास के पात्र—विशेषतः स्वप्न० में अङ्कित चरित्र—अधिक उदात्त, संयत और गंभीर हैं, एवं आत्मत्याग तथा परदुःखकातरता आदि गुणों में भी वे उनसे कहीं आगे हैं ।

संस्कृत के अन्य लेखकों के चरित्रों की भाँति भास के चरित्र भी स्थिर चरित्र हैं, गतिमान् अथवा विकासशील नहीं । उदयन आदि के चरित्र में हमें उत्थान-पतन-उत्थान रूप परिवर्तन या विकास का कोई चिह्न नहीं दीख पड़ता, और न ही इसकी कोई गुंजाइश ही दीख पड़ती है । इन पात्रों के चरित्र की जो कोटि हमें एक बार लक्षित होती है वही हमारे समक्ष अन्त तक रहती है । चरित्रों के विकास के इस अभाव को आज की दृष्टि से दोष कहा जा सकता है, परंतु प्राचीन युग की साहित्यिक परंपराओं और प्रवृत्तियों को ध्यान में रखकर देखने से यह दोष वास्तव में दोष नहीं रह जाता ।

संवाद : संवाद नाटक का महत्त्वपूर्ण तत्व है । भास-नाटकों के संवाद नाटकीय दृष्टि से सफल हैं; वे यथार्थ, स्वाभाविक, ओजपूर्ण तथा अवसर और पात्र-विशेष के सर्वथा अनुकूल हैं । ये संवाद मुहावरेदार, संक्षिप्त और सारगर्भित हैं । इनमें कृत्रिमता का पूर्ण अभाव है । स्वप्न० के प्रथम अङ्क में ब्रह्मचारी और यौगन्धरायण के बीच हुई बातचीत (पृ० २४ प्रभृति) के एक अंश को उक्त प्रकार के संवाद के उदाहरण के रूप में रखा जा सकता है :

यौगन्धरायणः —भोः कुत आगम्यते ? क्व गन्तव्यम् ? क्वाधिष्ठानमार्यस्य ?

ब्रह्मचारी—भोः श्रूयताम् । राजगृहतोऽस्मि । श्रुतिविशेषणार्थं लावाणकं नाम ग्रामस्तत्रोषितवानस्मि ।

यौगन्ध०—अथ परिसमाप्ता विद्या ?

ब्रह्मचारी—न खलु तावत् ।

यौगन्ध०—यद्यनवसिता विद्या, किमागमनप्रयोजनम् ?

ब्रह्मचारी—तत्र खल्वतिदारुणं व्यसनं संवृत्तम् ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

यौगन्ध०—कथमिव ?

ब्रह्मचारी—तत्रोदयनो नाम राजा प्रतिवसति।

यौगन्ध०—श्रूयते तत्रभवानुदयनः। किं सः ?

ब्रह्मचारी—तस्यावन्तिराजपुत्री वासवदत्ता नाम पत्नी दृढमभिप्रेता किल।

यौगन्ध०—भवितव्यम्। ततस्ततः ?

ब्रह्मचारी—ततस्तस्मिन् मृगयानिष्क्रान्ते ग्रामदाहेन सा दग्धा।

इसी प्रकार, द्वितीय अङ्क (पृ० ३४-३८) में पद्मावती, वासवदत्ता और चेटी के बीच, तृतीय अङ्क (पृ० ४४-४६) में वासवदत्ता और चेटी के बीच, चतुर्थ अङ्क (पृ० ६६-७२) में राजा और विदूषक के बीच तथा पञ्चम अङ्क (पृ० ६४) में स्वप्नावस्था में स्थित उदयन और जागरित दशा में वर्तमान वासवदत्ता के बीच हुए संवाद भी नाटकीय कथोपकथन के सुन्दर उदाहरण हैं।

कहीं-कहीं भास दो पात्रों के बीच हो रही बातचीत के दौरान किसी तीसरे पात्र के मन की प्रतिक्रिया को स्वगत कथन के रूप में उपस्थापित करता है। ऐसे स्थलों में ये स्वगत-भाषण संबद्ध पात्र के मानसिक अन्तर्द्वन्द्व का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करते हैं। यौगन्धरायण और ब्रह्मचारी के बीच हुई बातचीत के दौरान वासवदत्ता की मानसिक प्रतिक्रियाओं का अङ्कन ऐसे ही स्वगत कथनों में हुआ है। इस प्रकार के सुन्दर स्वगत कथन नाटक में अन्यत्र भी प्राप्त होते हैं।

अपने संवादों में कहीं-कहीं (क) भावों को तीव्रता प्रदान करने के लिए, (ख) प्रकृति का चित्रण करने के लिए, अथवा (ग) किसी चिरंतन सत्य का उपस्थापन करने के लिए भास ने यथावसर पद्य का भी आश्रय लिया है। ऐसे कुछ सुन्दर निदर्शन, जहाँ संवादों के बीच पद्यों की अवसरोचित योजना है, ये हैं :

(क) राजा—[सविषादं] एवम् ? उपरता वासवदत्ता ! वयस्य,
अनेन परिहासेन · · · · (४.६; पृ० ७२)।

(ख) काञ्चुकीयः—तद् आगम्यताम्। इत इतो भवति। संप्रति हि,
खगा वासोपेताः सलिलमवगाढो · · · · (१.१६; पृ० ३२)।

(ग) राजा—वयस्य, न जानाति भवानवस्थाम्। कुतः,
दुःखं त्यक्तुं बद्धमूलोऽनुरागः · · · · (४.७; पृ० ७२-७४)।

रस-परिपाक : दर्शक अथवा श्रोता के हृदय में रस की सृष्टि करना काव्य-रचना का, और विशेषतः नाट्यकृति का, परम लक्ष्य है। भास की नाट्यकृतियों में अभिव्यक्त प्रमुख रस वीर, शृङ्गार, हास्य, करुण और अद्भुत रस हैं। स्वप्न० में शृङ्गार, करुण और हास्य रसों का सुन्दर परिपाक हुआ है। वीर रस की एक हल्की झलक मात्र इसमें मिलती है।

शृङ्गार रस की अभिव्यञ्जना उसके दोनों पक्षों—संभोग और विप्रलम्भ—को लेकर हुई है। पहला पक्ष, संभोग शृङ्गार, उदयन और पद्मावती के मिलन के संदर्भ में आया है, परंतु नाटक में इसका अस्पष्ट संकेत मात्र मिलता है। दूसरी ओर, स्वप्न-दृश्य में उदयन और वासवदत्ता के मधुर किंतु क्षणिक मिलन के

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

अङ्कन में इस पक्ष की सुन्दर अभिव्यञ्जना हुई है। शृङ्गार के दूसरे पक्ष, विप्रलम्भ शृङ्गार, की अभिव्यक्ति वासवदत्ता की विरहव्यथा के वर्णन में हुई है। भासकृत उक्त वर्णन में मानव-हृदय की सहज संवेदनशीलता उभरी है। वासवदत्ता की विरहवेदना गहरी है; इसकी गहराई और तीव्रता तब और अधिक बढ़ती है जब उसके आर्यपुत्र 'परकीय' बन जाते हैं। वह कहती है : **अहो अत्याहितम्। आर्यपुत्रोऽपि नाम परकीयः संवृत्तः।···धन्या खलु चक्रवाकवधूः या विरहिता न जीवति। न खल्वहं प्राणान् परित्यजामि। आर्यपुत्रं पश्यामीत्येतेन मनोरथेन जीवामि मन्दभागा** (पृ० ४२)। उसकी विरहपीड़ा विशिष्ट प्रकार की है। वह प्रिय के निकट रहती हुई भी उससे दूर है। वास्तव में वह अपने-आपसे भी—अपने वास्तविक स्वरूप से भी—दूर है, क्योंकि वह 'आवन्तिका' के रूप में जी रही है, 'वासवदत्ता' के रूप में नहीं। इसी कारण वह अपनी व्यथा को उन्मुक्त भाव से प्रकट भी नहीं कर सकती—उसे प्रयत्नपूर्वक दबाकर रखना उसका 'धर्म' है। एक बार जब उसकी आँखें बरबस भर आती हैं, उसे यह कहकर उसका समाधान करना पड़ता है कि कांस के फूलों की धूल के पड़ जाने से उसकी आँखें सजल हो गई हैं (पृ० ६६)। उदयन को सपने में बातें करते देखकर और उसके मुंह से अपना नाम सुनकर वह स्वयं को नहीं संभाल पाती और अनायास उसकी बातों का उत्तर देने लग पड़ती है (पृ० ६४), यद्यपि वह शीघ्र ही अपने-आपको संयत कर लेती है। पद्मावती के यह कहने पर कि "मैं आर्यपुत्र के विरह में व्याकुल हो उठती हूँ," वह मन-ही-मन कहती है : "मैं यह कठिन कार्य कर रही हूँ। यह भी ऐसा ही सोचती है।" (पृ० ५४)।

वासवदत्ता विषयक उदयन के शोकविलाप में करुण रस की अभिव्यञ्जना है, विप्रलम्भ शृङ्गार की नहीं, क्योंकि उदयन की दृष्टि में वासवदत्ता मर चुकी है। वासवदत्ता के जल मरने का समाचार सुनकर उदयन की जो दशा होती है उसका वर्णन भास ने ब्रह्मचारी के माध्यम से इन शब्दों में किया है : **ततस्तस्याः शरीरोपभुक्तानि दग्धशेषाण्याभरणानि परिष्वज्य राजा मोहमुपगतः।····ततः शनैःशनैर्लब्धसंज्ञः संवृत्तः।···ततः स राजा महीतलपरिसर्पणपांसुपाटलशरीरः सहसोत्थाय 'हा वासवदत्ते, हा अवन्तिराजपुत्रि, हा प्रिये, हा प्रियशिष्ये' इति किमपि बहु प्रलपितवान्** (पृ० २६)। पद्मावती से विवाह के अनन्तर यद्यपि वह वासवदत्ता-विषयक अपनी मनोव्यथा को, नवोढा पत्नी के प्रति दाक्षिण्य की भावना से प्रेरित होकर, नियन्त्रण में रखता है, तथापि कभी-कभी उसके चेष्टा-विशेष से वह प्रकट हो ही जाती है। पद्मावती द्वारा वीणावादन सीखने की इच्छा व्यक्त किए जाने पर उसकी प्रतिक्रिया, पद्मावती के शब्दों में, इस रूप में प्र होती है : "वे कुछ नहीं बोले। एक लम्बी आह भरकर वे चुप हो गा (पृ० ५६)।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

यौगन्ध०—कथमिव ?

ब्रह्मचारी—तत्रोदयनो नाम राजा प्रतिवसति।

यौगन्ध०—श्रूयते तत्रभवानुदयनः। किं सः ?

ब्रह्मचारी—तस्यावन्तिराजपुत्री वासवदत्ता नाम पत्नी दृढमभिप्रेता किल।

यौगन्ध०—भवितव्यम्। ततस्ततः ?

ब्रह्मचारी—ततस्तस्मिन् मृगयानिष्क्रान्ते ग्रामदाहेन सा दग्धा।

इसी प्रकार, द्वितीय अङ्क (पृ० ३४-३८) में पद्मावती, वासवदत्ता और चेटी के बीच, तृतीय अङ्क (पृ० ४४-४६) में वासवदत्ता और चेटी के बीच, चतुर्थ अङ्क (पृ० ६६-७२) में राजा और विदूषक के बीच तथा पञ्चम अङ्क (पृ० ६४) में स्वप्नावस्था में स्थित उदयन और जागरित दशा में वर्तमान वासवदत्ता के बीच हुए संवाद भी नाटकीय कथोपकथन के सुन्दर उदाहरण हैं।

कहीं-कहीं भास दो पात्रों के बीच हो रही बातचीत के दौरान किसी तीसरे पात्र के मन की प्रतिक्रिया को स्वगत कथन के रूप में उपस्थापित करता है। ऐसे स्थलों में ये स्वगत-भाषण संबद्ध पात्र के मानसिक अन्तर्द्वन्द्व का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करते हैं। यौगन्धरायण और ब्रह्मचारी के बीच हुई बातचीत के दौरान वासवदत्ता की मानसिक प्रतिक्रियाओं का अङ्कन ऐसे ही स्वगत कथनों में हुआ है। इस प्रकार के सुन्दर स्वगत कथन नाटक में अन्यत्र भी प्राप्त होते हैं।

अपने संवादों में कहीं-कहीं (क) भावों को तीव्रता प्रदान करने के लिए, (ख) प्रकृति का चित्रण करने के लिए, अथवा (ग) किसी चिरंतन सत्य का उपस्थापन करने के लिए भास ने यथावसर पद्य का भी आश्रय लिया है। ऐसे कुछ सुन्दर निदर्शन, जहाँ संवादों के बीच पद्यों की अवसरोचित योजना है, ये हैं :

(क) राजा—[सविषादं] एवम् ? उपरता वासवदत्ता ! वयस्य,
अनेन परिहासेन · · · · (४.६; पृ० ७२)।

(ख) काञ्चुकीयः—तद् आगम्यताम्। इत इतो भवति। संप्रति हि,
खगा वासोपेताः सलिलमवगाढो · · · · (१.१६; पृ० ३२)।

(ग) राजा—वयस्य, न जानाति भवानवस्थाम्। कुतः,
दुःखं त्यक्तुं बद्धमूलोऽनुरागः · · · · (४.७; पृ० ७२-७४)।

रस-परिपाक : दर्शक अथवा श्रोता के हृदय में रस की सृष्टि करना काव्य-रचना का, और विशेषतः नाट्यकृति का, परम लक्ष्य है। भास की नाट्यकृतियों में अभिव्यक्त प्रमुख रस वीर, शृङ्गार, हास्य, करुण और अद्भुत रस हैं। स्वप्न० में शृङ्गार, करुण और हास्य रसों का सुन्दर परिपाक हुआ है। वीर रस की एक हल्की झलक मात्र इसमें मिलती है।

शृङ्गार रस की अभिव्यञ्जना उसके दोनों पक्षों—संभोग और विप्रलम्भ—को लेकर हुई है। पहला पक्ष, संभोग शृङ्गार, उदयन और पद्मावती के मिलन के संदर्भ में आया है, परंतु नाटक में इसका अस्पष्ट संकेत मात्र मिलता है। दूसरी ओर, स्वप्न-दृश्य में उदयन और वासवदत्ता के क्षणिक मिलन के

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

अङ्कन में इस पक्ष की सुन्दर अभिव्यञ्जना हुई है। शृङ्गार के दूसरे पक्ष, विप्रलम्भ शृङ्गार, की अभिव्यक्ति वासवदत्ता की विरहव्यथा के वर्णन में हुई है। भासकृत उक्त वर्णन में मानव-हृदय की सहज संवेदनशीलता उभरी है। वासवदत्ता की विरहवेदना गहरी है; इसकी गहराई और तीव्रता तब और अधिक बढ़ती है जब उसके आर्यपुत्र 'परकीय' बन जाते हैं। वह कहती है : **अहो अत्याहितम्। आर्यपुत्रोऽपि नाम परकीयः संवृत्तः।\`\`\`धन्या खलु चक्रवाकवधूः या विरहिता न जीवति। न खल्वहं प्राणान् परित्यजामि। आर्यपुत्रं पश्यामीत्येतेन मनोरथेन जीवामि मन्दभागा** (पृ० ४२)। उसकी विरहपीड़ा विशिष्ट प्रकार की है। वह प्रिय के निकट रहती हुई भी उससे दूर है। वास्तव में वह अपने-आपसे भी—अपने वास्तविक स्वरूप से भी—दूर है, क्योंकि वह 'आवन्तिका' के रूप में जी रही है, 'वासवदत्ता' के रूप में नहीं। इसी कारण वह अपनी व्यथा को उन्मुक्त भाव से प्रकट भी नहीं कर सकती—उसे प्रयत्नपूर्वक दबाकर रखना उसका 'धर्म' है। एक बार जब उसकी आँखें बरबस भर आती हैं, उसे यह कहकर उसका समाधान करना पड़ता है कि कांस के फूलों की धूल के पड़ जाने से उसकी आँखें सजल हो गई हैं (पृ० ६६)। उदयन को सपने में बातें करते देखकर और उसके मुंह से अपना नाम सुनकर वह स्वयं को नहीं संभाल पाती और अनायास उसकी बातों का उत्तर देने लग पड़ती है (पृ० ६४), यद्यपि वह शीघ्र ही अपने-आपको संयत कर लेती है। पद्मावती के यह कहने पर कि "मैं आर्यपुत्र के विरह में व्याकुल हो उठती हूँ," वह मन-ही-मन कहती है : "मैं यह कठिन कार्य कर रही हूँ। यह भी ऐसा ही सोचती है।" (पृ० ५४)।

वासवदत्ता विषयक उदयन के शोकविलाप में करुण रस की अभिव्यञ्जना है, विप्रलम्भ शृङ्गार की नहीं, क्योंकि उदयन की दृष्टि में वासवदत्ता मर चुकी है। वासवदत्ता के जल मरने का समाचार सुनकर उदयन की जो दशा होती है उसका वर्णन भास ने ब्रह्मचारी के माध्यम से इन शब्दों में किया है : **ततस्तस्याः शरीरोपभुक्तानि दग्धशेषाण्याभरणानि परिष्वज्य राजा मोहमुपगतः।\`\`\`ततः शनैःशनैर्लब्धसंज्ञः संवृत्तः।\`\`\`ततः स राजा महीतलपरिसर्पणपांसुपाटलशरीरः सहसोत्थाय 'हा वासवदत्ते, हा अवन्तिराजपुत्रि, हा प्रिये, हा प्रियशिष्ये' इति किमपि बहु प्रलपितवान्** (पृ० २६)। पद्मावती से विवाह के अनन्तर यद्यपि वह वासवदत्ता-विषयक अपनी मनोव्यथा को, नवोढा पत्नी के प्रति दाक्षिण्य की भावना से प्रेरित होकर, नियन्त्रण में रखता है, तथापि कभी-कभी उसके चेष्टा-विशेष से वह प्रकट हो ही जाती है। पद्मावती द्वारा वीणावादन सीखने की इच्छा व्यक्त किए जाने पर उसकी प्रतिक्रिया, पद्मावती के शब्दों में, इस रूप में प्रकट होती है : "वे कुछ नहीं बोले। एक लम्बी आह भरकर वे चुप हो गए।" (पृ० ५६)।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

हास्य रस की अवतारणा नाटक में विदूषक के माध्यम से हुई है। भास-नाटकों में विदूषक सजीव हास्य की सृष्टि करने वाले पात्र के रूप में आता है; वह उत्तरवर्ती नाटकों में आने वाले विदूषक की भाँति घिसी-पिटी चेष्टाओं और बनावटी बातों से भौंडा हास्य उत्पन्न करने वाला पात्र नहीं है। स्वप्न० के विदूषक का हास्य शिष्ट, संयत और हल्का विनोद लिए हुए है। एक उदाहरण देखिए; उदयन को 'कोई कहानी' सुनाने के प्रसङ्ग में वह "काम्पिल्य नगर में ब्रह्मदत्त नामक राजा था" के स्थान पर "ब्रह्मदत्त नगर में काम्पिल्य नामक राजा था" कहता है। राजा द्वारा उचित संशोधन सुझाए जाने पर वह कहता है : "तो आप तनिक ठहरिए, मैं इसे भलीभाँति रट लूं : राजा ब्रह्मदत्त और नगर काम्पिल्य [कई बार इसको रटकर] अच्छा, अब आप सुनिए।" (पृ० ९०)। भास हास्य रस का कुशल स्रष्टा है, परंतु उसे 'कविता-कामिनी का हास' कहना (जैसा कि जयदेव ने कहा है; द्र० ऊपर, पृ० viii) अत्युक्ति मात्र है।

वीर रस की एक हल्की झलक आरुणि के विरुद्ध युद्धप्रयाण करते समय उदयन के इन शब्दों में दीख पड़ती है : **उपेत्य नागेन्द्रतुरङ्गतीर्णे तमारुणिं दारुणकर्मदक्षम्। विकीर्णबाणोग्रतरङ्गभङ्गे महार्णवाभे युधि नाशयामि॥** (५.१३)

प्रकृति चित्रण : भास का प्रकृतिचित्रण सजीव है। भावविशेष के उद्दीपन के रूप में अथवा, कहीं-कहीं, स्वतन्त्र रूप में उसने प्रकृति के मनोरम चित्र **स्वप्न०** में प्रस्तुत किए हैं। इन चित्रों का संबन्ध प्रायः विशाल दृश्यावली से है; छोटे-छोटे दृश्यचित्र उसके इस नाटक में बहुत कम हैं। भास अपने प्रकृति-चित्र में एकाध आवश्यक विवरण देकर ही चित्र की परिपूर्णता का प्रभाव उत्पन्न कर देता है; अधिक विवरण देना उसे अभीष्ट नहीं। इस दृष्टि से सायंकाल का निम्नांकित चित्र द्रष्टव्य है : **खगा वासोपेताः सलिलमवगाढो मुनिजनः, प्रदीप्तोऽग्निर्भाति प्रविचरति धूमो मुनिवनम्। परिभ्रष्टो दूराद् रविरपि च संक्षिप्तकिरणो, रथं व्यावर्त्यासौ प्रविशति शनैरस्तशिखरम्॥** (१.१६)

कहीं-कहीं ये प्रकृतिचित्र दूर से लिए गए हैं, फिर भी इनमें यथार्थ का रंग और रूप है। आकाश में पंक्तिबद्ध होकर जा रही सारसपंक्ति का धरातल से लिया गया यह चित्र देखिए : **ऋज्वायतां च विरलां च नतोन्नतां च, सप्तर्षिवंशकुटिलां च निवर्तनेषु। निर्मुच्यमानभुजगोदरनिर्मलस्य, सीमामिवाम्बरतलस्य विभज्यमानाम्॥** (४.२)

शैली : अलंकारयोजना : प्रस्तुत नाटक में भास की शैली, विषयवस्तु के अनुरूप, सरल तथा सरस है। प्रसाद और माधुर्य गुणों की योजना उसकी प्रमुख विशेषता है। लम्बे समासों का उसमें प्रायः अभाव है। पदयोजना में कोमलता और लालित्य है। वर्णयोजना में माधुर्य का गुण है; कहीं-कहीं अनुप्रास का सुन्दर स्पर्श भी है। [illegible] भाषा में वैदर्भी

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

रीति का नाम दिया जा सकता है जिसकी परिभाषा विश्वनाथ (**साद० ६.२**) के अनुसार इस प्रकार है : **माधुर्यव्यञ्जकैर्वर्णैः रचना ललितात्मिका। अवृत्तिरल्पवृत्तिर्वा वैदर्भी रीतिरिष्यते ॥** भास द्वारा इस रीति की योजना का एक सुन्दर उदाहरण है : **कस्यार्थः कलशेन को मृगयते वासो यथानिश्चितं, दीक्षां पारितवान् किमिच्छति पुनर्देयं गुरोर्यद्भवेत्। आत्मानुग्रहमिच्छतीह नृपजा धर्माभिरामप्रिया, यद्यस्यास्ति समीप्सितं वदतु तत्कस्याद्य किं दीयताम् ॥** (१.८)

अभीष्ट प्रभाव उत्पन्न करने के लिए भास कभी-कभी किसी शब्दविशेष की आवृत्ति करता है, यथा इस पद्य में : **सुखमर्थो भवेद्दातुं सुखं प्राणाः सुखं तपः। सुखमन्यद् भवेत्सर्वं दुःखं न्यासस्य रक्षणम् ॥** (१.१०)

प्रासादिकता भास की शैली की प्रमुख विशेषता है। सुने जाने के अनन्तर ही उसके शब्द अपने अर्थ का मानो समर्पण कर देते हैं। एक-दो उदाहरण प्रस्तुत हैं : (क) **पादाक्रान्तानि पुष्पाणि सोष्म चेदं शिलातलम्। नूनं काचिदिहासीना मां दृष्ट्वा सहसा गता ॥** (४.४); (ख) **यदि तावदयं स्वप्नो धन्यमप्रतिबोधनम्। अथायं विभ्रमो वा स्याद् विभ्रमो ह्यस्तु मे चिरम् ॥** (५.६)

भास की वाक्ययोजना प्रायः सीधी, स्पष्ट और उलझन-रहित है। पद्यरचना में भी उसकी वाक्ययोजना सीधी और सुबोध है। एक उदाहरण देखें : **इयं बाला नवोद्वाहा सत्यं श्रुत्वा व्यथां व्रजेत्। कामं धीरस्वभावेयं स्त्रीस्वभावस्तु कातराः ॥** (४.६)

भास की अलंकारयोजना अयत्नसिद्ध होने से कथ्य के स्वाभाविक सौन्दर्य की वृद्धि करने में सर्वथा समर्थ है। अलंकार उसकी कविता में भाररूप नहीं हैं; उनका उसमें सहज और सुखद विन्यास है। इसीलिए वे वर्ण्यवस्तु के प्रभाव को तीव्र और गहरा करने में सहायक हैं। भास के प्रिय अलंकार हैं स्वभावोक्ति, उपमा, दृष्टान्त, काव्यलिङ्ग, अर्थान्तरन्यास, एवं अनुप्रास।

स्वप्न० में स्वभावोक्ति के अनेक सुन्दर उदाहरण हैं। एक उदाहरण प्रस्तुत है : **विस्रब्धं हरिणाश्चरन्त्यचकिता देशागतप्रत्यया, वृक्षाः पुष्पफलैः समृद्धविटपाः सर्वे दयारक्षिताः। भूयिष्ठं कपिलानि गोकुलधनान्य क्षेत्रवत्यो दिशो, निःसंदिग्धमिदं तपोवनमयं धूमो हि बह्वाश्रयः ॥** (१.१२; द्र० उक्त पर टि०, पृ० १४२)।

उपमा का प्रयोग यद्यपि भास में अधिक नहीं है, तथापि जहाँ भी इसकी स्थिति है वहाँ उपमान-योजना में कल्पना की नवीनता और अवसरोचितता का गुण है। आकाश में कतार बाँधकर उड़ रही सारसपंक्ति के लिए भास ने तीन उपमान प्रस्तुत किए हैं। ये हैं बलराम की फैली हुई दीर्घ गौरवर्ण भुजाएँ, श्वेत कमलों की लम्बी माला, और सप्तर्षि नक्षत्रों की पंक्ति। इस सारसपंक्ति को आकाश में सीधी सफेद सीमारेखा सी प्रतीत होने वाली भी कहा गया है (पृ० ६०)। ये उपमान सारसपंक्ति के धवल रंग, फैलाव तथा मोड़ों पर टेढ़ी

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

होने के प्रभाव की सृष्टि करने में नितान्त समर्थ हैं। भास की चित्रात्मक उपमान-योजना का एक सुन्दर निदर्शन यह है : [शेफालिकागुल्मकाः] **प्रवालान्तरितैरिव मौक्तिकलम्बकैराचिताः कुसुमैः** (पृ० ५२)। यहाँ हरसिंगार के गुच्छों को बीच-बीच में लाल मूंगों से गुम्फित (सफेद) मोतियों की झालर के समान बताया गया है : हरसिंगार के फूल फैलाव की ओर मोतिया रंग के तथा डंडी की ओर लाल रंग के होते हैं। इन फूलों को अन्यत्र (पृ० ५४ में) मैनसिल धातु के टुकड़ों के समान भी बताया गया है। यह उपमान भी चित्रात्मक है। उपमा-प्रयोग का एक अन्य मनोरम उदाहरण यह है : **ततो निष्क्रान्ते राजनि प्रोषित-नक्षत्रचन्द्रमिव नभोऽरमणीयः संवृत्तः स ग्रामः** (पृ० ३०)।

दृष्टान्त अलंकार की योजना का एक उदाहरण यह पद्य है : **कः कं शक्तो रक्षितुं मृत्युकाले, रज्जुच्छेदे के घटं धारयन्ति ? एवं लोकस्तुल्यधर्मो वनानां, काले काले छिद्यते रुह्यते च ॥** (६.१०; द्र० उक्त पर टि०, पृ० १७८)।

अर्थान्तरन्यास भास का प्रिय अलंकार है। जीवन की अनुभूत सचाइयों को इस अलंकार के माध्यम से उसने बड़े प्रभावपूर्ण ढंग से उपस्थापित किया है। भाग्य की परिवर्तनशीलता की समर्थ अभिव्यक्ति उक्त अलंकार के निम्नोद्धृत उदाहरण में देखिए : **पूर्वं त्वयाप्यभिमतं गतमेवमासीच्छ्लाघ्यं गमिष्यसि पुनर्विजयेन भर्तुः। कालक्रमेण जगतः परिवर्तमाना चक्रारपङ्क्तिरिव गच्छति भाग्यपङ्क्तिः॥** (१.४; द्र० उक्त पर टि०, पृ० १३७)। इस अलंकार का एक अन्य सुन्दर उदाहरण है : **प्रद्वेषो बहुमानो वा संकल्पादुपजायते। भर्तृ-दाराभिलाषित्वादस्यां मे महती स्वता॥** (१.७)

भास का अन्य प्रिय अलंकार काव्यलिङ्ग है। ऊपर (पृ० xxxv पर) उद्धृत पद्य **विस्रब्धं हरिणा**···(१.१२) में इस अलंकार की सुन्दर स्थिति है। इसी श्रेणी का एक अलंकार अनुमान है। इसका एक सुन्दर उदाहरण है : **पादाक्रान्तानि पुष्पाणि सोष्म चेदं शिलातलम्। नूनं काचिदिहासीना मां दृष्ट्वा सहसा गता॥** (४.४; द्र० उक्त पर टि०)।

शब्दालंकारों में भास का प्रिय अलंकार अनुप्रास है जिसकी मधुर योजना नाटक में जहाँ-तहाँ दीख पड़ती है। इसके कुछ मनोरम उदाहरण हैं : **वासव-दत्तावलो बलस्य त्वाम्, पद्मावतीर्णपूर्णौ** (पृ० २), तथा **परिश्रमः परिखेदं नोत्पादयति यथायं परिभवः** (पृ० ८), **कस्यार्थः कलशेन को मृगयते** (पृ० १६), **मधुमदकला मधुकरा मदनार्ताभिः** (पृ० ६४), **हस्तेन स्रस्तकोणेन कृतमाकाश-वादितम्** (पृ० ९०), **विकीर्णबाणोग्रतरङ्गभङ्गे** (पृ० १००), **उद्दिश्य मां च विरहे परिदेवितानि वाद्यान्तरेषु कथितानि च सस्मितानि** (पृ० १०६)।

भाषा : संस्कृत के अन्य नाटककारों की भाँति भास ने अपने नाटकों में संस्कृत और प्राकृत दोनों भाषाओं का प्रयोग किया है। उसके नाटकों में, अन्य

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

संस्कृत नाटकों के समान, उच्च एवं मध्य वर्गों के पात्र संस्कृत का और निम्न वर्ग के पात्र एवं स्त्री-पात्र प्राकृत का प्रयोग करते हैं।

भास की संस्कृत भाषा में सामान्यतः पाणिनि के नियमों का अनुपालन हुआ है, परंतु कहीं-कहीं, विशेषतः समास-रचना में, उसमें पाणिनीय नियमों का उल्लङ्घन दीख पड़ता है।[10]

भास ने इस नाटक में मुख्यतः शौरसेनी प्राकृत का प्रयोग किया है। उसके द्वारा प्रयुक्त इस प्राकृत के मुख्य विशिष्ट लक्षण हैं संस्कृत के अघोष वर्णाक्षरों का सघोषीकरण (यथा—**एदु**<**एतु, दूदसंपादं**<**दूतसंपातम्, जाणादि**<**जानाति**), स्वरमध्यवर्ती क्, ग्, च्, ज्, त्, द्, प्, ब्, व् और य् का लोप (यथा—**राअदारिआ**<**राजदारिका, भइणि**<**भगिनी, आइदी**<**आकृतिः, राअउलाणि**<**राजकुलानि**), आदिम तथा मध्यवर्ती न् का णत्व (यथा—**णाम**<**नाम, वअणेण**<**वचनेन, दाणिं**<**इदानीम्**), महाप्राण ख्, घ्, थ्, ध्, फ् और भ् के वर्गतत्त्व का लोप (यथा—**सुहं**<**सुखम्, तह**<**तथा, महुरा**<**मधुरा**), संयुक्त अक्षरों में ज्ञ् का ञ्ञ् अथवा ण्ण् में परिवर्तन (यथा—**विञ्ञाण**<**विज्ञान, अञ्ञादवास**<**अज्ञात-वास**), न्य् एवं ण्य् का ञ्ञ् या ण्ण् में परिवर्तन (यथा—**सुण्णं**<**शून्यम्, अण्ण**

---

१०. स्वप्न० में आए अपाणिनीय प्रयोग इस प्रकार हैं :

१. अनियमित संधि : अवन्त्याधिपतेः (पृ० ८८)।

२. अनियमित शब्दरूप : लिङ्गविपर्यय : महार्णवाभे युधि (पृ० १००)।

३. अनियमित धातुरूप : पदविपर्यय : प्रतिजानीमः (पृ० १८), आपृच्छामि (पृ० ३०), उत्कण्ठिष्यति (पृ० ३०), श्लिष्यते (पृ० १०), रुह्यते (पृ० ११४); गणविपर्यय : धरते (पृ० ६६); गणप्रक्रियाविपर्यय : विश्रमयिष्ये (पृ० २०)।

४. अनियमित कृदन्त रूप : कुसुमावचय- (पृ० ५४)।

५. अनियमित समासरचना : विनयाद् अपेतपुरुषः (पृ० ६), गुरुभिः अभिहितनामधेयस्य (पृ० १०), विस्रम्भेण उत्पादितविस्रम्भा (पृ० १६), पुष्पफलैः समृद्धविटपाः (पृ० २२), तयोः वियोगजनितसंतापः (पृ० २४-२६), महद्भार- (पृ० २८), हुतवहेन हृताङ्गयष्टि- (पृ० ८४), स्वप्नेऽपि उत्पन्नसंस्पर्शः (पृ० ९८), राजवंश्यानाम् उदयास्त-मयप्रभुः, मया काङ्क्षितबान्धवः (पृ० ११०), मम प्रवासदुःखार्ता (पृ० ११२), वनानां तुल्यधर्मः (पृ० ११४), देव्याः कुशलनिवेदनार्थम् (पृ० १२६)।

६ अनियमित वाक्यरचना : श्रुतिविशेषणार्थं लावाणकं नाम ग्रामस्तत्रोषितवानस्मि (पृ० २४), आर्यपुत्रेणेहागत्येमां कुसुमसमृद्धिं दृष्ट्वा संमानिता भवेयम् (पृ० ५४)।

७. अन्य अनियमित प्रयोग : मा इदानीमन्यच्चिन्तयित्वा (पृ० ४४), मा मा भूयोऽवचित्य (पृ० ५४), दुःखं त्यक्तुं बद्धमूलोऽनुरागः, स्मृत्वा स्मृत्वा याति दुःखं नवत्वम् (पृ० ७२), विमुच्येह बाष्पं प्राप्तानृण्या याति बुद्धिः प्रसादम् (पृ० ७४), गुणतः युक्ताम् (पृ० ८४), मेदानीं भवाननर्थं चिन्तयित्वा (पृ० ९८), मेदानीं भर्तातिमात्रं संतप्तुम् (पृ० ११४)।

उक्त अपाणिनीय प्रयोगों की व्याख्या के लिए, द्र० उन पर टि०।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

<**अन्य, धञ्ञा**<**धन्या, अञ्जं**<**अन्यत्, अधण्णस्स**<**अधन्यस्य, कण्णा**< **कन्या**) एवं र्य् का य्य् में परिवर्तन (यथा—**अय्य**<**आर्य, अय्यउत्तो**<**आर्यपुत्रः** ।

छन्दोयोजना : भास-नाटकों में पद्यों की योजना, उत्तरवर्ती नाटकों की तुलना में, बहुत कम है । भास ने पद्यों का प्रयोग वर्ण्यवस्तु को प्रभावपूर्ण बनाने अथवा किसी भाव-विशेष का मार्मिक अङ्कन करने के लिए किया है । **स्वप्न०** में प्रयुक्त पद्यों की संख्या केवल अट्ठावन है । दो अङ्कों—द्वितीय और तृतीय—में एक भी पद्य नहीं है ।

अपने नाटकों में, संभवतः **रामायण** और **महाभारत** के विशेष प्रभाव के अधीन, भास ने अनुष्टुभ् छन्द का सर्वाधिक प्रयोग किया है । प्रस्तुत नाटक में भी इसी छन्द का सबसे अधिक प्रयोग (२७ बार) है । अर्थ की सुबोधता एवं तीव्र गति की दृष्टि से एक नाट्यकृति के लिए यह छन्द विशेष रूप से उपयुक्त है । चिरंतन सत्य के प्रकाशन में भी इस छन्द का संमित स्वरूप नितान्त उपयोगी है । भास के अन्य प्रिय छन्द शार्दूलविक्रीडित और वसन्ततिलका हैं । इनका प्रयोग भास ने व्यापक प्रकृतिचित्रों का अङ्कन करने के लिए अथवा भाव या कथ्य विशेष का विशद वर्णन करने के लिए किया है । भास द्वारा प्रयुक्त अन्य छन्द हैं शालिनी, आर्या, पुष्पिताग्रा, शिखरिणी, उपेन्द्रवज्रा, उपजाति, हरिणी एवं वैश्वदेवी (छन्दों के विस्तृत विवरण के लिए, द्र० परिशिष्ट १, पृ० १८३-८६)।

नाट्यशिल्प तथा मञ्चयोग्यता : नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से **स्वप्न०** एक नाटक (रूपक के दस भेदों में प्रथम भेद) है । नाटक के लक्षण के अनुरूप, इसमें विख्यात कथा का वर्णन है, इसका नायक प्रख्यात राजा है, इसमें शृङ्गार अङ्गी (=प्रधान) रस है, चार मुख्य पात्र हैं, इसकी कथा पाँच संधियों से समन्वित है एवं इसमें अङ्कों की संख्या पाँच और दस के बीच (छः) है (नाटक की परिभाषा के लिए, द्र० **साद०** ६.७-११) ।

नाट्यशिल्प तथा मञ्च की दृष्टि से भास का यह नाटक पर्याप्त सफल है । यह बात विशेषतः उल्लेखनीय है कि आधुनिक युग में भी इस नाटक को अनेक बार सफलतापूर्वक अभिनीत किया जा चुका है । नाट्यशिल्प की दृष्टि से इस नाटक के प्रमुख गुण हैं घटनाओं की गतिशीलता, संवादों की प्रवाहमयता एवं स्थान-स्थान पर नाटकीय सोत्प्रास (dramatic irony) का सुन्दर प्रयोग । इनमें से प्रथम दो गुणों की चर्चा ऊपर की जा चुकी है । तीसरे गुण—नाटकीय सोत्प्रास—के कतिपय मनोरम निदर्शन ये हैं :

१. पद्मावती के संबन्ध में चेटी के यह कहने पर कि उसे अवन्ति-नरेश प्रद्योत अपने पुत्र के लिए माँग रहे हैं, वासवदत्ता मन-ही-मन कहती है : **एषा चात्मीयेदानीं संवृत्ता** (पृ० १४) । उसका यह स्वगत कथन प्रस्तुत संदर्भ में असिद्ध होते हुए भी सू[illegible] है । दूसरी ओर,

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri
पद्मावती भी वासवदत्ता को यौगन्धरायण की धरोहर के रूप में स्वीकार करती हुई कहती है : **आत्मीयेदानीं संवृत्ता** (पृ० २०)। राजकुमारी का यह कथन भी प्रस्तुत संदर्भ में उतना अर्थवान् नहीं जितना कि वह अन्य संदर्भ में है; इस अन्य संदर्भ से वह इस समय बिलकुल अनजान है। भाग्य की गति की विचित्रता का यहाँ नाटकीय अङ्कन है।

२. लावाणक के अग्निदाह का वर्णन करते हुए ब्रह्मचारी के यह कहने पर कि वासवदत्ता को बचाने के प्रयत्न में यौगन्धरायण भी आग की लपेट में आ गया, स्वयं यौगन्धरायण के मुँह से नाटककार ने कहलवाया है : **सत्यं पतित इति** (पृ० २४)।

३. तपोवन में एक-दूसरे से विदा होते समय, वृद्ध तापसी पद्मावती को आशीर्वाद देती हुई कहती है : **जाते, तव सदृशं भर्तारं लभस्व**। दूसरी ओर, वह वासवदत्ता को कहती है : **त्वमप्यचिरेण भर्तारं समासादय** (पृ० ३२)। तापसी के शब्दों की अर्थवत्ता अन्त में प्रकट होती है।

४. वासवदत्ता के मुँह से भास ने अनेक बार उदयन के संबन्ध में अनायास प्रशंसा-वचन कहलवाए हैं (द्र० पृ० ३८, ५६)। असावधानी में मुँह से निकले इन शब्दों के प्रतिसमाधान में नाटकीय सोत्प्रास की सुन्दर स्थिति है।

५. वासवदत्ता के भाग्य की यह विडम्बना भी नाटकीय सोत्प्रास का उदाहरण है कि उसे अपनी सपत्नी के लिए कौतुकमाला गूँथनी पड़ती है। लेखक ने उसके मुँह से कहलवाया है : **एतदपि मया कर्तव्यमासीत्। अहो अकरुणाः खल्वीश्वराः!** (पृ० ४४)। उक्त माला में सपत्नीमर्दन नामक औषध को गूँथने का चतुरतापूर्वक परिहार करती हुई वह कहती है : **उपरता तस्य भार्या, तन्निष्प्रयोजनमिति** [इदं न गुम्फितव्यम्] (पृ० ४६)। यह उसके भाग्य की दूसरी विडम्बना है कि वह स्वयं अपने मृत होने की बात कह रही है।

६. जब चेटी उससे कौतुकमाला को शीघ्र ही गूँथने का आग्रह करती हुई कहती है : "आर्ये, इस समय आप कुछ और न सोचें (तुरन्त कौतुकमाला गूँथ दें)", तब वासवदत्ता उत्तर देती है : "मैं कुछ और नहीं सोच सकती!" (पृ० ४४)। वासवदत्ता के लिए इन शब्दों का एक अर्थ है और चेटी के लिए बिलकुल दूसरा।

७. स्वप्नमिलन एवं अन्तिम प्रत्यभिज्ञान के दृश्य भी नाटकीय सोत्प्रास के सुन्दर उदाहरण हैं।

स्वप्न० की मञ्चयोग्यता की दृष्टि से सफलता का आधार है उसमें छोटे-छोटे किंतु सार्थक दृश्यों की योजना। ऐसे कथांश को, जिसे मञ्च पर दिखाना कठिन अथवा अनुचित समझा गया, लेखक ने संवादों के माध्यम से सूचित कर दिया है। ऐसे कथांश हैं लावाणक का अग्निदाह एवं उदयन-पद्मावती का

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

विवाह। भूत अथवा भविष्य की कतिपय आवश्यक घटनाओं को सूचित करने के लिए भास ने प्रवेशक (यथा, द्वितीय, चतुर्थ एवं पञ्चम अङ्कों के आरम्भ में) तथा विष्कम्भक (यथा, षष्ठ अङ्क के आरम्भ में) की योजना की है। इनकी योजना में उसे पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है।

संकलनत्रय अर्थात् देश, काल और कार्य की एकता (unity of place, time and action) की दृष्टि से भी प्रस्तुत नाटक सफल है। उक्त एकता-गुण इसकी मञ्चयोग्यता में सहायक सिद्ध हुआ है। नाटक का प्रत्येक अङ्क केवल एक स्थान से संबन्धित है। समस्त नाटक तीन स्थानों पर घटित दिखाया गया है। ये स्थान हैं : राजगृह के निकट तपोवन (प्रथम अङ्क), राजगृह का प्रासाद एवं प्रमदवन (द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ एवं पञ्चम अङ्क) तथा कौशाम्बी का राजभवन (षष्ठ अङ्क)। अङ्क के बीच में स्थान-परिवर्तन नहीं किया गया है। काल की एकता का भी लेखक ने पूर्ण ध्यान रखा है। एक अङ्क की घटनाएं एक ही दिन से अथवा उसके भी कुछ ही भाग से संबन्धित हैं। नाटक की समस्त घटनाओं का संबन्ध कुछ दिनों, अधिक से अधिक एक मास, से है। नाटक में कार्य की एकता इस बात में है कि दर्शकों के मन को मुख्यतः एक ही अर्थ, वासवदत्ता, में केन्द्रित रखा गया है; उसका चरित्र संपूर्ण नाटक में प्रमुखता से छाया हुआ है।

जीवन-दर्शन तथा संदेश : भास ने प्रस्तुत नाटक के विविध चरित्रों के माध्यम से जीवन के आदर्श मूल्यों का उपस्थापन किया है। उदयन, वासवदत्ता, पद्मावती और यौगन्धरायण—सभी इन आदर्श मूल्यों के वाहक हैं। उत्तरकाल में, हर्ष के उदयन-संबन्धी नाटकों में उदयन और वासवदत्ता जिस रूप में आए हैं उसकी तुलना में भास के ये दोनों पात्र कहीं अधिक उदार और उदात्त हैं। इनके एवं अन्य पात्रों के माध्यम से भास ने अपने जीवन-दर्शन की उपस्थापना की है। इस जीवन-दर्शन के प्रमुख तत्त्व हैं सदाचार, धर्मप्रेम, आत्मत्याग, विनय, उदारता एवं परदुःखकातरता।

भास मनुष्य-जीवन में गुणों की गरिमा स्वीकार करता है, किंतु दूसरों के गुणों के प्रति आदरभाव को वह उससे भी अधिक महनीय मानता है। इसी प्रकार, उपकार महान् गुण है; किंतु दूसरे के उपकार को समझना उससे भी बड़ा गुण है। भास ने इस तथ्य को इन शब्दों में उपस्थापित किया है : **गुणानां वा विशालानां सत्काराणां च नित्यशः। कर्तारः सुलभा लोके विज्ञातारस्तु दुर्लभाः ॥** (४.१०)

भास भाग्य पर विश्वास करता है, परंतु वह निरा भाग्यवादी नहीं—वह भाग्य के साथ पौरुष का मेल देखना चाहता है। उदयन के भाग्य के साथ यौगन्धरायण के प्रयत्नों को जोड़कर उसने उक्त तथ्य को प्रकाशित किया है।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

भाग्य, उसके अनुसार, परिवर्तनशील है : **कालक्रमेण जगतः परिवर्तमाना चक्रारपङ्क्तिरिव गच्छति भाग्यपङ्क्तिः** (१.४); परंतु यह तथ्य उसके लिए निराशा का नहीं आशा का संदेशवाहक है।

भास जीवन में, विशेषतः छात्र-जीवन में, उत्साह के विशेष महत्त्व को आँकता है। राजलक्ष्मी का उपभोग, उसके अनुसार, उत्साहसंपन्न व्यक्ति ही कर सकता है, उत्साहहीन अथवा निर्बल मनुष्य नहीं : **कातरा येऽप्यशक्ता वा नोत्साहस्तेषु जायते। प्रायेण हि नरेन्द्रश्रीः सोत्साहैरेव भुज्यते॥** (६.७)

भास, इस प्रकार, श्रेष्ठ जीवन-मूल्यों का प्रबल व्याख्याकार है। डा० जान्स्टन के अनुसार, वह संस्कृत का प्रथम लेखक है जिसने एक श्रेष्ठ नाटक अथवा काव्य-कृति के प्रमुख तत्त्व के रूप में जीवन-मूल्यों का सही संरक्षण किया है।[11]

इस प्रकार, वस्तुयोजना, चरित्रचित्रण, संवाद, रसपरिपाक, प्रकृतिचित्रण, भाषा शैली, नाट्यशिल्प एवं मञ्चयोग्यता तथा जीवन-दर्शन की व्याख्या—इन सभी दृष्टियों से प्रस्तुत नाटक न केवल भास के नाटकों में प्रत्युत समस्त संस्कृत नाट्यसाहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान का अधिकारी है। प्राचीन और अर्वाचीन तथा प्राच्य और पाश्चात्य—सभी समीक्षा-दृष्टिकोणों से इसका प्रायः समान गौरव है। उक्त समीक्षा-दृष्टिकोणों का समन्वित रूप डा० सुशीलकुमार दे के इस कथन में देखा जा सकता है : "यह नाटक कोमल रसों और भावों से परिपूर्ण है; इसमें (भावों की) गति समरूप, संमित और भव्य है, तथा उसके निर्वाह में संगीत का अथवा शब्दाडम्बर एवं अलंकारभार का हस्तक्षेप नहीं दीख पड़ता जो कि ऐसे रसभाव-पूर्ण नाटकों में प्रायः दृष्टिगोचर होता है। यदि यह नाटक अश्लक्ष्ण और अपरिष्कृत है, तो इसके पक्ष में यह कहा जा सकता है कि यह एक महान् नाटककार की प्रतिभा के संस्पर्श के गौरव से मण्डित है। अतश्च इसे 'भास की सर्वश्रेष्ठ कृति' मात्र कहना अनुचित तथा अनुदारतापूर्ण है।"[12]

प्रमुख पात्रों का चरित्रचित्रण

उदयन

अभिजन, वय, रूप : नाटक के नायक उदयन का संबन्ध भरतवंशी राजाओं के उच्च कुल से है (**भारतानां कुले जातः**, पृ० १२२)। वह वत्स राज्य का शासक है एवं उसकी राजधानी कौशाम्बी है। नाटक में वह एक रूपवान् युवा के रूप में अङ्कित है। वासवदत्ता के शब्दों में वह 'दर्शनीय' (पृ० ३८) है और पद्मावती की चेटी के अनुसार तो वह शरचापहीन साक्षात् कामदेव ही है (पृ० ४४)। मगधराज दर्शक ने उसके, कुल और विद्या के साथ-साथ, अनुरूप वय और सौन्दर्य को देखकर ही उससे अपनी बहिन के विवाह का प्रस्ताव किया

११. डा० पुसालकर, पूर्वोक्त ग्रन्थ, पृ० २६०, में उद्धृत।

१२. हिस्ट्री आफ़ संस्कृत लिटरेचर, पृ० १११।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

था (पृ० ४०)।

कलाप्रेम : उदयन कलाप्रेमी है; वह विशेषतः संगीतकला का उपासक है। वासवदत्ता का वह वीणा-गुरु है। अपने विवाह के अनन्तर, पद्मावती भी उससे वीणावादन सीखने का प्रस्ताव करती है (पृ० ५६)। उदयन की प्रिय वीणा का नाम घोषवती है। यह वीणा अपनी अथवा वासवदत्ता की संपत्ति के रूप में अन्त तक उसके साथ रहती है; यह उसके लिए वासवदत्ता के प्रेम का प्रतीक और उसकी स्मृति का चिह्न है।

आदर्श प्रेम : उदयन आदर्श प्रेम की प्रतिमूर्ति है। वासवदत्ता से उसका प्रेम अगाध, अनन्य एवं उदात्त है। यौगन्धरायण यह भलीभाँति जानता है कि वासवदत्ता के जीवित रहते उदयन के दूसरे विवाह की कल्पना भी नहीं की जा सकती; इसी कारण वह वासवदत्ता की मृत्यु का जनप्रवाद फैलाता है। वासवदत्ता की मृत्यु के समाचार से उसके मन में जो शोकसागर उमड़ता है वह उसके हृदय के निश्छल प्रेम को प्रकाशित करता है। उसके प्रेम का भव्य रूप ब्रह्मचारी के इन शब्दों में अङ्कित है : **नैवेदानीं तादृशाश्चक्रवाका नैवाप्यन्ये स्त्रीविशेषैर्वियुक्ताः** (पृ० २६)। पद्मावती से विवाह हो जाने पर भी वासवदत्ता के प्रति उसका प्रेम पूर्ववत् अक्षुण्ण बना रहता है; 'तैरद्यापि सशल्यमेव हृदयं' (पृ० ५८) कहकर वह उसके प्रति अपने प्रेम की अक्षुण्णता का निर्देश करता है। पद्मावती के साथ विवाह से वह स्वयं को 'पुनरागतदारभार' (पृ० ८२) कहता है एवं 'कान्ता-वियुक्त' (पृ० ६४) मानता है। विदूषक के साग्रह पूछने पर कि वासवदत्ता और पद्मावती में से किसके प्रति उसका प्रेम अधिक गहरा है, वह कहता है : "अपने रूप, शील और माधुर्य के कारण मुझे बहुत मान्य होती हुई भी पद्मावती वासव-दत्ता में लीन मेरे मन को नहीं हर पाती" (पृ० ६८)। वासवदत्ता के प्रेम में उसकी तन्मयता इस सीमा तक है कि वसन्तक के साथ विनोदालाप करते समय उसके मुंह से पूर्वाभ्यास वश बरबस निकल पड़ता है : "वसन्तक, यह सब मैं देवी वासवदत्ता को कहूँगा" (पृ० ७२)। उसके अनुराग को, उसके अपने शब्दों में, 'बद्धमूल' कहा जा सकता है; ऐसे अनुराग को छोड़ पाना कठिन है : **दुःखं त्यक्तुं बद्धमूलोऽनुरागः** (पृ० ७२)। वासवदत्ता की स्मृति में उसकी तल्लीनता उससे उसके स्वप्नमिलन का कारण बनती है; उसका यह स्वप्न-मिलन उसके प्रेम की निष्ठा का सुन्दर निदर्शन है। नींद खुलने पर जब विदूषक उसे कहता है कि वासवदत्ता स्वप्न में दीखी होगी, तब वह अपने जागने पर अनुताप करता है : **यदि तावदयं स्वप्नो धन्यमप्रतिबोधनम्। अथायं विभ्रमो वा स्याद् विभ्रमो ह्यस्तु मे चिरम्॥** (पृ० ९६)। वासवदत्ता की स्मृति उसकी पवित्र निधि है। आखिर वह उसे कैसे भुला सकता है—उसे जो एक साथ उसकी शिष्या, पत्नी और प्रेयसी है (पृ० ११४)? वह तो अबोध घोषवती वीणा से भी प्रत्याशा

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri
करता है कि वह उसे याद करे; वह उसे वासवदत्ता को भूल जाने के लिए उपालम्भ देता है (पृ० १०४)। खोई हुई वीणा को अचानक प्राप्त करके जब वासवदत्ता की स्मृति पुनः जाग जाती है तब उसकी पीड़ा शतधार होकर बहती है (पृ० १०४-६)।

दाक्षिण्य : वासवदत्ता के प्रेम में तल्लीन होकर भी वह पद्मावती के प्रति अपने कर्तव्यों की उपेक्षा नहीं करता। वह पद्मावती के समक्ष वासवदत्ता-विषयक अपनी मनोव्यथा को पूरी सावधानी के साथ संयम में रखने का प्रयत्न करता है, ताकि उस नवोढा के कोमल हृदय को ठेस न पहुंचे। यह उसके दाक्षिण्य का एक पक्ष है। इसकी झलक हमें तब मिलती है जब वासवदत्ता की स्मृति में उसकी आँखें सजल हो जाती हैं और उसी समय वहाँ पद्मावती के आ जाने पर वह कहता है : "काँस के फूलों की धूल पड़ जाने से मेरी आँखों में पानी भर आया है" (पृ० ७६)। वह अपने मन में सोचता है : "यदि सच्ची बात कह दी जाए तो इस नवोढा बाला को बहुत दुःख होगा" (पृ० ७६)। उसके दाक्षिण्य का यह पहलू उस समय भी प्रकट होता है जब पद्मावती के वीणा सिखाने की प्रार्थना करने पर वह मुंह से कुछ न कहकर अपनी पीड़ा को हृदय में ही छिपाए रखता है, यद्यपि उसकी मनोव्यथा का हल्का-सा आभास पद्मावती को हो ही जाता है। उसके इस दाक्षिण्य का उल्लेख करती हुई वह कहती है : "आर्या वासवदत्ता के गुणों को याद करके भी वे दाक्षिण्य वश मेरे सामने नहीं रोते।" (पृ० ५६)। विदूषक के हठ करने पर जब उदयन वासवदत्ता के प्रति अपने अनुरागातिशय की बात स्वीकार करता है, तब पास ही माधवी लतामण्डप में उनके वार्तालाप को चुपचाप सुनकर चेटी के "स्वामी दाक्षिण्यहीन हैं" कहने पर पद्मावती उसका प्रत्याख्यान करती हुई कहती है : "यह उदयन का दाक्षिण्य ही है कि वह अब तक वासवदत्ता के गुणों को याद करते हैं" (**सदाक्षिण्य एवार्यपुत्रः य इदानीमप्यार्याया वासवदत्ताया गुणान् स्मरति**, पृ० ७०)। यहाँ उदयन के दाक्षिण्य के दूसरे पहलू की ओर संकेत है।

कोमल हृदय : उदयन कोमल-हृदय मनुष्य है। वह दूसरे के दुःख को नहीं देख सकता। यही उसकी 'सानुक्रोशता' अथवा परदुःखकातरता है। वासवदत्ता के जल मरने का समाचार सुनकर उसका हृदय तड़प उठता है; वह स्वयं आग में जलकर मर जाना चाहता है। वासवदत्ता उसके इस सानुक्रोशत्व का उल्लेख करती हुई कहती है : **जानामि जानाम्यार्यपुत्रस्य मयि सानुक्रोशत्वम्** (पृ० २६)। पद्मावती के, एवं उससे पहले वासवदत्ता के, उसके प्रति आकृष्ट होने का एक कारण उसका यही गुण था (द्र० पृ० ३६-३८)। पद्मावती के संबन्ध में कहे गए उदयन के "यह नवोढा बाला सच्ची बात सुनकर दुःखी होगी" (पृ० ७६)—इन शब्दों में भी उसकी सानुक्रोशता झलकती है। उसकी यह

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri
सानुक्रोशता उसके अपने परिवार तक ही सीमित नहीं। जब विदूषक माधवीमण्डप के पास भौंरों पर कुपित होता है, तब उदयन उसे रोकते हुए कहता है : "तुम ऐसा मत करो। भौंरों को मत डराओ।...ये बेचारे भौंरे, मेरी भाँति, अपनी प्रियाओं से बिछुड़ जाएँगे" (पृ० ६४)। उदयन के हृदय की कोमलता का आधार वस्तुतः उसका कोमल अनुराग है।

भावुकता : स्नेहप्रवणता और हृदय की कोमलता के साथ-साथ उदयन में भावुकता का गुण भी है। उसका यह गुण तब प्रकट होता है जब वह विदूषक से, विदूषक-सा बनकर, पूछता है : "अब तुम बताओ वासवदत्ता से तुम्हें अधिक स्नेह था या पद्मावती से अब है?" (पृ० ७०)। पद्मावती के पक्ष में उसका उत्तर सुनकर वह और अधिक भावुक हो जाता है और कहता है : "अच्छा, वसन्तक, यह सब-कुछ मैं देवी वासवदत्ता से कहूँगा" (पृ० ७२)। स्वप्न से जागकर वासवदत्ता को देखकर भी, विदूषक के कहने पर कि वह सपने में दीखी होगी, वह अपनी भावुकतावश उसकी बात को स्वीकार कर लेता है (पृ० ८६)।

साहस और वीरता : उदयन के चरित्र के इस पक्ष की एक हल्की-सी झलक उस समय दीख पड़ती है जब वह आरुणि पर विजय प्राप्त करने के लिए प्रयाण की तैयारी करते हुए कहता है : **उपेत्य नागेन्द्रतुरङ्गतीर्णे तमारुणिं दारुणकर्मदक्षम्। विकीर्णबाणोग्रतरङ्गभङ्गे महार्णवाभे युधि नाशयामि॥** (पृ० १००)। फिर भी यह मानना होगा कि उसके चरित्र का यह पक्ष नाटक में अधिक नहीं उभरा है।

गुणज्ञता और कृतज्ञता : उदयन में गुणों के साथ-साथ गुणज्ञता का एवं परोपकार के साथ-साथ कृतज्ञता का असामान्य गुण है। उसका यह गुण, जो उसके अपने शब्दों में 'दुर्लभ' (द्र० **गुणानां वा विशालानां**..., पृ० ७८) है, तब प्रकट होता है जब वह आरुणि पर अपनी विजय को महासेन प्रद्योत के स्नेह और आशीर्वाद का फल मानता है (पृ० ११२)। इसी प्रकार, यौगन्धरायण के वासवदत्ता को छिपाने आदि के षड्यन्त्र पर उससे क्रुद्ध होने के स्थान पर वह उसके प्रति आभार प्रकट करता है; वह कहता है : **मिथ्योन्मादैश्च युद्धैश्च शास्त्रदृष्टैश्च मन्त्रितैः। भवद्यत्नैः खलु वयं मज्जमानाः समुद्धृताः॥** (पृ० १२४)। दूसरे के गुण की यथावसर प्रशंसा करने से वह कभी नहीं चूकता। जब पद्मावती वासवदत्ता के ज्ञातिकुल के कुशल-वृत्तान्त को सुनने की उत्सुकता प्रकट करती है, तब वह एकदम कहता है : **अनुरूपमेतद् भवत्याभिहितं वासवदत्तास्वजनो मे स्वजन इति** (पृ० १०६-८)।

विनम्रता : बड़ों के प्रति विनम्रता का भाव भी उदयन के चरित्र का एक अङ्ग है। उज्जयिनी के कञ्चुकी के कहने पर कि महासेन आप सब लोगों की

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

कुशल पूछते हैं, वह अपने आसन से उठ जाता है और कहता है : 'महासेन की क्या आज्ञा है ?' पुनः कञ्चुकी के कहने पर कि महाराज आसन पर विराजकर ही महासेन का संदेश सुनें, वह कहता है : "जैसी महासेन की आज्ञा" (पृ० ११२)। अन्य गुणों के साथ उसके विनम्रता के इस गुण का उल्लेख यौगन्धरायण इन शब्दों में करता है : **भारतानां कुले जातो विनीतो ज्ञानवाञ्छुचिः** (पृ० १२२)।

व्यवहारकुशलता : उदयन व्यवहारकुशल है। जब उज्जयिनी से कञ्चुकी और धात्री के आने का समाचार पाकर पद्मावती उदयन के पास से यह कहकर जाना चाहती है कि "क्या आप मेरे साथ बैठकर उन लोगों से मिलेंगे ?··· आपने दूसरा विवाह कर लिया है यह बात उनकी उदासीनता का कारण न बन जाए।", तब वह उसे यह कहकर जाने से रोकता है : "जिसे पत्नी से मिलाना चाहिए उसे उससे नहीं मिलाना अधिक बड़ा दोष होगा। अतः तुम बैठ जाओ।" (पृ० १०८)। जब यौगन्धरायण वासवदत्ता के जीवित होने का शुभ समाचार देने के लिए कञ्चुकी और धात्री को शीघ्र ही उज्जयिनी वापिस भेजने का प्रस्ताव करता है, तब उदयन कहता है : "देवी पद्मावती के साथ हम सभी चलेंगे" (पृ० १२६)। यह भी लोकव्यवहार में उसकी निपुणता का प्रमाण है।

धीरललित नायक : उदयन के चरित्र के उपर्युक्त विश्लेषण से उसके चरित्र के विविध पक्षों पर यथेष्ट प्रकाश पड़ता है। उसका चरित्र आदर्श एवं उदात्त है; वह हर्ष-नाटकों के उदयन के समान परकीया से छिपकर प्रेम करने वाला विलासी नायक नहीं है। नाट्यशास्त्रीय परिभाषा के अनुसार, वह धीरललित नायक है। इस नायक की परिभाषा है : **निश्चिन्तो मृदुरनिशं कलापरो धीरललितः स्यात्** (साद० ३.३४)। उदयन भी राज्यभार को मन्त्रियों पर सौंपकर उसके बारे में निश्चिन्त है एवं मृदु (=कोमलहृदय) तथा कलाप्रेमी मनुष्य है।

वासवदत्ता

अभिजन, वय, रूप : नाटक की नायिका वासवदत्ता उज्जयिनी के राजा महासेन प्रद्योत की पुत्री और उदयन की शिष्या, पत्नी एवं प्रेयसी है (पृ० ११४ : **महासेनस्य दुहिता शिष्या देवी च मे प्रिया**)। उसके चेहरे से, उस समय भी जब वह एक ब्राह्मण संन्यासी की प्रोषितपतिका बहिन आवन्तिका के वेष में थी, उसका उच्च अभिजन झलकता है; तभी आश्रम की वृद्ध तापसी उसे देखकर कहती है : "इसकी आकृति से लगता है कि यह कोई राजपुत्री है।" पद्मावती की चेटी उसकी बात का समर्थन करती है : "आर्या ठीक कहती है। मुझे भी ऐसा प्रतीत होता है कि इसने सुख के दिन देखे हैं।" (पृ० २०)। अपने उच्च अभिजन के अनुरूप उसमें स्वाभिमान की भावना है। उसकी यह भावना उसके इन शब्दों में प्रकट होती है : **आर्य, तथा परिश्रमः परिखेदं नोत्पादयति यथायं परिभवः**

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

(पृ० ८)। मगध के राजभवन में, जहाँ वह आवन्तिका के रूप में रहती है, दर्शक की महारानी भी उसके 'महाकुलप्रसूत' होने के बारे में आश्वस्त है (पृ० ४४)। वय की दृष्टि से वह नवयौवना कही जा सकती है। उसके रूप-सौन्दर्य का संकेत भास ने, उसकी करुण स्मृति में लीन उदयन के माध्यम से, इन शब्दों में किया है : **अस्य स्निग्धस्य वर्णस्य विपत्तिर्दारुणा कथम् । इदं च मुखमाधुर्यं कथं दूषितमग्निना ॥** (पृ० ११६)। यहाँ उसके स्निग्ध वर्ण का एवं वदन के माधुर्य का सुन्दर उल्लेख है। अन्यत्र (पृ० ६८ पर) उसके लम्बी अलकों वाले चेहरे की एक हल्की-सी झलक दी गई है।

आदर्श प्रेम : वासवदत्ता आदर्श प्रेम की प्रतिमूर्ति है। उदयन के प्रति उसका प्रेम अगाध एवं अनन्य है। यह प्रेम ऐन्द्रिय अनुराग की अवस्था से आरम्भ होकर क्रमशः उदात्त आत्मिक संबन्ध में परिणत हुआ है। उदयन-विषयक उसका अनुराग अथवा 'उन्माद' उदयन के रूपसौन्दर्य और कोमल हृदय के प्रति उसके अपने कोमल हृदय के स्वाभाविक आकर्षण का फल है (द्र० पृ० ३८ : **अयमपि जन एवमुन्मादितः**)। उसके इस स्वाभाविक आकर्षण की झाँकी उदयन के इन शब्दों में अङ्कित है : **बहुशोऽप्युपदेशेषु यया मामीक्षमाणया । हस्तेन स्त्रस्तकोणेन कृतमाकाशवादितम् ॥** (पृ० ६०)। धीरे-धीरे यह उन्माद प्रगाढ़ स्नेह में बदलता है। फलतः वह अपने प्रिय स्वजनों को छोड़कर उदयन के साथ निकल आती है (पृ० ५६)। स्वजनों को इस प्रकार छोड़ने में उसकी निष्ठुरता लक्षित की जा सकती है, परंतु इसे 'स्वजन-स्नेह पर अनल्प उद्दाम प्रेम की विजय के फल-स्वरूप उसकी विवशता' कहना अधिक समीचीन होगा।

उसका उदात्त प्रेम उसे अपने प्रिय के हित के लिए अपूर्व त्याग की प्रेरणा देता है। उदयन के स्वराज्यलाभ के लिए वह स्वेच्छापूर्वक यौगन्धरायण के आपाततः दारुण षड्यन्त्र में भाग लेती है। वह भलीभाँति जानती है कि यौगन्धरायण की योजना के परिणामस्वरूप उसके प्रिय आर्यपुत्र 'परकीय' हो जाएंगे तथा उसे अपनी सपत्नी स्वीकार करनी होगी। फिर भी वह सहर्ष उसकी योजना में अपना सहयोग देती है। यह प्रेम की वेदी पर एक नारी का अपूर्व आत्म-बलिदान है।

अपने प्रिय से स्वयंवृत वियोग प्राप्त करके भी, वह उसके ध्यान में, उसके योगक्षेम की चिन्ता में, सतत लीन रहती है। ब्रह्मचारी के मुंह से उदयन की शोकातुर दशा सुनकर वह रो पड़ती है (पृ० २६)। पुनः वह यह जानकर आश्वस्त होती है कि रुमण्वान् उसको संभाले हुए है; वह कहती है : **दिष्ट्या सुनिक्षिप्त इदानीमार्यपुत्रः** (पृ० २८)। उदयन के साथ पद्मावती की सगाई की बात सुनकर उसके मन की प्रथम प्रतिक्रिया इन शब्दों में व्यक्त होती है : 'वे राजा कुशलपूर्वक तो हैं न ?' (पृ० ३८)। मगध के राजभवन में माधवीमण्डप के

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

अन्दर से उदयन को स्वस्थ देखकर वह संतोष अनुभव करती है (पृ० ६६)। इसी अवसर पर, राजा को अपनी याद में व्याकुल देखकर, वह पद्मावती से उसे संभालने की प्रार्थना करके स्वयं वहाँ से निकल जाती है। यहाँ उसके शब्द उसकी सहज चिन्ता को प्रकट करते हैं : **अथवा तिष्ठ त्वम्। उत्कण्ठितं भर्तारमुज्झित्वाऽयुक्तं निर्गमनम्। अहमेव गमिष्यामि** (पृ० ७४)। पद्मावती की अस्वस्थता का समाचार पाकर उसके मन में जो पहली प्रतिक्रिया होती है उससे भी उदयन के ध्यान में उसकी सतत तल्लीनता सूचित होती है : "ओह ईश्वर सचमुच मेरे प्रति निष्ठुर है। विरह-पीड़ा में व्याकुल आर्यपुत्र को धीरज बँधाने वाली यह पद्मावती भी अस्वस्थ हो गई" (पृ० ८२)।

उसका आदर्श प्रेम विश्वास के ठोस धरातल पर टिका है। उसे उदयन के अपने प्रति अनन्य प्रेम पर अटूट विश्वास है। उसका यह विश्वास पद्मावती के "जैसे आर्यपुत्र मुझे प्रिय हैं वैसे ही क्या वे वासवदत्ता को भी प्रिय थे?"—इस प्रश्न के उत्तर में उसके मुंह से अनायास निकल पड़े इन शब्दों में मुखरित हुआ है : "इससे भी अधिक!" (पृ० ५६)। उसके इस विश्वास को धात्री से यह जानकर अतिरिक्त बल मिलता है कि उदयन किसी अन्य कार्य से राजगृह आये थे एवं उनके अभिजन आदि को देखकर स्वयं महाराज दर्शक ने उनसे पद्मावती के विवाह का प्रस्ताव किया अर्थात् इस विवाह-संबन्ध की इच्छा से वे राजगृह नहीं आये थे (पृ० ४०)। उसके उक्त विश्वास की पुष्टि पद्मावती के ये शब्द भी करते हैं : **तर्कयाम्यार्याया वासवदत्ताया गुणान् स्मृत्वा दक्षिणतया ममाग्रतो न रोदितीति** (पृ० ५६)। स्वयं उदयन के इन विश्वास-पोषक शब्दों को सुनने का वह सुख अनुभव करती है : **वासवदत्ताबद्धं न तु तावन्मे मनो हरति** (पृ० ६८)। इन शब्दों को सुनकर वह अपने-आपको धन्य मानती है : **दत्तं वेतनमस्य परिखेदस्य** (पृ० ७०)। इसी प्रसङ्ग में आगे चलकर वह कहती है : **भवतु भवतु, विश्वस्तास्मि। अहो प्रियं नामेदृशं वचनमप्रत्यक्षं श्रूयते** (पृ० ७२)।

निर्मल चारित्र : वासवदत्ता के चरित्र का अन्यतम उज्ज्वल पक्ष उसका निर्मल चारित्र है। वह एक पतिव्रता नारी है जो अज्ञातवास के दौरान अपने चारित्र की पूरी जागरूकता के साथ रक्षा करती है (द्र० पृ० ९८)। प्रोषितपतिका के रूप में वह परपुरुष को देखने का (पृ० २२, ६२, ११८) एवं परपुरुष की चर्चा सुनने का (पृ० ४६) सयत्न परिहार करती है।

कोमल एवं भावुक हृदय : वासवदत्ता का हृदय कोमल एवं भावुक है। उसके हृदय की कोमलता की एक मार्मिक छवि उदयन के इन शब्दों में अङ्कित है : **स्मराम्यवन्त्याधिपतेः सुतायाः प्रस्थानकाले स्वजनं स्मरन्त्याः। बाष्पं प्रवृत्तं नयनान्तलग्नं स्नेहान्ममैवोरसि पातयन्त्याः॥** (पृ० ८८)—यद्यपि यहाँ उसकी कोमलता पर उसके अनुराग की विजय दिखाई गई है। ब्रह्मचारी के मुंह से

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

उदयन की शोकातुर दशा का समाचार सुनकर वह रो पड़ती है। इस पर पद्मावती कहती है : "यह परदुःखकातर होगी।" यौगन्धरायण तुरन्त इस बात की पुष्टि करता है : "हाँ बिल्कुल ठीक है। मेरी बहिन परदुःखकातर है।" (पृ० २६)। यौगन्धरायण का यह कथन यद्यपि वास्तविक स्थिति को छिपाने के लिए है, तथापि उसके कथन की सत्यता संदेहातीत है। माधवीमण्डप के बाहर उदयन को, संभवतः लम्बे अरसे के बाद देखकर, उसकी आँखें भर आती हैं, यद्यपि वास्तविकता को छिपाने के उद्देश्य से वह कहती है कि काश-कुसुम की धूल पड़ जाने से आँखें सजल हो गई हैं (पृ० ६६)। उसके हृदय की कोमलता से राजभवन के परिजन भी परिचित हैं; तभी पद्मावती के अस्वस्थ होने पर उसे बुलाने का अनुदेश देती हुई पद्मिनिका मधुकरिका से कहती है : "शीघ्र जाओ, आवन्तिका को बुला लाओ। उसे राजकुमारी की शिरोवेदना की बात ही कहना। वह स्वयं ही चली आएगी।" (पृ० ८०)

वासवदत्ता की भावुकता उन अवसरों पर प्रकट होती है जब उदयन से प्रेमातिरेक वश वह 'समुदाचार का अतिक्रमण' कर बैठती है। अनेक बार वह 'आर्यपुत्र के प्रति पक्षपात के कारण' रहस्य-गोपन रूप अपने कर्तव्य में असावधान हो जाती है, यद्यपि हर बार वह बड़ी चतुराई से असावधानी में मुंह से निकल गई बात का विश्वासोत्पादक स्पष्टीकरण प्रस्तुत करके स्थिति को संभाल लेती है। चेटी के यह कहने पर कि "यदि वह राजा कुरूप हुआ तो ?" अपनी भावुकता वश वह कह बैठती है : "नहीं, नहीं, वे सुन्दर हैं। (पृ० ३८)। आगे, धात्री द्वारा "उदयन ने राजकुमारी का संबन्ध स्वीकार कर लिया है" कहे जाने पर उसका भावुक हृदय बोल पड़ता है : **अत्याहितम्** (पृ० ३८)। इसी प्रकार पद्मावती के पूछने पर कि 'क्या वासवदत्ता को भी राजा उदयन वैसे ही प्रिय थे जैसे वह मुझे हैं ?', उसके मुंह से अनायास निकल जाता है : **'इससे भी अधिक'** (पृ० ५६)।

सहिष्णुता और संयम : वासवदत्ता में आत्मत्याग के साथ-साथ सहिष्णुता और संयम का गुण भी है। वह अपने दुःख को पूरी सहनशीलता के साथ और अपने हृदय को पूर्ण संयम के साथ संभालती है, यद्यपि वह यह समझती है कि वह एक दुष्कर कार्य कर रही है (पृ० ५४)। केवल एकान्त में ही वह अपनी पीड़ा को सहलाती है : **अहो अत्याहितम्। आर्यपुत्रोऽपि नाम परकीयः संवृत्तः।···धन्या खलु चक्रवाकवधूः, या विरहिता न जीवति। न खल्वहं प्राणान् परित्यजामि। आर्यपुत्रं पश्यामीत्येतेन मनोरथेन जीवामि मन्दभागा** (पृ० ४२)। उदयन को सपने में बातें करते देखकर और उसके मुंह से अपना नाम सुनकर वह थोड़ी देर के लिए विचलित हो जाती है और उसकी बातों का उत्तर देने लग पड़ती है, परन्तु वह शीघ्र ही अपने-आपको संयत कर लेती है (पृ० ६४)।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

हृदय की उदारता : वह उदारहृदय नारी है। पद्मावती को अपनी सपत्नी

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

के रूप में जानती हुई भी वह उससे अमित स्नेह करती है (तु० पृ० ४४), और सदा उसकी कुशलता एवं स्वास्थ्य की कामना करती है (द्र० पृ० ४६, ६२)। कहीं भी वह पद्मावती के प्रति कटुता अथवा ईर्ष्या का भाव नहीं दिखाती। इस दृष्टि से वह हर्ष के नाटकों की वासवदत्ता से नितान्त भिन्न है। पद्मावती के यह कहने पर कि "मैंने अनजाने में आपसे सखी का-सा व्यवहार करके शिष्टाचार का उल्लङ्घन किया है", वह संक्षिप्त, सौम्य एवं उदार उत्तर देती है : **अर्थिस्वं नाम शरीरमपराध्यति** (पृ० १२४; द्र० उक्त पर टि०)।

कलानिपुणता : वासवदत्ता कलाओं में निपुण एवं प्रत्युत्पन्नमति है। वह वीणा-वादन में प्रवीण है। यह प्रवीणता उसने उदयन से प्राप्त की है जिसकी कि वह प्रिय शिष्या है। अन्य कलाओं (यथा, माला-गुम्फन) में भी वह निपुण है (पृ० ४४)। मधुर कथाएं सुनाकर मनोविनोद करने में भी वह दक्ष है (पृ० ८०)। उसकी प्रत्युत्पन्नमतिता उसके द्वारा मुंह से असावधानी में निकल गई बात का विश्वासोत्पादक स्पष्टीकरण प्रस्तुत करने में दीख पड़ती है।

कुल मिलाकर, वासवदत्ता आदर्श प्रेम और त्याग की प्रतिमूर्ति है। उसका हृदय कोमल, भावुक एवं उदार है तथा उसका चरित्र उदात्त है। वह पतिव्रता है और पति के अनन्य प्रेम की स्वामिनी है। अत एव वह 'धन्य' है, और 'दग्ध होकर भी अदग्ध' है : **धन्या सा स्त्री यां तथा वेत्ति भर्ता भर्तृस्नेहात्सा हि दग्धाप्यदग्धा** (पृ० २८)।

पद्मावती

अभिजन, वय, रूप : नाटक की उपनायिका पद्मावती का संबन्ध मगध के राजकुल से है; वह मगधराज दर्शक की बहिन है (पृ० १०)। उसका चरित्र और व्यवहार पद-पद पर उसके उच्च कुल की सूचना देते हैं। प्रारम्भ में वह बाल्य और यौवन की वयःसंधि में स्थित कन्या के रूप में आती है। उसके इस रूप की झाँकी इस शब्दचित्र में अङ्कित है : **इयं भर्तृदारिकोत्कृतकर्णचूलिकेन व्यायामसंजातस्वेदबिन्दुविचित्रितेन परिश्रान्तरमणीयदर्शनेन मुखेन कन्दुकेन क्रीडन्तीत एवागच्छति** (पृ० ३४)। बाद में उदयन से विवाह के अनन्तर वह 'नवोद्वाहा बाला' (पृ० ७६) के रूप में अवतरित होती है। अपने उच्च कुल के अनुरूप वह अप्रतिम रूपसौन्दर्य से संपन्न है; उसे देखकर वासवदत्ता की प्रथम प्रतिक्रिया है : "इसका रूप निस्संदेह इसके अभिजन के अनुरूप है।" (पृ० १२)। उदयन भी उसके रूपसौन्दर्य से प्रभावित है (पृ० ६८)। उस-सी रूपवती पत्नी को पाकर ही वह अपने दुःख को कुछ-कुछ भूलने-सा लगा था (पृ० ८४ : **रूपश्रिया समुदितां··· लब्ध्वा प्रियां मम तु मन्द इवाद्य शोकः**)। विदूषक भी उसके तारुण्य और दर्शनीयता की उन्मुक्त भाव से प्रशंसा करता है (पृ० ७०)।

शील : पद्मावती शील अथवा श्रेष्ठ स्वभाव और उदात्त चरित्र की प्रतिमूर्ति

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

है। उदयन उसके रूप के साथ-साथ शील का भी उल्लेख करता है (पृ० ६८)। उसने उसके इस शील को चारित्रिक गुणों के रूप में भी उल्लिखित किया है (पृ० ८४)। पद्मावती के ये चारित्रिक गुण हैं उसका धर्मानुराग, उसकी धीरता, चरित्र की दृढ़ता, गुणग्राहिता, उदारता, गुरुजनों के प्रति आदरभाव, एवं क्रोध, अहंकार, ईर्ष्या आदि दोषों का सर्वथा अभाव।

उसका धर्मानुराग अपूर्व है, और वह इसके लिए प्रसिद्ध है। अपने धर्म-प्रेम के कारण वह तपस्वियों के धार्मिक कार्यों के अनुष्ठान में कोई बाधा नहीं देखना चाहती; यह उसका कुलव्रत है (पृ० १२)। अपनी धार्मिक वृत्ति के अनुरूप वह आश्रम में मुँहमाँगा दान देकर 'अपने-आपको अनुगृहीत करना' चाहती है (पृ० १४, १६), एवं याचक के मिलने पर अपनी तपोवन-यात्रा को सफल मानती है (पृ० १६)। यौगन्धरायण ठीक ही उसे 'दृष्टधर्मप्रचारा' मान-कर अपनी बहिन के चारित्र की रक्षा करने में समर्थ आँकता है : **धीरा कन्येयं दृष्टधर्मप्रचारा शक्ता चारित्रं रक्षितुं मे भगिन्याः** (पृ० १६)।

पद्मावती के धीरता के गुण को भी यहाँ यौगन्धरायण आँकता है। उदयन भी उसे 'धीरस्वभावा' कहता है (पृ० ७६)। उदयन के वासवदत्ता से अनुरागा-तिशय की बात (पृ० ५६, ६८) को सुनकर भी उसका मन ईर्ष्याकषायित नहीं होता—यह उसके अपूर्व 'धीरस्वभावत्व' का निदर्शन है।

उसके चरित्र की दृढ़ता का भव्य रूप वहाँ अङ्कित है जहाँ वह कञ्चुकी के यह कहने पर कि "इस (यौगन्धरायण) की प्रार्थना बहुत बड़ी है। इसे कैसे अङ्गीकार किया जा सकता है?" तत्क्षण आदेश देती है : "पहले कौन क्या चाहता है?—यह घोषित करके इस समय आनाकानी करना ठीक नहीं है। अतः इनकी यह प्रार्थना स्वीकार की जाए।" (पृ० १८)।

उसकी गुणग्राहिता अपूर्व है। उदयन के मुँह से अपने संबन्ध में **वासवदत्ता-बद्धं न तु तावन्मे मनो हरति** (पृ० ६८)—ये शब्द सुनकर वह, चेटी की भाँति, राजा को दाक्षिण्यहीन नहीं कहती, प्रत्युत वह इस बात में राजा का दाक्षिण्य-गुण देखती है कि वह अभी तक वासवदत्ता के गुणों को याद करता है (पृ० ७०)।

पद्मावती के हृदय की उदारता नाटक में सर्वत्र अङ्कित है। अपने प्रिय की पूर्व पत्नी वासवदत्ता के स्वजनों को वह अपना स्वजन मानती है (पृ० १०६, १०८), एवं उनके प्रति पूर्ण आदरभाव और स्नेह प्रकट करती है।

गुरुजनों के प्रति आदरभाव उसके शील का अविभाज्य अङ्ग है (पृ० १०)। चित्र में अङ्कित वासवदत्ता को देखकर वह उसे अभिवादन करने की इच्छा व्यक्त करती है (पृ० ११६)। अन्त में यह प्रकट होने पर कि आवन्तिका ही वासवदत्ता है, वह उससे सखी का-सा व्यवहार करने के लिए विनम्रता-पूर्वक क्षमायाचना करती है (पृ० १२४), यद्यपि सखी के रूप में भी उसने उसका कभी अनादर या

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

तिरस्कार नहीं किया था।

उसके चरित्र में क्रोध, अहंकार, ईर्ष्या आदि दोषों का नितान्त अभाव है। विदूषक द्वारा 'अकोपना' और 'अनहंकारा' के रूप में उसका वर्णन (पृ० ७०) यथार्थ है। ऐसे अवसरों पर भी जहाँ उसके कुपित होने की संभावना हो सकती है, हम उसे पूर्णतः शान्तचित्त पाते हैं। उसके "जैसे आर्यपुत्र मुझे प्रिय हैं, क्या वैसे ही वे वासवदत्ता को भी प्रिय थे?" के उत्तर में वासवदत्ता के "उससे भी अधिक!" कहने पर उसका ईर्ष्याजनित क्रोध जाग सकता था, परंतु वह "ठीक है।" कहकर अपने प्रशान्त मन की सूचना देती है (पृ० ५६)। इसी प्रकार, वासवदत्ता की स्मृति में उदयन की आँखों के सजल हो जाने पर जब विदूषक काश-कुसुम की धूल के राजा की आँखों में पड़ जाने का बहाना बनाता है, तब उसमें क्रोध का उदय हो सकता था, परंतु उसकी प्रसादपूर्ण एवं गुण-ग्राहिणी बुद्धि विदूषक के व्यवहार में गुण ही देखती है: "दाक्षिण्ययुक्त मनुष्य के सेवक भी दाक्षिण्ययुक्त होते हैं।" (पृ० ७६)। अहंकार और ईर्ष्या का अभाव भी उसके चरित्र का उज्ज्वल पक्ष है।

माधुर्य : पद्मावती माधुर्य की मूर्ति है। मधुर वाणी और मधुर व्यवहार उसके चरित्र के स्वाभाविक गुण हैं। उसकी एकाध बात सुनकर ही वासवदत्ता उसकी मधुर वाणी से प्रभावित हो जाती है (पृ० १४)। माधुर्य के साथ-साथ दाक्षिण्य भी उसके स्वभाव का अभिन्न अङ्ग है। विदूषक उसे 'मधुरवाक्' एवं 'सदाक्षिण्या' कहता है (पृ० ७०)। उसके वीणावादन सिखाने की प्रार्थना करने पर जब उदयन कुछ न कहकर चुप रह जाता है, तब वह दाक्षिण्य वश उसे इसके लिए विवश नहीं करती; प्रत्युत वासवदत्ता के पूछने पर कि "इससे तुम क्या सोचती हो?" वह उत्तर में केवल यही कहती है: "मैं सोचती हूं कि उन्हें इससे आर्या वासवदत्ता की याद आ गई होगी, परंतु दाक्षिण्य वश वे मेरे आगे रोए नहीं" (पृ० ५६)। पद्मावती का यह दाक्षिण्य-गुण उस समय भी प्रकट होता है जब वह विदूषक और उदयन के द्वारा प्रस्तुत काश-कुसुम की धूल के आँखों में पड़ जाने के झूठे बहाने पर कुपित होने अथवा सच्ची बात कहकर उन्हें वहाँ लज्जित करने के स्थान पर उनके दाक्षिण्य-गुण की प्रशंसा करती है (पृ० ७६)। उज्जयिनी से कञ्चुकी और धात्री के आने पर, वासवदत्ता के स्वजनों का कुशल समाचार जानने को उत्सुक होती हुई भी, वह उस अवसर पर राजा के पास बैठने में संकोच व्यक्त करती है; वह नहीं चाहती कि उसकी उपस्थिति से राजा और उसके अतिथि किसी अशोभन अथवा दुविधापूर्ण स्थिति का सामना करें। परंतु जब राजा उसकी उपस्थिति का औचित्य बताता है, तब वह तुरन्त उसकी बात मान जाती है (पृ० १०८)। पद्मावती का दाक्षिण्य यहाँ सुस्पष्ट रूप में उभरा है।

उसके माधुर्य का अन्यतम रूप उसकी कोमल अनुरागभावना है, जिसकी

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

अभिव्यक्ति वह आभिजात्य-प्रेरित शालीनता के साथ करती है। उदयन पर वह आरम्भ से ही अनुरक्त है, परंतु अपने अनुराग को वह शायद ही शब्दों के माध्यम से व्यक्त करती है। उदयन के संबन्ध में यह जानकर कि वह (वासवदत्ता के जल मरने का समाचार सुनकर) मूर्च्छित हो गया था, परंतु फिर होश में आ गया, वह बड़े संयत शब्दों में अपने हृदय की प्रतिक्रिया को प्रकट करती है : **दिष्टया ध्रियते। मोहं गत इति श्रुत्वा शून्यमिव मे हृदयम्** (पृ० २६)। चेटी के पूछने पर कि "क्या कोई और स्त्री उसकी रानी बनेगी?", वह चुप रहती है, यद्यपि वह मन-ही-मन सोचती है : "इसने मेरे दिल की बात कही है" (पृ० ३०)। उदयन के प्रति उसके अनुराग का आधार उदयन का कोमल हृदय (सानुक्रोशत्व) है (द्र० पृ० ३६)। पद्मावती स्वयं कोमलहृदय है, अतः उसका कोमलहृदय व्यक्ति से सहज अनुराग स्वाभाविक है। उदयन के प्रति अपने अनुराग को वह विवाह के अनन्तर भी प्रकारान्तर से अथवा संयत शब्दों द्वारा ही व्यक्त करती है। चेटी को शेफालिका के फूलों को और अधिक तोड़ने से रोकती हुई वह आर्यपुत्र के प्रति अपने स्नेहपूर्ण आदरभाव को इन शालीनता-पूर्ण शब्दों में प्रकट करती है : "आर्यपुत्र यहाँ आकर फूलों की इस अद्भुत बहार को देखेंगे तो मैं संमानित अनुभव करूंगी।" (पृ० ५४)। आगे, वासवदत्ता के "क्या स्वामी तुम्हें प्यारे लगते हैं?" पूछने पर वह शालीनतापूर्ण उत्तर देती है : "आर्ये, यह मैं नहीं जानती। परंतु आर्यपुत्र के विरह में मैं व्याकुल हो जाती हूं।" चेटी इस पर टिप्पणी करती हुई कहती है : "स्वामी मुझे प्रिय हैं— यह बात राजकुमारी जी ने बड़े कुलीनतापूर्ण ढंग से कही है।" (पृ० ५४-५६)।

कुल मिलाकर, पद्मावती सौन्दर्य, शील और माधुर्य-भरित अनुराग की मूर्ति है। नाटक में उसकी स्थिति, इसीलिए, प्रतिनायिका की न होकर उपनायिका की है।

यौगन्धरायण

उदयन का सचिव : यौगन्धरायण नाटक के प्रधान पात्रों में से एक है, यद्यपि वह मञ्च पर बहुत कम आता है। वह राजा उदयन का सचिव है (पृ० २४)। उदयन के वासवदत्ता में एवं ललितकलाओं में अत्यधिक आसक्त रहने के कारण, राज्यप्रबन्ध का प्रायः सारा भार उसके कन्धों पर है। वह राजा का विश्वासपात्र एवं निष्ठावान् सेवक है। राजा के स्वराज्यलाभ के हेतु वह दुष्कर योजना बनाता है, और अपनी इस योजना में अन्य मन्त्रियों तथा वासवदत्ता एवं विदूषक का विश्वास और सहयोग प्राप्त करता है।

स्वामिभक्ति : उसकी स्वामिभक्ति अद्भुत है। वह स्वयं को स्वामिहित के लिए सर्वतोभावेन समर्पित कर देता है। उसकी स्वामिभक्ति पूर्णतः संदेहातीत है। राजा को, मन्त्रिजनों को एवं वासवदत्ता आदि को उसपर पूर्ण विश्वास है। उनके इस अटूट विश्वास का आधार उसकी अपनी शुचिता और निष्कपटता

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

(honesty and sincerity) है। इसी अटूट विश्वास के सहारे वह अपनी योजना को आगे बढ़ाता है।

दूरदर्शिता एवं प्रत्युत्पन्नमतिता : सचिव के रूप में वह राजनीतिनिपुण, दूरदर्शी एवं प्रत्युत्पन्नमति है। राजा के स्वराज्यलाभ के उपाय के रूप में मगधराज की बहिन पद्मावती से उसका विवाहसंबन्ध स्थापित कराने की उसकी योजना उसकी राजनीतिनिपुणता और दूरदर्शिता का निदर्शन है। इस योजना में वह अपनी प्रत्युत्पन्न बुद्धि के परिणामस्वरूप सफलता प्राप्त करता है। जब पद्मावती का कञ्चुकी "किसे आज क्या चाहिए?" कहकर पद्मावती की ओर से मुंहमांगा दान करने की घोषणा करता है, तब वह तुरन्त अपनी योजना को कार्यान्वित करने के लिए उपयुक्त मार्ग खोज लेता है (पृ० १६)। वासवदत्ता को उसकी सूझबूझ पर पूरा भरोसा है। क्षण भर के लिए वह यह जानकर घबराती है कि यौगन्धरायण उसे पद्मावती के पास छोड़ना चाहता है, परंतु दूसरे ही क्षण वह यह सोचकर आश्वस्त होती है कि यौगन्धरायण जो भी कार्य करेंगे भलीभाँति सोचकर ही करेंगे (द्र० पृ० १८ : **भवतु, अविचार्य क्रमं न करिष्यति**)। उसकी गहरी सूझबूझ इस बात में प्रकट होती है कि वासवदत्ता को यह सोचकर पद्मावती के पास छोड़ता है कि वह, ज्योतिषियों के एवं उसकी अपनी योजना के अनुसार, उदयन की पत्नी बनेगी और इस प्रकार वासवदत्ता के चारित्र के संबन्ध में असंदिग्ध प्रमाण रूप होगी (पृ० २०)। वह वासवदत्ता के अभाव में राजा की विक्षुब्ध अवस्था की पूर्वकल्पना कर लेता है, और इस दिशा में भी उचित व्यवस्था करता है; रुमण्वान् नामक अमात्य को वह राजा को संभालने का कार्य सौंपता है (द्र० पृ० २८)। वस्तुतः उसकी उलझनपूर्ण योजना की सफलता के पीछे उसकी दूरदर्शिता और सूझबूझ का विशेष हाथ है।

निरभिमानता एवं विनयभाव : इतनी बड़ी दुष्कर योजना को फलान्वित करते हुए भी वह अभिमान से सर्वथा रहित है, एवं अपने सहयोगियों को अपने से भी अधिक श्रेय देने को तत्पर है। इस संबन्ध में रुमण्वान् के बारे में उसका यह कथन द्रष्टव्य है : "मेरा भार तो विश्रामयुक्त है, परंतु उसका भार निरन्तर श्रमपूर्ण है" (पृ० २८)। अपनी योजना के सफल हो जाने पर भी वह इसके संबन्ध में राजा की प्रतिक्रिया के बारे में आशङ्कित है (पृ० १२०); यह उसके सौजन्य और विनयभाव का सूचक है। राजा के समक्ष अपने वास्तविक रूप में प्रकट होने पर वह सर्वप्रथम वासवदत्ता को छिपा रखने में अपना अपराध स्वीकार करता है और राजा से सविनय क्षमा-याचना करता है (पृ० १२४)। अपने इस महान् और कठिन कार्य के प्रतिफल के रूप में किसी पुरस्कार की कामना न करके वह अपनी महानता और निःस्वार्थ स्वामिभक्ति का प्रमाण प्रस्तुत करता है। और तो और, वह अपनी योजना की सफलता का

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

कारण अन्ततः उदयन के भाग्य को मानता है और स्वयं को 'स्वामिभाग्य का अनुगामी' कहता है (पृ० १२४)। यह उसके अहंकाररहित विनयभाव का उज्ज्वल उदाहरण है। इस अवसर पर उसके प्रति राजा के ये शब्द उसके महान् चरित्र का सही मूल्याङ्कन करते हैं : **मिथ्योन्मादैश्च युद्धैश्च शास्त्रदृष्टैश्च मन्त्रितैः। भवद्यत्नैः खलु वयं मज्जमानाः समुद्धृताः ॥** (पृ० १२४)।

उसके 'युगंधर' चरित्र को देखते हुए उसके यौगन्धरायण नाम को पूर्णतः अर्थवान् कहा जा सकता है। वह एक विश्वासपात्र, स्वामिभक्त, राजनीतिनिपुण, दूरदर्शी एवं व्युत्पन्नमति तथा कर्मनिष्ठ मन्त्री है।

वसन्तक

राजा उदयन का नर्मसचिव : वसन्तक अथवा विदूषक[13] वत्सराज उदयन का नर्मसचिव है; इस रूप में वह अपनी हास्योत्पादक शारीरिक मुद्रा, वेषभूषा, चेष्टाओं एवं वचनों से राजा का मनोरञ्जन करता है। उसके मनोरञ्जन का ढंग निराला है। कभी वह अपने प्रिय भोज्यपदार्थ लड्डुओं की बात करके और कभी अधिक खा-पी लेने से अजीर्ण हो जाने की शिकायत करके हास्यविनोद के वातावरण की सृष्टि करता है। कभी वह राजा से कोई अटपटा-सा प्रश्न कर बैठता है और उसे विचित्र संकट में डाल देता है तथा तब तक चुप नहीं बैठता जब तक उसे अपने प्रश्न का उत्तर नहीं मिल जाता। उदाहरणार्थ, वह राजा से पूछ बैठता है : "आपको वासवदत्ता अधिक प्रिय थी या पद्मावती अधिक प्रिय है?" राजा उसके वातूनी स्वभाव से परिचित है, अतः वह उसके प्रश्न का उत्तर देने से आनाकानी करता है, परंतु उसके विचित्र आग्रह के सामने उसे झुकना पड़ता है (पृ० ६६-६८)। कभी-कभी उल्टी-सीधी कहानी सुनाकर भी वसन्तक राजा का मनोविनोद करता है। ऐसी ही एक कहानी सुनाते हुए वह नगर (काम्पिल्य) के नाम को राजा का नाम और राजा के नाम (ब्रह्मदत्त) को नगर का नाम बताता है। गल्ती का निर्देश किए जाने पर वह कहता है : "तो आप तनिक ठहरिए, मैं इसे भलीभाँति रट लूं : राजा ब्रह्मदत्त और नगर काम्पिल्य। [कई बार इसको रटकर] अच्छा, अब आप सुनिए" (पृ० ९०)।

पेटू और डरपोक : प्रायः प्रत्येक अवसर पर वह खाने-पीने की बात करता है। राजा के विवाह के अवसर पर मगध के राजप्रासाद में वह देवलोक-का सा आनन्द अनुभव करता है, परंतु वह इस बात से दुःखी है कि उसका खाना अच्छी तरह नहीं पचता और उसे सुकोमल सेज पर भी नींद नहीं आती (पृ० ५०)। आगे, वह भोजन से अरुचि दिखाते हुए चेटी से कहता है : "भोजन को छोड़कर और जो चाहो ले आओ।" चेटी के कहने पर कि "भोजन को क्यों मना करते हो?" वह कहता है : "जैसे कोयल की आँख की पुतली घूम जाती

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

१३. विदूषक की परिभाषा के लिए, द्र० पृ० १५०।

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

है इसी तरह इस समय मेरे पेट में उलटफेर मचा हुआ है।" (पृ० ५२)। स्पष्टतः, वह 'कौवे' के स्थान पर 'कोयल' कह जाता है। पद्मावती के प्रति उसके विशेष आदरभाव का कारण यह है कि वह हरदम स्निग्ध भोज्य-पदार्थ लेकर उसे खोजती फिरती है कि आर्य वसन्तक कहाँ गए हैं? (पृ० ७०)। उसका डरपोक स्वभाव तब प्रकट होता है जब वह मुख्य तोरणद्वार से जमीन पर गिरी हुई सीधी और लम्बी तथा कुछ हिलती हुई माला को साँप समझकर चीख उठता है (पृ० ८६)।

निरक्षर, स्थूलबुद्धि ब्राह्मण : वह निरक्षर ब्राह्मण है, तथा उसकी बुद्धि मोटी है। उदयन के यह कहने पर भी कि "मैं वासवदत्ता अथवा पद्मावती के प्रति अपने अनुरागातिशय के संबन्ध में कुछ नहीं कहूँगा, क्योंकि तुम बातूनी हो, किसी को (स्पष्टतः पद्मावती को) कह दोगे", वह उदयन के इस बात से ध्वनित उत्तर को नहीं पकड़ पाता, और उसे सब-कुछ स्पष्ट शब्दों में कहने को बाध्य करता है (पृ० ६८)। नगर और राजा के स्पष्ट नामों के संबन्ध में भी वह भ्रम करता है; यह भी उसकी मोटी बुद्धि का नमूना है।

समझदार एवं प्रत्युत्पन्नमति : कभी-कभी वह अपनी समझदारी और सूक्ष्म बुद्धि का भी परिचय देता है। वासवदत्ता की याद में राजा की आँखों के सजल हो जाने पर एवं उसी समय वहाँ पद्मावती के आ जाने पर वह बड़ी समझदारी और चालाकी से स्थिति को संभालता है। उसकी प्रत्युत्पन्न बुद्धि यह बहाना घड़ती है कि काश-कुसुम की धूल पड़ जाने से राजा की आँखें जलपूर्ण हो गई हैं (पृ० ७६)। उसकी यह अवसरोचित चेष्टा उसके दाक्षिण्य को भी सूचित करती है। तभी पद्मावती कहती है ; **अहो सदाक्षिण्यस्य जनस्य परिजनोऽपि सदाक्षिण्य एव भवति।** इस अवसर पर पद्मावती को कुछ सोचने या कुछ और पूछने का मौका न देने के उद्देश्य से वह राजा को वहाँ से तुरन्त यह बहाना बनाकर निकाल ले जाता है कि "अपराह्ण काल में माननीय मगधनरेश आपको आगे करके अपने सुहृद्गण से भेंट करेंगे।...अतः आप उठिए, चलें।" (पृ० ७८)। उत्तरदायित्वपूर्ण कार्यों को निभाने में वह पूरी समझदारी दिखाता है। उसकी बुद्धिमत्ता पर विश्वास करके ही यौगन्धरायण अपनी योजना में उसे संमिलित करके उसका सहयोग प्राप्त करता है। इस योजना-संबन्धी रहस्यगोपन में वसन्तक पूरी सावधानी बरतता है। उदयन द्वारा वासवदत्ता के देखे जाने की बात को वह स्वप्न कहकर इस चतुरता से टाल देता है कि राजा को उसकी बात पर विश्वास आ जाता है (पृ० ९६)। इसके बाद वह राजा को इस संबन्ध में अधिक सोचने का अवसर न देने के लिए "छोड़िए इस व्यर्थ की बात को" कहकर तुरन्त वहाँ से अन्यत्र ले जाता है (पृ० ९८)।

राजा का विश्वासपात्र मित्र : वसन्तक राजा का नर्मसचिव होने के

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

साथ-साथ उसका विश्वासपात्र एवं कुशल मित्र और सलाहकार भी है । राजा कोई भी बात उससे छिपाकर नहीं रखता अथवा नहीं रख सकता । यौगन्धरायण की भाँति विदूषक भी राजा के हित का सतत ध्यान रखता है । दुःखी राजा को धैर्य बँधाने तथा उसका मनोविनोद करने के कार्य को वह पूरी तत्परता और कुशलता के साथ निभाता है । अनपढ़ होने पर भी वह सुसंस्कृत एवं दाक्षिण्यसंपन्न है ।

कुल मिलाकर, वसन्तक राजा का नर्मसचिव होने के साथ-साथ, उसका मार्गदर्शक, मित्र एवं बुद्धिसचिव भी है । ✓

नाटक के पात्र

पुरुष पात्र

उदयन : वत्सदेश का राजा, नाटक का नायक ।

वसन्तक : विदूषक, उदयन का नर्म-सचिव ।

यौगन्धरायण : उदयन का सचिव ।

ब्रह्मचारी : लावाणक से आया एक छात्र ।

काञ्चुकीय : (१) मगधराज दर्शक का कञ्चुकी (पृ० ८), (२) वत्सराज उदयन का कञ्चुकी (पृ० १०२), (३) अवन्तिराज प्रद्योत का कञ्चुकी (पृ० ११०) ।

सूत्रधार : रङ्गमञ्च का प्रबन्धक ।

भट, संभषक : मगधराजकुमारी पद्मा-वती के दो सेवक ।

स्त्री पात्र

वासवदत्ता : अवन्तिराज प्रद्योत की पुत्री, उदयन की पहली पत्नी, आवन्तिका ।

पद्मावती : मगधराज दर्शक की बहिन, उदयन की दूसरी पत्नी ।

तापसी : आश्रमवासिनी वृद्ध तपस्विनी ।

आवन्तिका : यौगन्धरायण की बहिन के वेष में वासवदत्ता ।

धात्री : (१) पद्मावती की धाय (पृ० ३८), (२) वासवदत्ता की धाय वसुन्धरा (पृ० ११०) ।

विजया : उदयन की प्रतीहारी, द्वार-पालिका ।

चेटी : पद्मावती की दासी ।

पद्मिनिका, मधुकरिका : पद्मावती की दासियाँ ।

नाटक में उल्लिखित अन्य पात्र

प्रद्योत (महासेन) : अवन्ति का राजा, वासवदत्ता का पिता (पृ० १४, ३६) ।

दर्शक : मगध का राजा, पद्मावती का भाई (पृ० १०) ।

रुमण्वान् : उदयन का अमात्य (पृ० २८, १२६) ।

आरुणि : उदयन का पड़ोसी, शत्रु राजा (पृ० ६८) ।

गोपालक, पालक : प्रद्योत के दो पुत्र, वासवदत्ता के भाई (पृ० ११४) ।

पुष्पकभद्र : कौशाम्बी का कोई ज्योतिषी ।

महादेवी : दर्शक की माता (पृ० १०) ।

भट्टिनी : दर्शक की पत्नी (पृ० ४४) ।

अवन्तिसुन्दरी : राजगृह की यक्षिणी (पृ० ६६) ।

विरचिका : उदयन की दासी (पृ० ६४) ।

अङ्गारवती : प्रद्योत की पत्नी, वासव-दत्ता की माता (पृ० १०२) ।

कुञ्जरिका : पद्मावती की दासी (पृ० ३४) ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

स्वप्नवासवदत्तम्

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

॥ श्रीः ॥

स्वप्नवासवदत्तम्

[नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः]

सूत्रधारः—

उदयनवेन्दुसवर्णावासवदत्ताबलौ बलस्य त्वाम् ।
पद्मावतीर्णपूर्णौ वसन्तकम्रौ भुजौ पाताम् ॥ १ ॥

एवमार्यमिश्रान् विज्ञापयामि । अये ! किन्नु खलु मयि विज्ञापनव्यग्रे शब्द इव श्रूयते । अङ्ग ! पश्यामि ।

[नेपथ्ये]

उस्सरह उस्सरह अय्या ! उस्सरह ।
उत्सरत उत्सरत आर्याः ! उत्सरत ।

विजयवैजयन्ती व्याख्या ।

अथ तत्रभवान् महाकविर्भासः स्वप्नवासवदत्ताभिधानं नाटकं चिकीर्षुर्विघ्नोपशान्तये विहिते नान्दीरूपमङ्गले सूत्रधारस्य प्रवेशं तावन्निर्दिशन्नाह— **'नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः'** इति । तत्र नान्दी नाम नाटकप्रयोगारम्भे देवतापरिषदानन्दनार्थमभिनयप्रारम्भसूचनार्थं च क्रियमाणा गीतवाद्यवादनक्रियोच्यते, तस्या नान्द्या अन्ते अवसाने नान्दीसमापनानन्तरमित्यर्थः । नान्दीलक्षणं यथा—'आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात् प्रयुज्यते । देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता ॥' इति । सूत्रं धारयतीति सूत्रधारः । तल्लक्षणं यथा—'नाट्यस्य यदनुष्ठानं तत् सूत्रं स्यात् सबीजकम् । रङ्गदैवतपूजाकृत् सूत्रधार उदीरितः ॥' इति । 'आसूत्रयन् गुणान् नेतुः कवेरपि च वस्तुनः । रङ्गप्रसाधनप्रौढः सूत्रधार इहोदितः ॥' इति वा ।

अथ कृतप्रवेशः सूत्रधारः 'आशीर्नमस्क्रियावस्तुनिर्देशो वापि तन्मुखम्' इत्यभियुक्तोक्तेराशीर्वचनपूर्वकं नाट्यवस्तु प्रस्तौति—**"उदयन"** इति—**उदयनवेन्दुसवर्णौ** उदये उदयकाले नवो नूतनो य इन्दुश्चन्द्रस्तेन समानः वर्णः कान्तिर्ययोः तौ प्रत्यग्रोदितचन्द्रतुल्यवर्णौ **आसवदत्ताबलौ** आसवेन मदिरया, दत्तम् आ समन्ताद् बलं याभ्यां तौ तादृशौ, अबलमितिच्छेदे तु दत्तमासवं मद्यं यस्यै सा आसवदत्ता ['वाहिताग्न्यादिषु' (२।२।३७) इति दत्तशब्दस्य परनिपातः], **आसवदत्ता अबला** याभ्यां तौ, अथवा—आसवेन पीतेन मद्येन दत्तम् अबलं

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

स्वप्नवासवदत्त

[नान्दी के अन्त में सूत्रधार का प्रवेश]

सूत्रधार—

—उदयकालीन नूतन चन्द्रमा के समान कान्ति वाली, मदिरा के पान करने से विशेष बलसम्पन्न वा आलस्ययुक्त (अथवा निज प्रेयसी रेवती जी को मद्य समर्पण करने वाली) तथा वसन्त के समान मनोहर, श्रीबलदेव जी की घुटनों तक लम्बी-लम्बी और शोभावाली दोनों विशाल भुजाएँ तुम्हारी (दर्शकसमाज की) रक्षा करें ॥१॥

मैं इस प्रकार आप पूजनीय दर्शक महोदयों से निवेदन करता हूँ। ऐं ! यह क्या ? मेरे सूचना देने के लिए तत्पर होते ही यह शब्द-सा क्या सुनाई दे रहा है ? अच्छा, देखता हूँ। [नेपथ्य में]

हट जाइए, हट जाइए, सज्जनो ! हट जाइए।

बलाभावोऽलसता याभ्यां तौ, बलदेवस्य मद्यपानप्रावीण्यं महाभारतादौ प्रसिद्ध-मेव, **पद्मावतीर्णपूर्णौ** पद्मां लक्ष्मीं शोभामित्यर्थः, अवतीर्णौ प्राप्तौ, पूर्णौ आजानुलम्बिनौ, अथवा—पद्मा लक्ष्मीस्तस्या अवतीर्णम् अवतार आविर्भाव इत्यर्थः, तेन पूर्णौ ऋद्धिमन्तौ तथा **वसन्तकम्रौ** वसन्त इव कम्रौ कमनीयौ मनोज्ञौ **बलस्य** श्रीकृष्णाग्रजस्य बलदेवस्य **भुजौ** बाहू **त्वां** प्रेक्षकपरिषदम् अथवा—वां युष्मान् सभ्यानित्यर्थः, **पाताम्** रक्षताम्।

अत्र श्लोके कविना उदयन-वासवदत्ता-पद्मावती-वसन्तकशब्दैः श्लेषे-णैतन्नाटकीयानां तत्तदाख्यानां प्रधानपात्राणां निर्देशबलात् भाविनी कथापि सूचिता। श्लोके चात्रोदयनस्य प्रथमोपादानात् स एवात्र कथानायकः, तच्चरित-मेवात्र प्रतिपादनीयमित्यपि सूचितं वेदितव्यम्। 'उदयनवेन्दुसवर्णौ' 'वसन्त-कम्रौ' इत्युपमा। अनुप्रासः। वृत्तमार्या—'यस्याः प्रथमे पादे द्वादश मात्रा-स्तथा तृतीयेऽपि। अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश सार्या ॥' इति लक्षणात् ॥१॥

एवमिति—एवम् अनेन मनःस्थितेन प्रकारेण। **आर्यमिश्रान्** आर्याः सभ्याः, मिश्राः पूज्याः, आर्याश्च मिश्राश्च आर्यमिश्रास्तान्। **विज्ञापयामि** सूचयामि। **अये** इत्यव्ययमाश्चर्ये विषादे वा। **विज्ञापनव्यग्रे** विज्ञापनव्यासक्तचित्ते विज्ञाप्यबोधनार्थम् उद्यते। **श्रूयते** कर्णगोचरो भवति। **अङ्ग** इति सम्बोधने सम्भ्रमे वा। **नेपथ्यम्** 'कुशीलवकुटुम्बस्य स्थलं नेपथ्यमुच्यते' इत्युक्तलक्षणम्। **उत्सरत** दूरे भवत। असकृदुक्तिः सम्भ्रमप्रदर्शनार्थम्।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

सूत्रधारः—भवतु, विज्ञातम् ।

भृत्यैर्मगधराजस्य स्निग्धैः कन्यानुगामिभिः ।
धृष्टमुत्सार्यते सर्वस्तपोवनगतो जनः ॥ २॥

[निष्क्रान्तः]

स्थापना ।

भवतु विज्ञातम् यथार्थस्वरूपेण शब्दो ज्ञात इत्यर्थः ।

"भृत्यै" रिति—**मगधराजस्य** मगधानां तदाख्यानां देशविशेषाणां राजा पाटलिपुत्र राजगृहेश्वरो दर्शकाख्यो नृपः मगधराजस्तस्य, **कन्यानुगामिभिः** कन्या पद्मावती तामनु पश्चाद् गच्छन्तीति तैस्तथोक्तैः पद्मावत्यनुसरणपरैः **स्निग्धैः** स्वाम्यनुरागयुक्तैः विश्वासपात्रैरित्यर्थः, तादृशानामेव राजकन्यानुगमनयोग्यत्वाद्, नह्यनीदृशाः सेवकपदव्यपदेश्या भृत्या राजकन्यानुगमनस्वरूपे कर्मणि नियुज्यन्ते विचार्यकार्यकारिभिः, **भृत्यैः** भरणीयैः कर्तव्यपालकैरनुजीविभिः **सर्वः** राजकन्या-

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

सूत्रधार—अच्छा, जान लिया।

—राजकन्या पद्मावती के पीछे-पीछे गमन करते हुए मगधराज महाराज दर्शक के स्वामिभक्त सेवक तपोवन में विद्यमान समस्त जनों को उद्दण्डतापूर्वक हटा रहे हैं ॥२॥

[प्रस्थान]

प्रस्तावना

गमनपथे प्राप्तः पुरुषो वा स्त्री वा बालो वा वृद्धो वा अखिलोऽपि **तपोवनगतः** तपसो वनं तपोवनं तपश्चर्यारण्यं गतः सम्प्राप्तः जनः, **धृष्टम्** अविनयम् उद्धतं यथा भवति तथा **उत्सार्यते** अपसार्यते दूरीक्रियते ॥२॥

स्थापनेति—स्थापना प्रस्तावना आमुखं वा। इह च सूत्रधारेणैकस्मिन् प्रयोगे प्रयोगान्तरसूचनात् प्रयोगातिशयो नाम प्रस्तावनाभेदः। यथोक्तम्—'यदि प्रयोग एकस्मिन् प्रयोगोऽन्यः प्रयुज्यते। तेन पात्रप्रवेशश्चेत् प्रयोगातिशयस्तथा ॥' इति।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

अथ प्रथमोऽङ्कः

[प्रविश्य[1]]

[2]**भटौ**—उस्सरह उस्सरह अय्या ! उस्सरह ।

उत्सरत उत्सरत आर्याः ! उत्सरत ।

[ततः प्रविशति परिव्राजकवेषो यौगन्धरायण
आवन्तिकावेषधारिणी वासवदत्ता च]

यौगन्धरायणः—[कर्णं दत्त्वा] कथमिहाप्युत्सार्यते । कुतः,

धीरस्याश्रमसंश्रितस्य वसतस्तुष्टस्य वन्यैः फलै-
र्मानार्हस्य जनस्य वल्कलवतस्त्रासः समुत्पाद्यते ।
उत्सिक्तो विनयादपेतपुरुषो भाग्यैश्चलैर्विस्मितः
कोऽयं भो ! निभृतं तपोवनमिदं ग्रामीकरोत्याज्ञया ॥ ३ ॥

वासवदत्ता—अय्य ! को एसो उस्सारेदि ।

आर्य ! क एष उत्सारयति ।

यौगन्धरायणः—भवति ! यो [3]धर्मादात्मानमुत्सारयति ।

प्रथमोऽङ्क इति । अङ्कलक्षणं यथा—'अङ्क इति रूढिशब्दो भावैश्च रसैश्च रोहयत्यर्थान् । नानाविधानयुक्तो यस्मात् तस्माद् भवेदङ्कः ॥ यत्रार्थस्य समाप्तिर्यस्य च बीजस्य भवति संहारः । किञ्चिदवलग्नबिन्दुः सोऽङ्क इति सदावगन्तव्यः ॥' इति ।

अथ 'नासूचितस्य प्रवेशः' इति नाट्यशास्त्रस्य नियममनुसृत्य 'भृत्यै-र्मगधराजस्य' इति पूर्वं सामान्येन सूचयित्वा भटद्वयप्रवेशं तावदाह—**'प्रविश्य'** **'भटौ'** इति । **भटौ** रक्षकौ 'सिपाही' इति भाषायाम् ।

परिव्राजकवेषः परित्यज्य सर्वं व्रजति इति परिव्राजकः परिव्राट् संन्यासी । तस्य वेष इव वेषो यस्येति सः कार्यानुरोधेन गृहीतसंन्यासिवेष इत्यर्थः । **यौगन्धरायणः** युगन्धरः उदयनपितुः राज्ञः सहस्रानीकस्य प्रधानामात्यः, तस्य युगन्धरस्यापत्यं पुमान् यौगन्धरायणः राज्ञ उदयनस्य प्रधानामात्यः ।

आवन्तिकावेषधारिणी अवन्त्यां तदाख्यायां नगर्याम् अवन्तीषु तदाख्येषु देशेषु वा जाता आवन्तिका स्त्री, तस्या वेषं ('लिबास', 'पोशाक' इति भाषायाम्) धारयतीति तथोक्ता । **वासवदत्ता** उदयनस्य राज्ञः पत्नी । **प्रविशतीति** प्रत्येकं पृथक्त्वेनान्वयः ।

"धीरस्ये"ति—**धीरस्य** धृतिशालिनः स्थिरचित्तस्य विषयादिविकारैरना-

---

१. ततः प्रविशतः साधारणी. २. साधारणी. ३. अधर्मं आत्मानं विनियोजयति.

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

पहला अङ्क

[दो रक्षकों का प्रवेश]

दो रक्षक—हट जाइए, हट जाइए, सज्जनो! हट जाइए।

[संन्यासी के वेष में यौगन्धरायण और अवन्ती देश की स्त्रियों के वेश में वासवदत्ता का प्रवेश]

यौगन्धरायण—[कान लगाकर सुनता हुआ] कैसे, यहां भी हटाया जा रहा है! क्यों,

—इन स्थिरचित्त वाले, वन के फल खाकर सन्तुष्ट रहने वाले, वृक्षों की छाल के वस्त्र पहनने वाले, पूजायोग्य आश्रमवासी जनों को त्रास दिया जा रहा है? अहो! नश्वर सम्पत्ति से प्रमत्त हुआ ऐसा कौन ढीठ तथा विनय-शून्य पुरुष है, जो इस शान्त तपोवन को ग्राम-सा बना रहा है?॥३॥

वासवदत्ता—आर्य! कौन यह हटा रहा है?

यौगन्धरायण—माननीये! जो (अधर्मी) अपने आपको धर्म से हटा रहा है।

कृष्टस्य **आश्रमसंश्रितस्य** आश्रमः पर्णादिनिर्मितं मुनिगृहम् तं संश्रितस्य आश्रितवतः **वन्यैः** वनभवैः जाङ्गलिकैः **फलैः**, **तुष्टस्य** तृप्तस्य वन्यफलैरेवाशनक्रियां कृत्वा सन्तोषवत इत्यर्थः, **मानार्हस्य** मानम् अर्हतीति मानार्हः पूजनीयस्तस्य सम्मानपात्रस्य **वल्कलवतः** वल्कलं वृक्षत्वक् तस्यास्तीति वल्कलवान् तस्य वल्कलवसनस्य चीरधारिण इति यावत् **जनस्य** पुरुषस्य **त्रासः** भयम्, कुतः इति गद्यस्थेनान्वयः, **कुतः** केन कारणेन कस्माद् हेतोः **समुत्पाद्यते** पूजनीयस्य जनस्य त्राससमुत्पादने गर्हितमित्यर्थः। अतः **भोः!** **उत्सिक्तः** उद्धतः **विनयादपेतपुरुषः** विनयाद् विनीताचाराद् कर्तव्याकर्तव्यशिक्षायाः अपेता रहिताः पुरुषा यस्य सः, अविनीतभृत्योपेत इत्यर्थः, अथवा—विनयाद् अपेतः रहितश्चासौ पुरुष इति सः, तथा **चलैः** चञ्चलैरस्थिरैः **भाग्यैः** विभवैः **विस्मितः** गर्वितः **कोऽयम्** क एषः **निभृतं** शान्तम् **तपोवनम्** आश्रमपदम् **आज्ञया** अशिक्षितोद्वृत्तग्राम्यजनोचितया उत्सारणाज्ञया **ग्रामीकरोति** ग्रामसमतां नयतीत्यर्थः। नानोपद्रवकारिजनावासेषु ग्रामेष्वेवोद्धतव्यवहारो भवति कोलाहलाद्युपशमनाय, न तु शान्तेषु तपोवनेषु इत्याशयः। धीरस्येत्यादिविशेषणानां त्राससमुत्पादनानौचित्ये साभिप्रायतया परिकरालङ्कारः। शार्दूलविक्रीडितम्। लक्षणं यथा—'सूर्याश्वैर्मसजस्तताः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम्' इति ॥३॥

भवतीति—**भवति!** मान्ये! **यः** यो जनः **धर्मात्** पुण्यफलात् **आत्मानम्** निजम् **उत्सारयति** च्यावयति पृथक्करोति, स उत्सारयतीति पूर्वोक्त-

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

वासवदत्ता—अय्य ! ण हि एव्वं वत्तुकामा, अहं वि [1]णाम उत्सारइदव्वा होमि त्ति ।

आर्य ! न ह्येवं वक्तुकामा, अहमपि नामोत्सारयितव्या भवामीति ।

यौगन्धरायणः—भवति ! [2]एवमनिर्ज्ञातानि दैवतान्यवधूयन्ते ।

वासवदत्ता—अय्य ! तह परिस्समो परिखेदं ण उप्पादेदि, जह अअं परिभवो ।

आर्य ! तथा परिश्रमः परिखेदं नोत्पादयति, यथायं परिभवः ।

यौगन्धरायणः—भुक्तोज्झित एष विषयोऽत्रभवत्या । नात्र[3] चिन्ता कार्या । कुतः,

पूर्वं त्वयाप्यभिमतं गतमेवमासी-
च्छ्लाघ्यं गमिष्यसि पुनर्विजयेन भर्तुः ।
कालक्रमेण जगतः परिवर्तमाना
चक्रारपङ्क्तिरिव गच्छति भाग्यपङ्क्तिः ॥४॥

भटौ—उस्सरह अय्या ! उस्सरह ।

उत्सरत आर्याः ! उत्सरत ।

[ततः प्रविशति काञ्चुकीयः]

काञ्चुकीयः—सम्भषक ! न खलु न खलूत्सारणा कार्या ।

पश्य—

वासवदत्ताप्रश्नस्योत्तरम् । यो जनः उत्सारयति, तस्य तेनोत्सारणेन धर्मपरित्यागात् अधर्मोत्पत्तिः । तस्मादुत्सारणासमकालमेव आत्मनः धर्मेणासम्बन्धः । सर्वथा 'पापाय परपीडनम्' इति भावः ।

अनिर्ज्ञातानि अज्ञातानि स्वरूपतः अविदितानि । **दैवतानि** देवताः देवाः, देवतुल्याः पूज्यतमा मनुष्या इत्यर्थः । **अवधूयन्ते** अवमन्यन्ते अवज्ञायन्ते । **परिश्रमः** पथि पादचारादिजनितः । **परिभवः** उत्सारणोत्पन्नः । **भुक्तोज्झित** इति—**भुक्तोज्झितः** पूर्वं भुक्तः पश्चात् स्वामिकार्यानुरोधेन उज्झितस्त्यक्तः । **विषयः** प्रतिष्ठापूर्वकगमनादिरूपः ।

"**पूर्वम्**" इति—**पूर्वम्** स्वराज्यस्थितौ नगरवासकाले **त्वया अपि** भवत्या अपि **एवम्** ईदृशम् **श्लाघ्यम्** परिजनश्लाघायुक्तम् **अभिमतं** सर्वजनाभिनन्दितम् इष्टम् **गतम् आसीत्** पूर्वं त्वयाप्येवं गमनसौभाग्यमनुभूतमित्यर्थः । **भर्तुः** उदयनस्य नायकस्य **विजयेन** शत्रून् पराजित्य राज्यलाभरूपेण जयेन हेतुना । **पुनः**

---

१. दाव (तावत्). २. अविज्ञा०. ३. नात्रभवत्या.

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

वासवदत्ता—आर्य ! मेरे कहने का यह आशय नहीं। (मेरे कहने का आशय है कि) क्या मैं भी यहां से हटाई जाऊँगी ?

यौगन्धरायण—माननीये ! विदित न होने पर तो देवता भी इस प्रकार से अपमानित हो जाते हैं।

वासवदत्ता—आर्य ! मुझे थकावट इतना खेद नहीं दे रही है, जितना कि यह अपमान।

यौगन्धरायण—आपने इस विषय (उच्च प्रतिष्ठा) को भोग कर इसे त्याग भी दिया। (इसलिए) इस विषय में आपको चिन्ता नहीं करनी चाहिए। क्योंकि,

आपका चलना भी पहले ऐसा ही स्पृहणीय था, और फिर भी आप अपने भर्ता की विजय होने से प्रशंसनीय प्रतिष्ठा को प्राप्त करोगी। सांसारिक मनुष्य का भाग्य-चक्र तो रथ के घूमते हुए पहिये के अरों के समुदाय की तरह समय के अनुसार (कभी ऊपर, कभी नीचे, कभी मध्य में, अनुकूल, प्रतिकूल) घूमता ही रहता है ॥४॥

दो रक्षक—हट जाइए, सज्जनो ! हट जाइए। [कंचुकी का प्रवेश]

कंचुकी—सम्भषक ! नहीं नहीं, (इस प्रकार लोगों को) हटाना नहीं चाहिए। देखो—

भूयोऽपि उत्तरकालेऽपि **श्लाघ्यं** श्लाघार्हं परिजनाभिनन्दनीयं यथा स्यात् तथा **गमिष्यसि** यास्यसि। उक्तमेवार्थं सामान्येन समर्थयते—"काले"ति—**जगतः** लोकस्य **भाग्यपङ्क्तिः** शुभाशुभादृष्टजन्यानां सुखदुःखानां पङ्क्तिः श्रेणिः **चक्रारपङ्क्तिः** चक्रस्य रथाङ्गस्य अराणां नाभिनेम्यन्तरालवर्तिनां काष्ठदण्डानां पङ्क्तिः ततिः इव, **कालक्रमेण** अनुकूलाननुकूलदैवतया **परिवर्तमाना** भ्रमन्ती **गच्छति** चलति।

सुखं दुःखं वा न स्थायि। सुखस्यानन्तरं दुःखम्, दुःखस्यानन्तरं सुखम्। सुखदुःखे लोकस्य चक्रवत् परिवर्तेते। चक्रस्याराः कदाचिदुपरि कदाचिन्नीचैर्भवन्ति, तथैव लोके कदाचित् सुखं कदाचिच्च दुःखं भवति। नैरन्तर्येण सुखं दुःखं वा न भवति। तथैव तवेदं दशापरिवर्तनं न स्थायि। अतो नेह चिन्ता कार्येति भावः। अयमेव भावः कालिदासस्य मेघदूते यथा—'कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा। नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण ॥' इति। सामान्येन विशेषसमर्थनाद् अर्थान्तरन्यासोऽलङ्कारः। वसन्ततिलकं वृत्तम्। लक्षणं वृत्तरत्नाकरे यथा—'उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः' इति ॥४॥

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

परिहरतु भवान् नृपापवादं
न परुषमाश्रमवासिषु प्रयोज्यम् ।
नगरपरिभवान् विमोक्तुमेते
वनमभिगम्य मनस्विनो वसन्ति ॥ ५ ॥

उभौ[1]—अय्य ! तह ।
आर्य ! तथा । [निष्क्रान्तौ]

यौगन्धरायणः—हन्त ! सविज्ञानमस्य दर्शनम् । वत्से ! उपसर्पावस्तावदेनम् ।

वासवदत्ता—अय्य ! तह । आर्य ! तथा ।

यौगन्धरायणः—[उपसृत्य] भोः ! किंकृतेयमुत्सारणा ।

काञ्चुकीयः—भोस्तपस्विन् !

यौगन्धरायणः—[आत्मगतम्] तपस्विन्निति गुणवान् खल्वयमालापः । अपरिचयात्तु न श्लिष्यते मे मनसि ।

काञ्चुकीयः—भोः ! श्रूयताम् । एषा खलु गुरुभिरभिहितनामधेयस्यास्माकं महाराजदर्शकस्य भगिनी पद्मावती नाम । सैषा नो महाराजमातरं महादेवीमाश्रमस्थामभिगम्यानुज्ञाता तत्रभवत्या राजगृहमेव यास्यति । तद् अद्यास्मिन्नाश्रमपदे वासोऽभिप्रेतोऽस्याः । तद् भवन्तः,

---

कांचुकीयः कञ्चुकी । लक्षणं यथा—'अन्तःपुरचरो वृद्धो विप्रो गुणगणान्वितः । सर्वकार्यार्थकुशलः कञ्चुकीत्यभिधीयते ॥' इति ।

"परिहरतु" इति—**भवान्** सम्भषकः **नृपापवादं** नृपस्य अपवादम् उत्सारणारूपेण अकार्येण जायमानं कलङ्कम् **परिहरतु** परित्यजतु परिवर्जयतु, सेवककृतो दोषः स्वामिन एव कलङ्कमापदयतीति भावः । **आश्रमवासिषु** तपोवनवासिषु विषये **परुषम्** उत्सरतोत्सरतेत्यादि कठोरभाषणम् **न** नैव **प्रयोज्यम्** व्यवहर्तव्यम् उच्चारणीयम् । **एते मनस्विनः** मनः एषामस्तीति मनस्विनः रागद्वेषशून्यतया प्रशस्तमनस्काः ['मनस्विनः' इत्यत्र 'अस्मायामेधास्रजो विनिः' (५.२.१२६) इति मत्वर्थीयो विनिः प्रत्ययः] **नगरपरिभवान्** नगरे सुलभान् परिभवान् मनःक्षोभकारिणीः विमाननाः **विमोक्तुं** परिहर्तुम् **वनं** विपिनं शान्तमाश्रमपदम् **अभिगम्य** प्राप्य **वसन्ति** वासं कुर्वन्ति ।

इमे वीतरागभयक्रोधा मुनयो नगरसुलभतिरस्कारपरिजिहीर्षया वनमागत्य शान्तवृत्त्या वसन्ति । वनेऽपि एते चेत्परिभूयेरन् तदा धर्माधर्मविवेकविरहात्

---

१. साधारणौ.

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

—आप राजा पर कलंक न आने दें। आश्रम-वासियों पर कठोरता का व्यवहार नहीं करना चाहिए। ये मनस्वी लोग नगरों के तिरस्कारों से बचने के लिए वन में आकर निवास करते हैं ॥५॥

दोनों—आर्य ! अच्छा। [दोनों का प्रस्थान]

यौगन्धरायण—हर्ष ! इसकी बुद्धि बड़ी विचारशील है। बेटी ! आओ, इसके पास चलें।

वासवदत्ता—आर्य ! आइए, चलो चलें।

यौगन्धरायण—[पास जाकर] अजी ! किसलिए लोगों को हटाया जा रहा था ?

कंचुकी—हे तपस्विन् !

यौगन्धरायण—[स्वगत] 'तपस्विन्' इस प्रकार से इसका पुकारना है तो प्रशंसनीय। परन्तु मैं अपने लिए 'तपस्विन्' सुनने का अभ्यासी नहीं हूँ, इसलिए यह मेरे मन को अच्छा नहीं लग रहा है।

कंचुकी—अजी ! सुनिए। यह हमारे महाराज दर्शक की, जिनका यह नामोच्चारण गुरुजनों ने किया है, बहन पद्मावती है। वह यह आश्रम में रहने वाली हमारे महाराज की माता महादेवी जी का दर्शन कर और उनसे आज्ञा पाकर फिर राजगृह को जायगी। इस कारण आज इसने इस आश्रम में रहना पसन्द किया है। इसलिए आप लोग,

---

नृपस्य पापं प्रसज्येतातो विरमतानुचितोत्सारणाध्यवसायादिति भावः। काव्यलिङ्गमलङ्कारः। पुष्पिताग्रावृत्तम्। तल्लक्षणं यथा—'अयुजि नयुगरेफतो यकारो युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा।' इति ॥५॥

हन्त इति—अनिष्टनिरसेन हर्ष इत्यर्थः। **सविज्ञानम्** विविच्य धर्माधर्मौ ज्ञानम् विज्ञानम्, तेन सह वर्तते इति सविज्ञानं विवेकसहितम्। **दर्शनं** दृश्यते ज्ञायते वस्त्वनेनेति दर्शनं बुद्धिः ['दर्शनं नयनस्वप्नबुद्धिधर्मोपलब्धिषु' इति मेदिनी]।

किंकृता किंनिमित्ता। **आत्मगतम्** आत्मनि इतरजनश्रवणवारणाय स्वस्मिन्नेव गतं चिन्त्यमानम् अप्रकाश्यम् अश्राव्यम् स्वगतमिति यावत्। यथोक्तम्—'अश्राव्यं खलु यद् वस्तु तदिह स्वगतं मतम्।' इति। 'सर्वश्राव्यं प्रकाशं स्यादश्राव्यं स्वगतं मतम्।' इति च। **गुणवान्** गुणयुक्तः। गुणश्च तपःसम्बन्धसूचनेन रहस्यस्याऽस्फोटः। **अपरिचयात्** आत्मार्थे तपस्विन्निति पदश्रवणानभ्यासात्। **न श्लिष्यते** सङ्गतो न भवतीत्यर्थः। **श्रूयताम्** आकर्ण्यताम्। **गुरुभिः** महद्भिः पित्रादिभिः। ['गुरुर्महत्याङ्गिरसे पित्रादौ' इति हैमः]।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

तीर्थोदकानि समिधः कुसुमानि दर्भान्
स्वैरं वनादुपनयन्तु तपोधनानि[1] ।
धर्मप्रिया नृपसुता न हि धर्मपीडा-
मिच्छेत् तपस्विषु कुलव्रतमेतदस्याः ॥ ६ ॥

यौगन्धरायणः—[स्वगतम्] एवम् । एषा सा मगधराजपुत्री पद्मावती नाम, या पुष्पकभद्रादिभिरादेशिकैरादिष्टा स्वामिनो देवी भविष्यतीति । ततः,

प्रद्वेषो बहुमानो वा सङ्कल्पादुपजायते ।
भर्तृदाराभिलाषित्वादस्यां मे महती स्वता ॥ ७ ॥

वासवदत्ता—[स्वगतम्] राअदारिअत्ति सुणिअ भइणिआसिणेहो वि मे एत्थ सम्पज्जइ ।

राजदारिकेति श्रुत्वा भगिनिकास्नेहोऽपि मेऽत्र सम्पद्यते ।

[ततः प्रविशति पद्मावती सपरिवारा चेटी च]

चेटी—एदु [2]एदु भट्टिदारिआ, इदं अस्समपदं पविसदु ।

एतु एतु भर्तृदारिका, इदमाश्रमपदं प्रविशतु ।

[ततः प्रविशत्युपविष्टा तापसी]

तापसी—साअदं राअदारिआए । स्वागतं राजदारिकायाः ।

वासवदत्ता—[स्वगतम्] इअं सा राअदारिआ । अभिजणाणुरूवं खु से रूवं ।

इयं सा राजदारिका । अभिजनानुरूपं खल्वस्या रूपम् ।

अभिहितेति—अभिहितम् उच्चारितं नामधेयं 'दर्शक' इति नाम यस्य तस्य तैरेवोच्चारितनाम्नः न मयेत्यर्थः । स्वापेक्षया महतः स्वयं नामोच्चारणं तु अश्रेयस्करत्वाद् निषिद्धं स्मृतौ । यथा—'आत्मनाम गुरोर्नाम नामातिकृपणस्य च । श्रेयस्कामो न गृह्णीयाद् ज्येष्ठापत्यकलत्रयोः ॥' इति ।

महादेवीम् मगधराजमातरम् । **आश्रमस्थाम्** वानप्रस्थाश्रममुररीकृत्य आश्रमे वर्तमानाम् । **अभिगम्य** प्राप्य दर्शनं कृत्वेत्यर्थः । **अनुज्ञाता** अनुमता गृहे गन्तुं प्राप्तानुज्ञा । **राजगृहम्** तदाख्यां मगधदेशराजधानीम् ।

"तीर्थोदकानी"ति—तद् भवन्तः इति गद्यस्थेनान्वयः । **तद्** तस्मात् कारणाद् **भवन्तः** आश्रमस्थाः **तपोधनानि** तपसः तपस्यायाः धनानि साधनतया धनरूपाणि तपस उपकारकाणि द्रव्याणि **तीर्थोदकानि** तीर्थजलानि, **समिधः**

---

१. तपोधनानाम्, २. इदो इदो (इत इतः).

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

—वन से तपस्या के साधन—तीर्थों के जल, हवन की लकड़ियां, फूल कुशाएँ बे-रोकटोक ले आया करें। यह राजकुमारी धर्म पर प्रेम रखने वाली है। यह तपस्वियों के धर्म-कार्यों में रुकावट (बाधा) डालना नहीं चाहती। यह (सदा से) इसकी कुल-मर्यादा (चली आई) है ॥६॥

यौगन्धरायण—[स्वगत] ऐसा ! यह वही मगध-राजपुत्री पद्मावती है, जिनके विषय में पुष्पकभद्र आदि दैवज्ञों ने कहा है कि वह हमारे स्वामी की महारानी बनेंगी। इसलिए,

—किसी भी वस्तु के विषय में द्वेष या राग संकल्प के अनुसार हुआ करता है। 'यह मेरे स्वामी की महारानी होंगी' इस अभिलाषा के कारण इनमें मेरी बड़ी आत्मीयता हो गई है ॥७॥

वासवदत्ता—[स्वगत] 'यह राजकन्या है' ऐसा सुनकर इन पर मेरा बहन का-सा स्नेह उत्पन्न हो गया है।

[चेटी के साथ सपरिकर पद्मावती का प्रवेश]

चेटी—आइए, आइए, राजकुमारी। इस आश्रम में प्रवेश कीजिए।

[एक ओर बैठी हुई तापसी का प्रवेश—दिखलाई देना]

तापसी—राजकुमारि ! तुम्हारा स्वागत हो।

वासवदत्ता—[स्वगत] यही वह राजकुमारी हैं। इनका सौन्दर्य, निस्सन्देह, उच्च राजघराने के अनुरूप है।

होमार्थम् इन्धनानि, **कुसुमानि** देवार्चनार्थं पुष्पाणि, **दर्भान्** कुशान् **वनाद्** अरण्यात् **स्वैरं** यथेच्छम् अनिवारितम् **उपनयन्तु** आनयन्तु इत्यर्थः। **धर्मप्रिया** धर्मः प्रियो यस्याः सा तथोक्ता **नृपसुता** नृपस्य सुता राजकन्या पद्मावती **तपस्विषु** तापसजनेषु **धर्मपीडां** धर्मे पीडां व्यथां धर्मक्रियोपरोधम् **नहि** नैव **इच्छेत्** इच्छति अभिलषति ['इच्छार्थेभ्यो विभाषा वर्तमाने' इत्यनेन वर्तमाने लिङ्] **एतद्** इदं धर्मकार्यान्तरायाणां निरसनम् **अस्याः** पद्मावत्याः **कुलव्रतं** परम्परागतो वंशधर्मः। वसन्ततिलकम् ॥६॥

"प्रद्वेष" इति—कस्यापि विषये **प्रद्वेषः** प्रकर्षेण द्वेषः निरतिशयमप्रेम अनभिमतता **बहुमानः** अत्यादरो **वा**, **सङ्कल्पाद्** सङ्कल्पः अनिष्ट इष्टो वा मनोव्यापारस्तस्माद् **उपजायते** उत्पद्यते। **भर्तृदाराभिलाषित्वाद्** भर्तुरुदयनस्य दाराः पत्नी इति भर्तृदाराः, भर्तृदारत्वेनाभिलाषो भर्तृदाराभिलाषः, सोऽस्यास्तीति भर्तृदाराभिलाषी तस्य भावस्तत्त्वं तस्माद् ज्यौतिषिकादेशानुसारं पद्मावतीयं मद्भर्तृदारा भूयादितीच्छाप्राबल्यादित्यर्थः, **अस्यां** पद्मावत्याम् **मे** मम **महती** गुर्वी **स्वता** इयं भाविनी मद्भर्तृपत्नीति स्वात्मीयबुद्धिः, वर्तते इति शेषः।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

पद्मावती—अय्ये ! वन्दामि । आर्ये ! वन्दे ।

तापसी—चिरं जीव । पविस जदे ! पविस । तवोवणाणि णाम अदिहिजणस्स सअगेहं ।

चिरं जीव । प्रविश जाते ! प्रविश । तपोवनानि नाम अतिथिजनस्य स्वगेहम् ।

पद्मावती—भोदु भोदु । अय्ये ! विस्सत्थह्मि[1] । इमिणाब हुमाणवअणेण अणुग्गहिदह्मि ।

भवतु भवतु । आर्ये ! विश्वस्तास्मि । अनेन बहुमानवचनेन अनुगृहीतास्मि ।

वासवदत्ता—[स्वगतम्] ण हि रूवं एव्व, वाआ वि खु से महुरा ।

न हि रूपमेव, वागपि खल्वस्या मधुरा ।

तापसी—भद्दे ! इमंदाव भद्दमुहस्य भइणिअं कोच्चि[2] राआ ण वरेदि ।

भद्रे ! इमां तावद् भद्रमुखस्य भगिनिकां कश्चिद् राजा न वरयति ।

चेटी—अत्थि राआ पज्जोदो णाम उज्जइणीए । सो दारअस्स कारणादो दूदसम्पादं करेदि ।

अस्ति राजा प्रद्योतो नामोज्जयिन्याः । स दारकस्य कारणाद् दूतसम्पातं करोति ।

वासवदत्ता—[आत्मगतम्] भोदु भोदु । एसा अ अत्तणीया दाणिं संवुत्ता ।

भवतु भवतु ! एषा चात्मीयेदानीं संवृत्ता ।

तापसी—अरुहा खु इअं आइदी इमस्स बहुमाणस्स । उभआणि राअउलाणि महत्तराणि त्ति सुणीअदि ।

अर्हा खल्वियमाकृतिरस्य बहुमानस्य । उभे राजकुले महत्तरे इति श्रूयते ।

पद्मावती—अय्य ! किं दिट्ठो मुणिजणो अत्ताणं अणुग्गहीदुं । अभिप्पेदप्पदाणेण तवस्सिजणो उवणिमन्तिअदु दाव को किं एत्थ इच्छदि त्ति ।

आर्य ! किं दृष्टो मुनिजन आत्मानमनुग्रहीतुम् । अभिप्रेतप्रदानेन तपस्विजन उपनिमन्त्र्यतां तावत् कः किमत्र इच्छतीति ।

पूर्वं सङ्कल्पविशेषात् प्रद्वेषः, इदानीं सङ्कल्पान्तराच्च बहुमानः । तदेवं सङ्कल्पभेद एव प्रीत्यप्रीत्योः कारणमिति भावः ॥७॥

---

१. विस्ससिह्हि (विश्वसिहि). २. कोवि (कोऽपि).

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

पद्मावती—आर्ये ! प्रणाम ।

तापसी—चिरंजीव ! आओ, बेटी ! आओ । तपोवन तो अतिथिजनों का अपना ही घर है ।

पद्मावती—अच्छा, अच्छा । आर्ये ! मैं आराम से हूँ । इस बहुत सम्मान के वचन से मैं आपकी बहुत अनुगृहीत हूँ ।

वासवदत्ता—[स्वगत] केवल रूप ही नहीं, निस्सन्देह, इसकी वाणी भी मधुर है ।

तापसी—[चेटी से] भद्रे ! महाराज दर्शक की बहन इस पद्मावती को क्या कोई राजा नहीं वरता है ?

चेटी—प्रद्योत नाम के उज्जयिनी के राजा हैं । वह अपने लड़के के साथ इनका विवाह करने के लिए दूत भेजते रहते हैं ।

वासवदत्ता—[स्वगत] यही हो, यही हो । अब तो यह अपनी ही हो गई ।

तापसी—निस्सन्देह, यह आकृति इस अति सम्मान के योग्य है । सुनते हैं कि दोनों ही राज-कुल अतिप्रतिष्ठित हैं ।

पद्मावती—[कंचुकी से] आर्य ! क्या आपने कोई मुनि-जन देखे हैं, जो हमको अनुगृहीत करें ? ताकि जो कुछ वे चाहते हैं, हम उन्हें दें । इच्छित पदार्थ बांटने के लिए तपस्वियों को नम्रतापूर्वक निमन्त्रित कीजिए कि यहां कौन क्या चाहता है ?

अभिजनानुरूपम् अभिजनस्य उच्चकुलस्य अनुरूपं सदृशम् ।

जाते ! वत्से ! । **अतिथिजनस्य** अभ्यागतजनस्य । 'एकरात्रं तु निवसन्नतिथिर्ब्राह्मणः स्मृतः । अनित्यं हि स्थितो यस्मात् तस्मादतिथिरुच्यते ।।" इति मनुः । **भद्रमुखस्य** भद्रं सुन्दरं नित्यप्रसन्नं च मुखं यस्य स तथोक्तः, तस्य सौम्याकृतेर्महाराजदर्शकस्येत्यर्थः । **दारकस्य** निजसुतस्य । **कारणाद्** हेतोः । निजसुतेन सह पद्मावत्या विवाहसम्बन्धघटनार्थमित्यर्थः । **दूतसम्पातम्** दूतस्य सन्देशहरस्य सम्पातं प्रेषणम् ।

भवतु भवतु पद्मावत्याः प्रद्योतपुत्रेण सह विवाहसम्बन्धयोजना भवत्वित्यर्थः । **आत्मीया** स्वसम्बन्धिनी स्वीया । **अर्हा** योग्या । **अस्य** प्रद्योतकुलवधूपदप्राप्तिरूपस्येत्यर्थः । **बहुमानस्य** गौरवस्य **उभे राजकुले** प्रद्योतकुलं दर्शककुलं च । **महत्तरे** अतिप्रशस्ते अत्युच्चे ।

विस्रम्भेति—विस्रम्भेण परिचयेन । **उत्पादितविस्रम्भा** उत्पादितः समुत्पादितः विस्रम्भो विश्वासो यस्याः सा उत्पन्नश्रद्धाभावा ! **धर्मार्थम्** धर्माय धर्मकार्यार्थमित्यर्थः ['अर्थेन नित्यसमासो विशेष्यलिङ्गता चेति वक्तव्यम्' इत्य-

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

काञ्चुकीयः—यदभिप्रेतं भवत्या । भो भो आश्रमवासिनस्तपस्विनः ! शृण्वन्तु शृण्वन्तु भवन्तः । इहात्रभवती मगधराजपुत्री अनेन विस्रम्भेणोत्पादितविस्रम्भा धर्मार्थमर्थेनोपनिमन्त्रयते ।

कस्यार्थः कलशेन को मृगयते वासो यथानिश्चितं
दीक्षां पारितवान् किमिच्छति पुनर्देयं गुरोर्यद् भवेत् ।
आत्मानुग्रहमिच्छतीह नृपजा धर्माभिरामप्रिया
यद् यस्यास्ति समीप्सितं वदतु तत् कस्याद्य किं दीयताम् ॥८॥

यौगन्धरायणः—[आत्मगतम्] हन्त ! दृष्ट उपायः । [प्रकाशम्] भोः ! अहमर्थी ।

पद्मावती—दिट्ठिआ सहलं मे तपोवणाभिगमणं ।

दिष्ट्या सफलं मे तपोवनाभिगमनम् ।

तापसी—संतुट्ठतपस्सिजणं इदं अस्समपदं । आअन्तुएण इमिणा होदव्वं ।

सन्तुष्टतपस्विजनमिदमाश्रमपदम् । आगन्तुकेनानेन भवितव्यम् ।

काञ्चुकीयः—भोः ! किं क्रियताम् ।

यौगन्धरायणः—इयं मे स्वसा । प्रोषितभर्तृकामिच्छाम्यत्रभवत्या कञ्चित् कालं परिपाल्यमानाम् । कुतः;

कार्यं नैवार्थैर्नापि भोगैर्न वस्त्रै-
र्नाहं काषायं वृत्तिहेतोः प्रपन्नः ।
धीरा कन्येयं दृष्टधर्मप्रचारा
शक्ता चारित्रं रक्षितुं मे भगिन्याः ॥९॥

नेन समासः] । **उपनिमन्त्रयते** प्रतिग्रहस्वीकरणाय प्रार्थयते ।

उपनिमन्त्रणस्य प्रकारमाह—"**कस्यार्थ**" इति—**कस्य** मुनिजनस्य **कलशेन** घटेन **अर्थः** प्रयोजनम्, अस्तीति अर्थाल्लभ्यते । **कः** को नाम **वासः** वस्त्रम् **मृगयते** अन्विष्यति वाञ्छतीत्यर्थः । **पुनः** अपि च **यथानिश्चितं** निश्चितं कर्तव्यत्वेन स्थापितमर्थमनतिक्रम्य यथानिश्चितम् **दीक्षां** वेदाध्ययनव्रतं ब्रह्मचर्यव्रतम् उभयव्रतं वा **पारितवान्** परिसमापितवान् पूर्णदीक्षित इत्यर्थः, **कः** स्नातकजनः, **किम् इच्छति** कामयते, **यद्** यद् वस्तु **गुरोः** आचार्यस्य **देयं** गुरुदक्षिणात्वेन अर्पणीयम् **भवेत्** स्यात् । **धर्माभिरामप्रिया** धर्मः अभिरामः प्रियश्च यस्याः सा, अथवा—धर्मे अभिरमन्ते इति धर्माभिरामाः धर्माचरणपरायणाः तपस्विन इत्यर्थः, ते प्रियाः यस्याः सा यथेच्छमर्थप्रदानद्वारा तेषां प्रीतिविधायनीत्यर्थः, **नृपजा** नृपसुता राजकन्या पद्मावती **इह** तपोवने अर्थवितरणे वा

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

कंचुकी—जैसी आपकी इच्छा। हे आश्रम में रहने वाले तपस्वियो! आप सुनिए, सुनिए। यहां हमारी माननीय मगध-राजकुमारी आप लोगों के इस धार्मिक व्यवहार से आप पर श्रद्धालु होकर धर्मार्थ, धन वा इच्छित पदार्थ बाँटने के लिए आपको नम्रता-पूर्वक आमन्त्रित करती है।

—किसे कलश की आवश्यकता है? किसको वस्त्र की इच्छा है? निश्चित रूप से दीक्षा पार किया हुआ कौन दीक्षित जन क्या चाहता है, जो कि गुरुदेव के लिए (गुरु-दक्षिणा में) देने योग्य हो? धर्मात्मा तपस्वियों पर श्रद्धा रखने वाली धर्मशीला राजकुमारी इस तपोवन में अपने ऊपर आपका अनुग्रह चाहती है। अतः जिसको जिस किसी भी वस्तु की इच्छा हो, वह कहे, आज किसको क्या दिया जाय? ॥८॥

यौगन्धरायण—[स्वगत] अहोभाग्य! उपाय देख लिया (अच्छा अवसर हाथ लगा)। [प्रकट] अजी! मैं हूँ याचक।

पद्मावती—सौभाग्य से मेरा तपोवन में आना सफल हो गया।

तापसी—इस आश्रम में सभी तपस्वि-जन सन्तुष्ट हैं। यह कोई बाहर से आया हुआ जान पड़ता है।

कंचुकी—अजी! कहिए, क्या चाहते हो?

यौगन्धरायण—यह मेरी बहन है। इसका पति विदेश गया हुआ है। मैं चाहता हूँ कि कुछ समय तक राजकुमारी इसका परिपालन करें। क्योंकि,

—न तो मुझे धन-दौलत से कोई प्रयोजन है, न भोग्य-पदार्थों से और न वस्त्रों से ही। न ही मैंने आजीविका उपार्जन के लिए भगवे वस्त्र पहने हैं। यह राजकन्या (पद्मावती) बड़ी विदुषी हैं और इनकी धार्मिक वृत्ति को हमने अच्छी तरह देख लिया है। यह मेरी बहन के चरित्र की रक्षा करने के लिए समर्थ हैं ॥९॥

आत्मानुग्रहम् आत्मनि अनुग्रहं तपस्विभिः अभिलषिताशीर्वचनकथनरूपम्, देशकालपात्रादिषु अर्थवितरणेन ऐहिकामुष्मिकानन्तफलावाप्तिरूपं वा, **इच्छति** कामयते अभिलषति। **यस्य** यस्य तपस्विनः **यद्** यद् वस्तु **समीप्सितं** प्राप्तुं सम्यगिष्टम् **अस्ति, स तद्** तद् वस्तु **वदतु** कथयतु, **अद्य कस्य** तपस्विनः **किम्** किं वस्तु **दीयताम्**। शार्दूलविक्रीडितम् ॥८॥

हन्त इति हर्षद्योतकमव्ययम्। हर्षश्च वासवदत्ताया निक्षेपावसरलाभादिति। **सन्तुष्टेति**—सन्तुष्टाः निरभिलाषाः तपस्विनो जनाः यत्र तत् तथोक्तम्। **आगन्तुकेन** नवागतेन वैदेशिकेन।

प्रोषितभर्तृकाम् प्रोषितः प्रवासं गतः भर्ता पतिर्यस्याः सा ताम्

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

वासवदत्ता—[आत्मगतम्] हं । इह मं णिक्खिविदुकामो अय्यजोअन्धराअणो । होदु, अविआरिअ कमं ण करिस्सदि ।

हम् । इह मां निक्षेप्तुकाम आर्ययौगन्धरायणः । भवतु, अविचार्य क्रमं न करिष्यति ।

काञ्चुकीयः—भवति! महती खल्वस्य व्यपाश्रयणा। कथं प्रतिजानीमः। कुतः;

सुखमर्थो भवेद् दातुं सुखं प्राणाः सुखं तपः ।
सुखमन्यद् भवेत् सर्वं दुःखं न्यासस्य रक्षणम् ॥१०॥

पद्मावती—अय्य! पढमं उग्घोसिअ को किं इच्छदित्ति अजुत्तं दाणिं विआरिदुं । जं एसो भणादि, तं अणुचिट्ठदु अय्यो ।

आर्य! प्रथममुद्घोष्य कः किमिच्छतीत्ययुक्तमिदानीं विचारयितुम् । यदेष भणति, तदनुतिष्ठत्वार्यः ।

काञ्चुकीयः—अनुरूपमेतद् भवत्याभिहितम् ।

चेटी—चिरं जीवदु भट्टिदारिआ एवं सच्चवादिणी ।

चिरं जीवतु भर्तृदारिकैवं सत्यवादिनी ।

तापसी—चिरं जीवदु भद्दे । —चिरं जीवतु भद्रे ! !

काञ्चुकीयः—भवति ! तथा । [उपगम्य] भोः ! अभ्युपगतमत्रभवतो भगिन्याः परिपालनमत्रभवत्या ।

यौगन्धरायणः—अनुगृहीतोऽस्मि तत्रभवत्या । वत्से ! उपसर्पात्रभवतीम् ।

[प्रोषितशब्दे प्रवसतेः क्तः भर्तृकामित्यत्र 'नद्यृतश्च' इति कप्]।

"कार्यम्" इति—मम, **अर्थैः** धनैः **कार्यं** प्रयोजनम् **नैव** नास्ति । **भोगैः** भोग्यपदार्थैः, **अपि**, **कार्यम्**, **न** नास्ति । **वस्त्रैः** वसनैरपि कार्यम् **न** । **अहं वृत्तिहेतोः** वृत्तिराजीवनोपायः तस्याः हेतोः कारणाद् आजीविकासाधनार्थमित्यर्थः, **काषायं** कषायेण रञ्जितं वस्त्रं लक्षणया काषायवस्त्रसूचितां प्रव्रज्याम् **न नैव प्रपन्नः** प्राप्तः, वृत्त्यर्थं न मया पारिव्राज्यं गृहीतमिति भावः । **दृष्टधर्मप्रचारा** दृष्टः धर्मप्रचारः धर्माचरणं यस्याः सा, अस्माभिरित्यर्थः, तादृशी धर्माचरणप्रवणेत्यर्थः, अथवा—दृष्टः धर्मप्रचारः यया सा तथोक्ता, **इयम्** एषा **धीरा** विदुषी पद्मावती **मे** मम **भगिन्याः** स्वसुः **चारित्रं** चरित्रं शुद्धाचरणम् **रक्षितुं** त्रातुम् **शक्ता समर्था** ।

'शक्ता' इति चारित्ररक्षणयोग्यतासमर्थने 'धीरा' 'दृष्टधर्मप्रचारा' इति पदयोरर्थो हेतुरिति पदार्थहेतुकं काव्यलिङ्गमलङ्कारः । यथोक्तम्—'हेतोर्वाक्य-

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

वासवदत्ता—[स्वगत] हूँ ! आर्य यौगन्धरायण मुझे यहां सौंप कर छोड़ना चाहते हैं। जो हो, वह बिना सोचे-विचारे कार्य नहीं करेंगे।

कंचुकी—राजकुमारि ! इसकी प्रार्थना, निस्संदेह, बहुत बड़ी है। किस तरह अङ्गीकार कर लें ? क्योंकि,

—धन सुख से दिया जा सकता है, प्राण सुख से दिये जा सकते हैं, तप सुख से दिया जा सकता है, और सर्वस्व (सब कुछ) भी सुख से दिया जा सकता है, किन्तु धरोहर का रखना अत्यन्त कठिन है ॥१०॥

पद्मावती—आर्य ! 'कौन क्या चाहता है ?' इस तरह पहले घोषित कर अब यह विचार करना ठीक नहीं। इस लिए जैसा ये कहते हैं; आर्य वही करें।

कंचुकी—आपने यह अपने अनुरूप ही कहा।

चेटी—इस तरह सत्य बोलने वाली राजकुमारी चिरंजीवित रहें।

तापसी—भद्रे ! चिरंजीवित रहो।

कंचुकी—माननीये ! ऐसा ही होगा। [पास जाकर] अजी ! आपकी बहन का परिपालन हमारी राजकुमारी ने स्वीकार कर लिया है।

यौगन्धरायण—मैं राजकुमारी का अनुगृहीत हूँ। [वासवदत्ता से] प्रिय बहन ! राजकुमारी के पास जाओ।

पदार्थत्वे काव्यलिङ्गं निगद्यते' इति। वैश्वदेवीवृत्तम्। यथोक्तं वृत्तरत्नाकरे—'पञ्चाश्वैश्छिन्ना वैश्वदेवी ममौ यौ' इति ॥९॥

हमिति असम्मतिसूचकमव्ययम्। इहेति—इह पद्मावतीसन्निधौ। **निक्षेप्तुकामः** निक्षेपत्वेन अर्पयितुं कामः अभिलाषो यस्य सः ['तुंकाममनसोरपि' इति तुमुनो मलोपः]। **क्रमम्** प्रवृत्तिम्। **व्यपाश्रयणा** प्रार्थना आश्रयार्थं याचना भगिनीपरिपालनरूपा। **प्रतिजानीमः** अङ्गीकुर्मः।

"सुखम्" इति—**अर्थः** धनं हिरण्यादिः **सुखं** सुखपूर्वकम् अनायासं यथा भवति तथा **दातुं** वितरीतुम् **भवेत्** स्यात्, शक्य इति शेषः। **प्राणाः** असवः **सुखं** दातुं शक्याः भवेत् इत्यत्र भवेयुरिति वचनव्यत्ययेनान्वयः। **तपः** तपःफलम् **सुखं** दातुं शक्यं भवेत्। **अन्यद्** अर्थप्राणतपोव्यतिरिक्तम् **सर्वम्** अखिलमपि **सुखं** दातुं शक्यं **भवेत्**। **न्यासस्य** निक्षेपस्य **रक्षणं** धारणं तु **दुःखम्** कष्टप्रदम्।

अर्थिनेऽस्मै सुखमर्थादिकं शक्यते दातुम्, अस्य भगिनीरक्षणं त्वतीव-दुष्करमित्याशयः काञ्चुकीयस्य। अर्थप्राणतपआदिसमर्पणापेक्षयातिकठिनं न्यास-रक्षणमिति भावः ॥१०॥

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

वासवदत्ता—[आत्मगतम्] का गई । एसा गच्छामि मन्दभाग्रा ।

का गतिः । एषा गच्छामि मन्दभागा ।

पद्मावती—भोदु भोदु । अय्या अत्तणीआ दाणि संवुत्ता ।

भवतु भवतु । आर्या आत्मीयेगनीं संवृत्ता ।

तापसी—जा ईदिसी से आइदी, इयं वि राअदारिअत्ति तक्केमि ।

या ईदृश्यस्या आकृतिः, इयमपि राजदारिकेति तर्कयामि ।

चेटी—सुट्ठु अय्या भणादि । अहं वि अणुहूदसुहत्ति पेक्खामि ।

सुष्ठु आर्या भणति । अहमप्यनुभूतसुखेति पश्यामि ।

यौगन्धरायणः—[आत्मगतम्] हन्त ! भोः ! अर्द्धमवसितं भारस्य । यथा मन्त्रिभिः सह समर्थितं तथा परिणमति । ततः प्रतिष्ठिते स्वामिनि तत्रभवतीमुपनयतो मे इहात्रभवती मगधराजपुत्री विश्वासस्थानं भविष्यति । कुतः,

पद्मावती नरपतेर्महिषी भवित्री
दृष्टा विपत्तिरथ यैः प्रथमं प्रदिष्टा ।
तत्प्रत्ययात् कृतमिदं न हि सिद्धवाक्या-
न्युत्क्रम्य गच्छति विधिः सुपरीक्षितानि ॥११॥

[ततः प्रविशति ब्रह्मचारी]

ब्रह्मचारी—[ऊर्ध्वमवलोक्य] स्थितो मध्याह्नः । दृढमस्मि परिश्रान्तः । अथ कस्मिन् प्रदेशे विश्रमयिष्ये । [परिक्रम्य] भवतु, दृष्टम् । अभितस्तपोवनेन भवितव्यम् । तथाहि—

तर्कयामि अनुमिनोमि । **अर्द्धमिति—अर्द्धम्** अर्द्धभागः । **अवसितम्** निष्पन्नम् । **भारस्य** गुरुतरकार्यस्य । **मन्त्रिभिः** रुमण्वदादिभिरमात्यैः । **समर्थितम्** मन्त्रयित्वा कर्तव्यत्वेन निर्धारितम् ।

परिणमति दैवानुकूल्येन घटते । **उपनयतः** स्वामिसमीपं प्रापयतः । **विश्वासस्थानम्** स्वामिनः वासवदत्ताशीलशुद्धिविषयकप्रत्ययजनने विश्वसनीया साक्षिणी ।

"पद्मावती"ति—**पद्मावती, नरपतेः** उदयनस्य राज्ञः **महिषी** पट्टराज्ञी **भवित्री** भविता, कालान्तर इत्यर्थः । अत्र किं प्रमाणमित्याह—"दृष्टे"ति—**यैः** भविष्यवादिभिः **प्रथमं** पूर्वम् **प्रदिष्टा** सूचिता **विपत्तिः** उदयनस्य राज्यापहरण-रूपा आपद् **अथ** पश्चात् **दृष्टा** प्रत्यक्षमवलोकिता, अस्माभिरिति शेषः । **तत्प्रत्ययाद्** तेषु भविष्यवादिषु प्रत्ययाद् तेषामवश्यम्भाविवचनेषु विश्वस्य, यथा तैरुक्ता स्वामिनो राज्यप्रत्यर्पिका [illegible] फलिता, तथैव पद्मावतीपरिणय-

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

वासवदत्ता—[स्वगत] अपना क्या वश ! यह मन्दभागिनी मैं जाती हूँ ।

पद्मावती—अच्छा, अच्छा । आर्या अब अपनी हो गईं ।

तापसी—इसकी जो आकृति है, इससे मैं अनुमान करती हूँ कि यह भी कोई राजपुत्री है ।

चेटी—आर्या ठीक कहती हैं । मुझे भी ऐसा प्रतीत होता है कि इसने सुख के दिन देखे हैं ।

यौगन्धरायण—[स्वगत] अहा ! मेरा आधा भार हलका हो गया (उतर गया) । जैसा मन्त्रियों के साथ परामर्श किया था, वैसा ही कार्यरूप में हो रहा है । पीछे स्वामी के राज्य लाभ होने पर जब माननीया (वासवदत्ता) को मैं स्वामी के सम्मुख ले जाऊंगा तो इस (वासवदत्ता की चरित्र-शुद्धता के विषय) में माननीया मगधराजपुत्री विश्वास दिलाने में साक्षिणी होंगी । क्योंकि,

—पद्मावती हमारे महाराज की पटरानी होंगी । इसलिए यह कार्य (वासवदत्ता को पद्मावती के पास सौंपना) हमने उन भविष्यवक्ताओं के कहने के विश्वास पर कर दिया है, जिन्होंने हमारे स्वामी पर आने वाली विपत्ति को पहले ही (अपने चमत्कारिक ज्ञान से) बता दिया था, जिसे हमने प्रत्यक्ष देख लिया । निस्सन्देह, भवितव्यता भी अच्छी तरह परखे गये सिद्ध-वाक्यों के अनुसार ही चलती है ।।११।।

[ब्रह्मचारी का प्रवेश]

ब्रह्मचारी—[ऊपर की ओर देखकर] । मध्याह्न हो गया । अत्यन्त थक गया हूँ । अब किस जगह विश्राम करूँ ? [घूमकर] अच्छा, देख लिया । चारों ओर तपोवन ही है । जैसे कि,

---

रूपा समृद्धिरपि निश्चयेन फलिष्यतीति विश्वासाद् इत्यर्थः, **इदं** पद्मावतीसन्निधौ वासवदत्ताया निक्षेपणम् **कृतम्** आचरितमनुष्ठितम् । उक्तं समर्थयते—"न हीं" ति—**हि** निश्चितमेतत्, **विधिः** भवितव्यता **सुपरीक्षितानि** सम्यक् परीक्ष्य सत्यत्वेन निर्धारितानि **सिद्धवाक्यानि** सिद्धानां सिद्धपुरुषाणां वाक्यानि वचनानि **उत्क्रम्य** उल्लंघ्य **न** नैव **गच्छति** फलप्रदो भवति ।

सिद्धैर्भविष्यवादिभिरुक्तमिदं यत्पद्मावतीयं वत्सराजस्योदयनस्य पत्नी भविष्यति । अतस्तथा सति चिरवियुक्ताया वासवदत्तायाः शीलशुद्धिनिवेदने स्वप्रियतमया पद्मावत्या सादरमुच्यमानं विश्वस्ततयावश्यमङ्गीकरिष्यति नृपः । भविष्यवादिनां वचः सत्यमेव भविष्यति न वेति नात्र शङ्का कर्तव्या । यतस्तै-रेवोक्ता स्वामिनो राज्यप्रच्युतिः सत्यमेव फलिताऽस्माभिः प्रत्यक्षमनुभूता ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

विस्रब्धं हरिणाश्चरन्त्यचकिता देशागतप्रत्यया
वृक्षाः पुष्पफलैः समृद्धविटपाः सर्वे दयारक्षिताः ।
भूयिष्ठं कपिलानि गोकुलधनान्यक्षेत्रवत्यो दिशो
निःसन्दिग्धमिदं तपोवनमयं धूमो हि बह्वाश्रयः ॥१२॥

यावत् प्रविशामि । [प्रविश्य] अये ! आश्रमविरुद्धः खल्वेष जनः । [अन्यतो विलोक्य] अथवा तपस्विजनोऽप्यत्र । निर्दोषमुपसर्पणम् । अये ! स्त्रीजनः ।

काञ्चुकीयः—स्वैरं स्वैरं प्रविशतु भवान् । सर्वजनसाधारणमाश्रमपदं नाम ।

वासवदत्ता—हं ! —हम् !

पद्मावती—अम्मो ! परपुरुसदंसणं परिहरदि अय्या । भोदु, सुपरिवालणीओ खु मण्णासो ।

अम्मो ! परपुरुषदर्शनं परिहरत्यार्या । भवतु, सुपरिपालनीयः खलु मन्न्यासः ।

काञ्चुकीयः—भोः ! पूर्वं प्रविष्टाः स्मः । प्रतिगृह्यतामतिथिसत्कारः ।

तैरेवोक्तो पद्मावत्या सह वत्सराजोदयनपरिणयोऽप्यवश्यं फलिष्यतीति विश्वासात् पद्मावत्यां वासवदत्ताया न्यासत्वेन निवेशनं कृतम् । विधिरपि सिद्धोक्तमनुसृत्यैव फलप्रदाने प्रवर्तते न त्वितरथेति भावः । वसन्ततिलकम् ॥११॥

"विस्रब्धम्" इति—**देशागतप्रत्ययाः** देशात् निर्भयत्वेन सम्यक् परिचितात् शान्ततपोवनप्रदेशात्, तपोवनप्रदेशसञ्चारिजनाद् वा आगतः आयातः प्रत्ययः विश्वासो येषां ते तथाभूताः सञ्जातप्रत्ययाः, अतएव, **अचकिताः** अविचलिता आगन्तुकजनसन्निधावपि वीतभयास्तिष्ठन्तः, प्रदेशान्तरे हि मृगादयो वनजीवा दूरादपि जनमवलोक्य व्याधभिया द्राग् विचलिता भवन्ति पलायन्ते च, अत्र तु न तथेति भावः, **हरिणाः** मृगाः **विस्रब्धं** विश्वासयुक्तं सस्नेहं यथा भवति तथा **चरन्ति** तृणादिकम् अदन्ति, अत्र इति शेषः । **दयारक्षिताः** दयया पत्रशाखाच्छेदाद्यकरणेन पुष्पफलत्रोटनपीडाद्यरचनेन काले सलिलसेचनादिना च रक्षिताः पालिताः संवर्द्धिता इति यावत् **सर्वे** समस्ताः **वृक्षाः** तरवः **पुष्पफलैः** पुष्पैः कुसुमैः फलैश्च **समृद्धविटपाः** समृद्धाः समृद्धशालिनः पुष्पफलपूर्णाः विटपाः शाखाः येषां ते तथोक्ताः सन्ति । **गोकुलधनानि** गवां धेनूनां कुलानि समुदायाः गोकुलानि धनानि इव, मुनीनां सर्वप्रयोजनसाधकत्वाद् धनतुल्यानि गोवृन्दानीत्यर्थः, **कपिलानि** कपिलवर्णानि **भूयिष्ठं** बहुतमं सन्ति । कपिलानां गवामतिप्राशस्त्येन आश्रमेषु ऋषिसन्निधानार्हत्वात् तपोवनचिह्नमेतदिति ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

—परिचित स्थान होने से शंका-रहित हुए हिरन अचकित होकर आनन्द से चल फिर रहे हैं, दया से रक्षा किये गये सब वृक्षों की शाखाएँ फल-फूलों से भरी (लदी) हुई हैं, तपस्वियों के धन गायों के समुदाय में कपिला गायें अत्यधिकता से हैं, आस-पास की भूमि जुती हुई नहीं है, और बहुत स्थानों से यह धुआं ऊपर उठता हुआ दिखाई दे रहा है। इसलिए, निस्सन्देह, दिखाई देता हुआ यह तपोवन ही है ॥१२॥

मैं इसमें प्रवेश करता हूँ। [प्रवेश करके] अहो! निस्सन्देह, यह तो आश्रम-विरुद्ध (नागरिक) आदमी (जान पड़ता) है। [दूसरी ओर देखकर] लेकिन यहां तो तपस्वी जन भी हैं। तब जाने में कोई दोष नहीं। अहो! यहां तो स्त्रियां भी हैं!

कंचुकी—आप निःशङ्क प्रवेश करें। आश्रम सब मनुष्यों के लिए समान है।

वासवदत्ता—ऊँह!

पद्मावती—अहो! आर्या पर-पुरुष का दर्शन नहीं चाहती। अच्छा, मेरे पास रक्खी गई धरोहर का पालन (रक्षण) करना सुकर है।

कंचुकी—अजी! हम पहले से आये हुए हैं। अतिथि-सत्कार ग्रहण कीजिए।

[कपिलानां गवां प्राशस्त्यं यथोक्तं स्मृतौ—'अग्निचित् कपिला सत्री राजा भिक्षुर्महोदधिः। दृष्टमात्राः पुनन्त्येते तस्मात् पश्येत नित्यशः ॥' इति] **दिशः** प्रान्तभागाः पर्यन्तभूमयः **अक्षेत्रवत्यः** क्षेत्राणि कृषाणैः कृष्यर्थं हलादिना संस्कृता भूमयः केदारादिरूपाः तद्वत्यो न भवन्तीति अक्षेत्रवत्यः बीजवपनार्थमनुपयुज्यमानाः सन्ति। **इदं** दृश्यमानम्, **निस्संदिग्धं** निश्चयेन, **तपोवनम्** आश्रमस्थानम् अस्ति। **हि** यस्मात् कारणात् **अयं** प्रत्यक्षदृश्यमानः **बह्वाश्रयः** बहवः आश्रयाः उद्गमस्थानानि यस्य तथाभूतः **धूमः** होमाग्निजन्यः वर्तते।

अत्र हरिणानां विश्रब्धसञ्चरणादिना आश्रमे भूतदयाऽहिंसा च, वृक्षाणां पुष्पफलसमृद्ध्या सन्तोषप्रकर्षः, कपिलाभूयस्त्वेनातिपावनत्वम्, गोकुले धनत्वारोपेणेतरधननिःस्पृहत्वम्, अक्षेत्रसम्बन्धेन शान्तत्वम्, बह्वाश्रयधूमेन माध्यन्दिनाग्निकृत्यम्, इत्येते अर्थाः सूचिताः। स्वभावोक्तिः। इदं तपोवनमित्यस्य बहूनां वाक्यानां हेतुत्वाद् वाक्यार्थहेतुकं काव्यलिङ्गञ्च। शार्दूलविक्रीडितम् ॥१२॥

अये इति—**अये** इत्याश्चर्ये शङ्कायां वा। **आश्रमविरुद्धः** आश्रमजनासदृशः नागरिकः। **एष जनः** काञ्चुकीयः। **निर्दोषम्** दोषरहितम्। **उपसर्पणम्** समीपगमनम्। **सर्वजनसाधारणम्** सर्वजनसमानप्रवेशयोग्यम्। **हम्** इत्यरुचौऽसम्मतौ वा।

अम्मो इति आश्चर्यद्योतकः हर्षद्योतको वा निपातः। स च परपुरुष-

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

ब्रह्मचारी—[आचम्य] भवतु भवतु । निवृत्तपरिश्रमोऽस्मि ।

यौगन्धरायणः—भोः ! कुत आगम्यते, क्व गन्तव्यम्, क्वाधिष्ठानमार्यस्य ।

ब्रह्मचारी—भोः ! श्रूयताम् । राजगृहतोऽस्मि । श्रुतिविशेषणार्थं लावाणकं नाम ग्रामस्तत्रोषितवानस्मि ।

वासवदत्ता—[आत्मगतम्] हा ! लावाणअं णाम । लावाणअसंकित्तणेण पुणो णवीकिदो विअ मे सन्दावो ।

हा ! लावाणकं नाम । लावाणकसङ्कीर्तनेन पुनर्नवीकृत इव मे सन्तापः ।

यौगन्धरायणः—अथ परिसमाप्ता विद्या ।

ब्रह्मचारी—न खलु तावत् ।

यौगन्धरायणः—यद्यनवसिता विद्या, किमागमनप्रयोजनम् ।

ब्रह्मचारी—तत्र खल्वतिदारुणं व्यसनं संवृत्तम् ।

यौगन्धरायणः—कथमिव ।

ब्रह्मचारी—तत्रोदयनो नाम राजा प्रतिवसति ।

यौगन्धरायणः—श्रूयते तत्रभवानुदयनः । किं सः ।

ब्रह्मचारी—तस्यावन्तिराजपुत्री वासवदत्ता नाम पत्नी दृढमभिप्रेता किल ।

यौगन्धरायणः—भवितव्यम् । ततस्ततः ।

ब्रह्मचारी—ततस्तस्मिन् मृगयानिष्क्रान्ते राजनि ग्रामदाहेन सा दग्धा ।

वासवदत्ता—[आत्मगतम्] अलिअं अलिअं खु एदं । जीवामि मन्दभाआ ।

अलीकमलीकं खल्वेतत् । जीवामि मन्दभागा ।

यौगन्धरायणः—ततस्ततः ।

ब्रह्मचारी—ततस्तामभ्यवपत्तुकामो यौगन्धरायणो नाम सचिवस्तस्मिन्नेवाग्नौ पतितः ।

यौगन्धरायणः—सत्यं पतित इति । ततस्ततः ।

ब्रह्मचारी—ततः प्रतिनिवृत्तो राजा तद्वृत्तान्तं श्रुत्वा तयोर्वियोग-

---

दर्शनस्यापि परिहारेण स्वशीलरक्षणार्थमत्यन्तदत्तावधानताजन्यः । **सुपरिपालनीयः** सुखेन पालयितुं शक्यः । **न्न्यासः** अर्थिभगिनीरूपः । **भवतु भवतु** तिष्ठतु तिष्ठतु अधिकं मास्तु, एतावानेवोपचारः पर्याप्तः । **निवृत्तपरिश्रमः** गतक्लमः ।

दृढमिति—**दृढम्** अत्यन्तम् । **अभिप्रेता** इष्टा, प्रिया । **भवितव्यम्** भवितुमर्हति । **मृगयानिष्क्रान्ते** आखेटकार्थं बहिर्निर्गते ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

ब्रह्मचारी—[आचमन करके] अच्छा, अच्छा। मेरी थकावट दूर हो गई।

यौगन्धरायण—अजी! आप कहां से आ रहे हैं? कहां जाना है? कहां के रहने वाले हैं?

ब्रह्मचारी—अजी! सुनिए। मैं राजगृह का निवासी हूँ। वेद के विशेष अध्ययन के लिए मैं वत्स प्रदेश में लावाणक नाम के गांव में रहता था।

वासवदत्ता—[स्वगत] हाय! लावाणक! लावाणक नाम के कीर्तन ने मेरा सन्ताप फिर नया-सा कर दिया है।

यौगन्धरायण—तो क्या विद्या समाप्त कर ली?

ब्रह्मचारी—अभी नहीं।

यौगन्धरायण—यदि विद्या समाप्त नहीं की तो फिर आपके चले आने का क्या कारण है?

ब्रह्मचारी—वहां अति भीषण दुर्घटना हो गई।

यौगन्धरायण—सो कैसी?

ब्रह्मचारी—वहां उदयन नाम का राजा रहता है।

यौगन्धरायण—हां, सुनते हैं, वहां माननीय उदयन रहते हैं। उनके सम्बन्ध में क्या समाचार है?

ब्रह्मचारी—सुना जाता है कि अवन्ति-राजपुत्री वासवदत्ता उसकी अत्यन्त प्यारी पत्नी थी।

यौगन्धरायण—होगी। हां, फिर?

ब्रह्मचारी—तब उस राजा के शिकार खेलने के लिए चले जाने पर वह गांव में आग लगने से जल गई।

वासवदत्ता—[स्वगत] झूठ! झूठ! मैं मन्दभागिनी यह जी रही हूँ।

यौगन्धरायण—तब क्या हुआ?

ब्रह्मचारी—तब उसको बचाना चाहता हुआ मन्त्री यौगन्धरायण भी उसी अग्नि में गिर पड़ा।

यौगन्धरायण—सचमुच गिर पड़ा। तब फिर?

ब्रह्मचारी—इसके अनन्तर राजा जब वापस आया तो वह उस घटना को सुन-

---

अलीकम् असत्यम्। नितान्तालीकत्वद्योतनार्थं द्वित्वम्। **ताम्** वासवदत्ताम्। **अभ्यवपत्तुकामः** अभ्यवपत्तुं वह्निदाहव्यसनाद् उद्धर्तुं कामोऽभिलाषो यस्य सः। **तयोरिति—तयोः** पत्न्यमात्ययोः। **वियोगजनितसन्तापः** वियोगेन विश्लेषेण जनितः उत्पन्नः सन्तापोऽतिदुःखं यस्य सः।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

जनितसन्तापस्तस्मिन्नेवाग्नौ प्राणान् परित्यक्तुकामोऽमात्यैर्महता यत्नेन वारितः।

वासवदत्ता—[आत्मगतम्] जाणामि जाणामि अय्यउत्तस्स मइ साणुक्कोसत्तणं।

जानामि जानाम्यार्यपुत्रस्य मयि सानुक्रोशत्वम्।

यौगन्धरायणः—ततस्ततः।

ब्रह्मचारी—ततस्तस्याः शरीरोपभुक्तानि दग्धशेषाण्याभरणानि परिष्वज्य राजा मोहमुपगतः।

सर्वे—हा!

वासवदत्ता—[स्वगतम्] सकामो दाणिं अय्यजोअन्धराअणो होदु।

सकाम इदानीमार्ययौगन्धरायणो भवतु।

चेटी—भट्टिदारिए! रोदिदि खु इअं अय्या।

भर्तृदारिके! रोदिति खल्वियमार्या।

पद्मावती—साणुक्कोसाए होदव्वं।

सानुक्रोशया भवितव्यम्।

यौगन्धरायणः—अथ किमथ किम्। प्रकृत्या सानुक्रोशा मे भगिनी। ततस्ततः।

ब्रह्मचारी—ततः शनैः शनैः प्रतिलब्धसंज्ञः संवृत्तः।

पद्मावती—दिट्ठिआ धरइ। मोहं गदो त्ति सुणिअ सुण्णं विअ मे हिअअं।

दिष्ट्या ध्रियते। मोहं गत इति श्रुत्वा शून्यमिव मे हृदयम्।

यौगन्धरायणः—ततस्ततः।

ब्रह्मचारी—ततः स राजा महीतलपरिसर्पणपांसुपाटलशरीरः सहसोत्थाय 'हा वासवदत्ते! हा अवन्ति-राजपुत्रि! हा प्रिये! हा प्रियशिष्ये!" इति किमपि बहु प्रलपितवान्। किं बहुना,

नैवेदानीं तादृशाश्चक्रवाका
नैवाप्यन्ये स्त्रीविशेषैर्वियुक्ताः।

सानुक्रोशत्वम् दयार्द्रचित्तत्वं सहृदयत्वम्। **शरीरोपभुक्तानि** शरीरे देहे उपभुक्तानि परिहितानि। **परिष्वज्य** उरसाश्लिष्य हृदयेनालिङ्ग्य। **सानुक्रोशया** परदुःखद्रवितचित्तया।

अथ किम् यथा भवत्योच्यते तथैवास्तीत्यर्थः। वासवदत्तायाः सानुक्रोशत्वख्यापनदार्ढ्यार्थं द्वित्वम्।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

कर उन दोनों के वियोग से सन्तप्त होकर उसी आग में प्राणविसर्जन करना चाहता हुआ मन्त्रियों से बड़े यत्न से रोका गया।

वासवदत्ता—[स्वगत] आर्यपुत्र का मुझमें जो अत्यधिक प्रेम है, उसे मैं अच्छी तरह जानती हूँ।

यौगन्धरायण—तब फिर ?

ब्रह्मचारी—तब राजा उसके शरीर में इस्तेमाल किये गये और जलने से बचे हुए आभरणों को छाती से लगाकर मूर्च्छित (बेहोश) हो गया।

सब—हाय !

वासवदत्ता—[स्वगत] अब आर्य यौगन्धरायण की कामना पूर्ण हो।

चेटी—राजकुमारि ! यह आर्या रो रही हैं।

पद्मावती—पर-दुःख से दुःखित हुई होंगी।

यौगन्धरायण—हां, यह बिल्कुल ठीक है। मेरी बहन स्वभाव ही से दूसरे के दुःख से कातर होने वाली (सहृदया) है। इसके अनन्तर क्या हुआ ?

ब्रह्मचारी—तब धीरे धीरे सचेत हुआ।

पद्मावती—अहोभाग्य ! जी रहा है। बेहोश होना सुनकर मेरा हृदय शून्य-सा हो गया।

यौगन्धरायण—तब फिर ?

ब्रह्मचारी—तब वह राजा जमीन पर लोटने से धूल लगकर धूसरित शरीर हुआ एकाएक उठकर 'हा वासवदत्ते ! हा अवन्तिराजपुत्रि ! हा प्रिये ! हा प्रियशिष्ये !' इस प्रकार बहुत प्रलाप करने लगा। बहुत क्या कहना है,

—(वियोग-शोक में) उसके समान इस समय न तो चक्रवाक हैं, और न अपनी उत्तमाङ्गनाओं से जुदा हुए अन्य ही हैं। वह स्त्री धन्य है, जिसे

महीतलेति—महीतले भूमौ यत् परिसर्पणं परिलुण्ठनं तेन लग्ना ये पांसवः धूलयस्तैः पाटलं श्वेतरक्तं धूलिधूसरितं शरीरं यस्य सः तथाभूतः।

"नैवे"ति—**इदानीं** सम्प्रति वासवदत्ताविरहशोकसंतप्ते उदयने **चक्रवाकाः** प्रियाविरहशोकासहिष्णुत्वेन प्रसिद्धाश्चक्रवाकपक्षिणः **तादृशाः** तथा विरहशोकाकुलाः **नैव** न सन्ति, यादृश उदयनोऽस्तीत्यर्थः चक्रवाकपक्षिणां तु प्रातः प्रियादर्शनप्रत्याशा हृदि तिष्ठति, उदयनस्य तु पुनः प्रियादर्शनप्रत्याशालेशोऽपि नास्त्यतश्चक्रवाकाणामतादृशत्वमित्याशयः, **स्त्रीविशेषैः** स्त्रीषु नारीषु विशेषैः रूपलावण्यपातिव्रत्यादिगुणैर्विशिष्टाभिः स्त्रीभिरित्यर्थः, **वियुक्ताः** विश्लेषितः विरहाकुलाः **अन्ये** इतरे **अपि, नैव** न सन्ति, तादृशा इति पूर्वानुषङ्गः। **उदयनः**

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

धन्या सा स्त्री यां तथा वेत्ति भर्ता
भर्तृस्नेहात् सा हि दग्धाप्यदग्धा ॥१३॥

यौगन्धरायणः—अथ भोः! तं तु पर्यवस्थापयितुं न कश्चिद् यत्नवानमात्यः।

ब्रह्मचारी—अस्ति रुमण्वान्नामामात्यो दृढं प्रयत्नवांस्तत्रभवन्तं पर्यवस्थापयितुम्। स हि,

अनाहारे तुल्यः सततरुदितक्षामवदनः
शरीरे संस्कारं नृपतिसमदुःखं परिवहन्।
दिवा वा रात्रौ वा परिचरति यत्नैर्नरपतिं
नृपः प्राणान् सद्यस्त्यजति यदि तस्याप्युपरमः ॥१४॥

वासवदत्ता—[स्वगतम्] दिट्ठिआ सुणिक्खित्तो दाणिं अय्यउत्तो।
दिष्ट्या सुनिक्षिप्त इदानीमार्यपुत्रः।

यौगन्धरायणः—[आत्मगतम्] अहो! महद्भारमुद्वहति रुमण्वान्। कुतः,

सविश्रमो ह्ययं भारः प्रसक्तस्तस्य तु श्रमः।
तस्मिन् सर्वमधीनं हि यत्राधीनो नराधिपः ॥१५॥

विरहशोकसंवेदने सर्वानप्यतिशेते इति भावः। **सा स्त्री** वासवदत्ता **धन्या** कृतपुण्या अस्तीत्यर्थः, **भर्ता** उदयनः **याम्, तथा** तेन प्रकारेण **वेत्ति** जानाति। **हि** निश्चयेन, **सा, दग्धा** अपि दाहं प्राप्ता अपि **भर्तृस्नेहात्** भर्तुः स्नेहः प्रेमोद्रेक एव स्नेहः दाहशमनकारकस्निग्धपदार्थः ['स्नेहः प्रेम्णि घृतादिके'] तस्मात् **अदग्धा** जीविता, अन्यत्र दाहदोषरहिता, अस्ति। स्निग्धपदार्थप्रयोगेण दाहशान्तिः प्रसिद्धा।

मृतामपि यां पतिः स्मरति सा जीवितैव मन्तव्या, न खलूपरतेति भावः। प्रेम्णः स्निग्धपदार्थस्य च भेदेऽपि स्नेहपदश्लेषेणाभेदाध्यवसायादतिशयोक्तिः। शालिनीवृत्तम्। 'शालिन्युक्ता म्तौ तगौ गोऽब्धिलोकैः' इति तल्लक्षणम् ॥१३॥

तमिति—**तम्** उदयनम्। **पर्यवस्थापयितुं** समाश्वासनपरिचरणादिभिः प्रकृतिस्थं कर्तुम्।

"अनाहारे" इति—स हि इति गद्यस्थेनान्वयः। हि निश्चयेन स रुमण्वान् **अनाहारे** आहाराग्रहणे अनशने, यद्वा—आहारः अशनग्रहणम्, अविद्यमानः आहारो यस्य तादृशे नृपतावित्यर्थः, **तुल्यः** समानः, नृपतिनेति शेषः। यथा पत्नीशोकाकुलः नृपतिः अशनादिकं नादत्ते, स्वामिभक्त्यतिरेकेण तद्वत् सोऽपीति। **सततरुदितक्षामवदनः** सततम् अनारतं यद् रुदितं तेन क्षामं कृशं वदनं मुखं यस्य सः नृपतितुल्य इत्यर्थः, **नृपतिसमदुःखं** नृपतिना उदयनेन

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

पति उस तरह समझता है। जली हुई भी वह, निस्सन्देह, पति के प्रेमामृत से जीती ही है ॥१३॥

यौगन्धरायण—क्यों, जी ! उसकी चित्त-स्थिति को ठीक करने के लिए किसी भी अमात्य ने प्रयत्न नहीं किया ?

ब्रह्मचारी—है, रुमण्वान् नाम का अमात्य महाराज की चित्त-स्थिति को ठीक करने के लिए अत्यन्त प्रयत्न करने वाला। वह, निस्सन्देह,

—निराहार रहने में राजा के तुल्य है, राजा की तरह निरन्तर रोदन करने से क्षीण-वदन हो गया है, राजा के समान ही दुःखित चित्त से शरीर में आवश्यक संस्कारों को धारण करता है, दिन-रात बड़े यत्नों से राजा की सेवा में उपस्थित रहता है। (ईश्वर न करे) राजा यदि तत्काल प्राण-परित्याग करे तो उसकी जीवन-लीला भी समाप्त है ॥१४॥

वासवदत्ता—[स्वगत] अहोभाग्य ! आर्यपुत्र इस समय योग्य रक्षक के हाथों में हैं।

यौगन्धरायण—[स्वगत] ओह ! अमात्य रुमण्वान् बड़े भार को सँभाले हुए हैं। क्योंकि,

—मेरा भार तो विश्राम-युक्त भी है, किन्तु उसका भार तो लगातार ही श्रम-जनक है। प्रजा-पालक का जीवन जिस पर अवलम्बित है, उस पर सब निर्भर है ॥१५॥

समं दुःखं कष्टं यस्मिन् कर्मणि तद् यथा भवति तथा यथाकथञ्चिदपि महता कष्टेन **शरीरे** गात्रे काये **संस्कारं** गन्धमाल्यानुलेपनोद्वर्तनादिकम् **परिवहन्** धारयन् **दिवा वा रात्रौ** वा दिवा च रात्रौ च अहर्निशम् **यत्नैः** विविधप्रयासैः **नरपतिं** राजानम् **परिचरति** शुश्रूषते। **यदि** चेत् **नृपः** राजा **सद्यः** आशु **प्राणान्** असून् **त्यजति** मुञ्चति, तदा **तस्य अपि** रुमण्वतोऽपि **उपरमः** असुविनिर्गमः जीवितावसानं मृत्युरिति यावत्, भवेदिति शेषः।

शिखरिणीवृत्तम्—'रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी' इति लक्षणात् ॥१४॥

दिष्ट्येति—दिष्ट्या इति हर्षे। **सुनिक्षिप्तः** सुष्ठु निक्षेपत्वं प्राप्तः सुरक्षकहस्ते गतः।

"सविश्रमः" इति—**हि** निश्चयेन **अयं** मया आत्मना धृतः राजपत्नीरक्षणरूपः **भारः** गुरुतरकार्यम्, कार्यस्य कठिनतरप्रयाससाध्यत्वात् तत्र भारशब्दोपचारः, **सविश्रमः** श्रमः श्रान्तिः, विगतः श्रमः विश्रमस्तेन सह वर्तत इति सविश्रमः विश्रामसहितः, पद्मावतीसविधे वासवदत्तान्यासीकरणादित्यर्थः। **तस्य तु**

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

 Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

[प्रकाशम्] अथ भोः ! पर्यवस्थापित इदानीं स राजा ।

ब्रह्मचारी—तदिदानीं न जाने । 'इह तया सह हसितम्, इह तया सह कथितम्, इह तया सह पर्युषितम्, इह तया सह कुपितम्, इह तया सह शयितम्' इत्येवं विलपन्तं तं राजानममात्यैर्महता यत्नेन तस्माद् ग्रामाद् गृहीत्वापक्रान्तम् । ततो निष्क्रान्ते राजनि प्रोषितनक्षत्रचन्द्रमिव नभोऽरमणीयः संवृत्तः स ग्रामः । ततोऽहमपि निर्गतोऽस्मि ।

तापसी—सो खु गुणवन्तो णाम राम्रा, जो म्राम्रन्तुएण वि इमिणा एव्वं पसंसीम्रदि ।

स खलु गुणवान् नाम राजा, य आगन्तुकेनाप्यनेनैवं प्रशस्यते ।

चेटी—भट्टिदारिए ! किं णु खु अवरा इत्थिआ तस्स हत्थं गमिस्सदि ।

भर्तृदारिके ! किं नु खल्वपरा स्त्री तस्य हस्तं गमिष्यति ।

पद्मावती—[आत्मगतम्] मम हिअएण एव्व सह मन्तिदं ।

मम हृदयेनैव सह मन्त्रितम् ।

ब्रह्मचारी—आपृच्छामि भवन्तौ । गच्छामस्तावत् ।

उभौ—गम्यतामर्थसिद्धये ।

ब्रह्मचारी—तथास्तु । [निष्क्रान्तः]

यौगन्धरायणः—साधु, अहमपि तत्रभवत्याऽभ्यनुज्ञातो गन्तुमिच्छामि ।

काञ्चुकीयः—तत्रभवत्याऽभ्यनुज्ञातो गन्तुमिच्छति किल ।

पद्मावती—अय्यस्स भइणिआ अय्येण विना उक्कण्ठिस्सदि ।

आर्यस्य भगिनिकाऽऽर्येण विनोत्कण्ठिष्यते ।

यौगन्धरायणः—साधुजनहस्तगतैषानोत्कण्ठिष्यति [काञ्चुकीयमवलोक्य] गच्छामस्तावत् ।

काञ्चुकीयः—गच्छतु भवान् पुनर्दर्शनाय ।

यौगन्धरायणः—तथास्तु । [निष्क्रान्तः]

काञ्चुकीयः—समय इदानीमभ्यन्तरं प्रवेष्टुम् ।

पद्मावती—अय्ये ! वन्दामि । —आर्ये ! वन्दे ।

रुमण्वतः श्रमस्तु **प्रसक्तः** सततः सातत्येन सातिशयकष्टप्रद इत्यर्थः, अथवा—तस्य भारः राजरक्षणरूपस्तु प्रसक्तः सततः **श्रमः** श्रमजनकः कष्टप्रदः अस्ति । **हि** यस्मात् कारणात् **यत्र** यस्मिन् रुमण्वति **नराधिपः** नराणां पालयिता **अधीनः** रक्षणीयत्वेन आयत्तः ['अधीनो निघ्न आयत्तः' इत्यमरः] **तत्र** तस्मिन् नराधिपभारनम्रे रुमण्वति सर्व राजरक्षणादि राज्यादिकार्यजातम् **अधीनम्** आयत्तं

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

[प्रकट] क्यों, जी ! अब तो राजा की चित्त-स्थिति ठीक हो गई ?

ब्रह्मचारी—यह इस समय मैं नहीं जानता । 'यहां उसके साथ हंसा, यहां उसके साथ वार्तालाप किया, यहां उसके साथ रहा, यहां उसके साथ प्रणय-कलह किया, यहां उसके साथ सोया' इस प्रकार विलाप करते हुए उस राजा को राज-मन्त्री बड़े यत्न से लेकर उस गांव से चले गये । तब राजा के चले जाने पर वह गांव नक्षत्रों और चन्द्रमा से शून्य आकाश की तरह शोभा-हीन हो गया । इसलिये मैं भी वहां से चला आया ।

तापसी—वह राजा, निस्सन्देह, गुणवान् है, जिसकी यह पथिक भी इस तरह प्रशंसा कर रहा है ।

चेटी—राजकुमारि ! क्या कोई और स्त्री उसकी रानी बनेगी ?

पद्मावती—[स्वगत] मेरे दिल की बात कही ।

ब्रह्मचारी—आप (परिव्राजक, कंचुकी) से विदा मांगता हूं । अब मैं जाता हूं ।

दोनों—जाइए, अपनी अभीष्ट-सिद्धि के लिए ।

ब्रह्मचारी—ऐसा ही हो । [प्रस्थान]

यौगन्धरायण—मैं भी राजकुमारी की आज्ञा पाकर जाना चाहता हूं ।

कंचुकी—[राजकुमारी से] आप की आज्ञा पाकर ये जाना चाहते हैं ।

पद्मावती—[यौगंधरायण से] आर्य की बहन आर्य के बिना उत्कण्ठित होंगी !

यौगन्धरायण—वह सज्जनों के हाथ में है, उत्कण्ठित नहीं होगी । [कंचुकी की ओर देखकर] अब जाते हैं ।

कंचुकी—जाइए, फिर दर्शन देने के लिए ।

यौगन्धरायण—ऐसा ही हो । [प्रस्थान]

कंचुकी—अब भीतर जाने का समय है ।

पद्मावती—[तापसी के प्रति] आर्ये ! मैं प्रणाम करती हूं ।

स्यात् ॥१५॥

प्रोषितेति—प्रोषितानि अन्तर्हितानि मेघाद्याच्छादितानि नक्षत्राणि अश्विन्यादीनि चन्द्रश्च यत्र तत् तादृशम् । **आगन्तुकेन** पथिकेन तटस्थेन उदासीनेन । **प्रशस्यते** स्तूयते । वस्तुतस्तु तटस्थकृता गुणदोषविवेचनैव प्रमाणमिति ।

आपृच्छामि आमन्त्रये गन्तुमनुज्ञां याचे ['आङि नुप्रच्छ्योः' इत्यनेन वार्त्तिकेन 'आपृच्छे' इति भाव्ये परस्मैपदं चिन्त्यम् । समाधानान्तरं वा मृग्यम्] ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

तापसी—जादे ! तव सदिसं भत्तारं लभेहि[1] ।

जाते ! तव सदृशं भर्तारं लभस्व ।

वासवदत्ता—अय्ये ! वन्दामि दाव अहं ।

आर्ये ! वन्दे तावदहम् ।

तापसी—तुवं पि अइरेण भत्तारं समासादेहि[1] ।

त्वमप्यचिरेण भर्तारं समासादय ।

वासवदत्ता—अणुग्गहीदह्मि । —अनुगृहीतास्मि ।

काञ्चुकीय—तदागम्यताम् । इत इतो भवति[2] ! । सम्प्रति हि,

खगा वासोपेताः सलिलमवगाढो मुनिजनः
प्रदीप्तोऽग्निर्भाति प्रविचरति धूमो मुनिवनम् ।
परिभ्रष्टो दूराद् रविरपि च संक्षिप्तकिरणो
रथं व्यावर्त्यासौ प्रविशति शनैरस्तशिखरम् ॥१६॥

[निष्क्रान्ताः सर्वे]

इति प्रथमोऽङ्कः ।

"**खगा**" इति—सम्प्रति हि इति गद्यस्थेनान्वयः । **हि** निश्चयेन **सम्प्रति** इदानीं निशासामीप्ये **खगाः** पक्षिणः **वासोपेताः** वासं स्वस्वनीडादिकम् उपेताः प्राप्ताः । **मुनिजनः** मुनयः **सलिलम्** नदीतटाकादिजलम् **अवगाढः** स्नातुमवतीर्णः । **प्रदीप्तः** प्रकर्षेण दीप्तः होमार्थं प्रज्वलितः **अग्निः** अनलः **भाति** प्रकाशते । **धूमः** अग्निजन्यः **मुनिवनं** मुनीनां वनम् आश्रमं तपोवनम् **प्रविचरति** प्रकर्षेण विचरति उत्थायोत्थाय उद्गच्छति । **अपि च** अपरं च, **दूरात्** सुदूरप्रदेशात् गगनमध्यात् **परिभ्रष्टः** प्रच्युतः अधः पतितः, इवेति शेषः, **संक्षिप्तकिरणः** संक्षिप्ताः स्वात्मनि उपसंहृताः किरणाः रश्मयो तेन तथाभूतः **असौ** सुदूर दृश्यमानः **रविः** सूर्यः **रथं**

---

१. लभेहि. २. भवत्यः.

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

तापसी—बेटी ! तुम्हें अपने सदृश पति मिले।

वासवदत्ता—आर्ये ! मैं भी आपको प्रणाम करती हूँ।

तापसी—तुम्हें भी शीघ्र ही तुम्हारा भर्ता (=पति) मिले।

वासवदत्ता—मैं आपकी अनुगृहीत हुई।

कंचुकी—तो आइए ! इधर, इधर, राजकुमारि ! क्योंकि इस समय,

—पक्षी अपने-अपने घोंसलों में बैठ गये हैं। मुनि-जन (नहाने के लिए) पानी में उतर पड़े हैं। जलती हुई अग्नि चमक रही है। तपोवन के ऊपर धुआं उठ-उठकर फैल रहा है। सुदूर (आकाश) से गिरा हुआ वह सूर्य-देव भी अपनी किरणों को समेटकर और रथ-गति को रोककर धीरे-धीरे अस्ताचल के शिखर की ओर जा रहा है ॥१६॥

[सब का प्रस्थान]

पहला अङ्क समाप्त।

निजयानम् 'सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रम्' (ऋ० १.१६४.२) इत्यागमप्रसिद्धम् **व्यावर्त्य** नियम्य जवगतेर्निवार्य **शनैः** मन्दम् **अस्तशिखरम्** अस्ताचलशृङ्गम् **प्रविशति** याति।

सायंसन्ध्या जातेति तात्पर्यम्। प्रथमं गिरिगमनमेव तावद् दुःशकं भवति, तच्छिखरगमनं त्वतीव दुःशकम्। अस्तगिरौ तत्रापि नाधोभागेऽपितु तच्छिखरे रथयानव्यसनशीलः किन्तु दूरात्परिभ्रष्टत्वेनोत्तरकालार्थं समुपजात-चेतनो रविरनिष्टभियेव किरणानात्मन्युपसंहृत्य रथं जवगतेर्नियम्य शनैरस्तशिखरं प्रविशतीति ध्वनितम्। परार्द्धे उत्प्रेक्षा गम्या। शिखरिणीवृत्तम् ॥१६॥

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

अथ द्वितीयोऽङ्कः

[ततः प्रविशति चेटी]

चेटी—कुञ्जरिए ! कुञ्जरिए ! कहिं कहिं भट्टिदारिआ पदुमावदी । किं भणासि, एसा भट्टिदारिआ माहवीलदामण्डवस्स पस्सदो कन्दुएण कीलदित्ति । जाव भट्टिदारिअं उवसप्पामि । [परिक्रम्यावलोक्य] अम्मो ! इअं भट्टिदारिआ उक्करिदकण्णचूलिएण वाआमसञ्जादसेदबिन्दुविइत्तिदेण परिस्सन्तरमणीअदंसणेण मुहेण कन्दुएण कीलन्दी इदो एव्व आअच्छदि । जाव उवसप्पिस्सं ।

कुञ्जरिके ! कुञ्जरिके ! कुत्र कुत्र भर्तृदारिका पद्मावती । किं भणसि, एषा भर्तृदारिका माधवीलतामण्डपस्य पार्श्वतः कन्दुकेन क्रीडतीति । यावद् भर्तृदारिकामुपसर्पामि । अम्मो ! इयं भर्तृदारिका उत्कृतकर्णचूलिकेन व्यायामसञ्जातस्वेदबिन्दुविचित्रितेन परिश्रान्तरमणीयदर्शनेन मुखेन कन्दुकेन क्रीडन्तीति एवागच्छति । यावदुपसर्पामि ।

[निष्क्रान्ता]

प्रवेशकः ।

[ततः प्रविशति कन्दुकेन क्रीडन्ती पद्मावती
सपरिवारा वासवदत्तया सह]

वासवदत्ता—हला ! एसो दे कन्दुओ ।

हला ! एष ते कन्दुकः ।

पद्मावती—अय्ये ! भोदु दाणिं एत्तअं ।

आर्ये ! भवत्विदानीमेतावत् ।

वासवदत्ता—हला ! अदिचिरं कन्दुएण कीलिअ अहिअसञ्जादराआ परकेरआ विअ दे हत्था संवुत्ता ।

हला ! अतिचिरं कन्दुकेन क्रीडित्वाधिकसञ्जातरागौ परकीयाविव ते हस्तौ संवृत्तौ ।

अथ द्वितीयेऽङ्के—पद्मावत्याः सखीभिः सह कन्दुककेलिः, तत्र सखीविस्रब्धसंलापः, प्रथमाङ्कसूचितस्य पद्मावत्या वत्सराजोदयनविषयकस्याभिलाषस्य सम्यक् परिपोषः, पद्मावतीभ्रातुर्महाराजदर्शकस्य वत्सराजोदयनाय पद्मावतीं दातुमध्यवसायः, पद्मावत्या विवाहपूर्वाङ्गभूतकौतुकमङ्गलाचारानुष्ठानत्वरा, इत्येतावन्तोऽर्थाः प्रतिपादयिष्यन्ते । तत्र च कन्दुककेलिप्रसक्तायाः पद्मावत्याः

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

दूसरा अङ्क

[चेटी (चेरी) का प्रवेश]

चेटी—कुंजरिके ! ओ कुंजरिके ! कहां हैं, कहां हैं राजकुमारी पद्मावती ? क्या कहती हो ? 'राजकुमारी यह माधवी-लता-मण्डप के समीप गेंद खेल रही हैं ?' तो मैं अभी राजकुमारी के पास चलती हूँ। [घूमकर और देखकर] अहा ! राजकुमारी तो ये यहां हैं। श्रम करने से मुख-मण्डल की क्या ही मनोहर छवि है ! झूमते हुए कर्ण-फूल चेहरे पर से ऊपर की ओर किये हुए हैं। व्यायाम से उत्पन्न हुई पसीने की बूंदों के झलकने से मुख-मण्डल की विचित्र शोभा हुई है। गेंद खेलती हुई इधर ही आ रही हैं। तो मैं पास चलूं।

[प्रस्थान]

प्रवेशक

[गेंद खेलती हुई सहेलियों-समेत पद्मावती का वासवदत्ता के साथ प्रवेश]

वासवदत्ता—सखी ! यह है तुम्हारी गेंद।

पद्मावती—आर्ये ! बस, अब रहने दो। इस समय इतना ही।

वासवदत्ता—सखि ! बहुत देर तक गेंद खेलकर तुम्हारे ये लाल-लाल हाथ और भी अधिक लाल होकर पराये-से हो गये हैं।

प्रवेशसंसूचनाय प्रवेशकं निबध्नन् तदनुगुणस्य चेटीरूपपात्रस्य प्रवेशं तावदुपक्षिपति—"**ततः प्रविशति चेटी**"ति। **कुञ्जरिके** इत्यादिना इहाप्रविष्टा एवापरा सजातीया सम्बोध्य परिपृच्छ्यते। तयानुक्तमपि उत्तरितमिव स्वयमभिनीयते। तदेतदाकाशभाषितं नाम नाट्ये। यथोक्तम्—'किं ब्रवीष्येवमित्यादि विना पात्रं ब्रवीति यत्। श्रुत्वेवानुक्तमप्येकस्तत् स्यादाकाशभाषितम् ॥' इति। **माधवीलतामण्डपस्य** स्त्रीजनोचितवासन्तीलतागृहस्य। **उत्कृतकर्णचूलिकेन** उत्कृता अधोलम्बनवारणार्थम् ऊर्ध्वं कृता कर्णचूलिका कर्णाभरणविशेषो यस्मिन् तेन। **व्यायामे**ति—व्यायामेन कन्दुकास्फालनजन्यपरिश्रमेण सञ्जाताः उत्पन्नाः ये स्वेदबिन्दवः स्वेदजलकणास्तैः विचित्रितेन कान्तिवैचित्र्यं दधता। **परिश्रान्तरमणीयेन** परिश्रान्तेन परिश्रान्त्या रमणीयं मनोहरं दर्शनं यस्य तेन तथाभूतेन। **मुखेन** आननेन उपलक्षितेत्यर्थः। **प्रवेशकः**—'प्रवेशकोऽनुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः' इत्युक्तलक्षणः। **अधिके**ति—अधिकः कन्दुकास्फालनेन प्रवृद्धः सञ्जातः स्वभावसिद्धः रागो लौहित्यं, पक्षे—अनुरागः, ययोस्तौ तथाभूतौ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

चेटी—कीलदु कीलदु दाव भट्टिदारिश्रा । णिव्वत्तीश्रदु दाव श्रश्रं कण्णाभावरमणीश्रो कालो ।

क्रीडतु क्रीडतु तावद् भर्तृदारिका । निर्वर्त्यतां तावद् श्रयं कन्याभावरमणीयः कालः ।

पद्मावती—श्रय्ये ! किं दाणिं मं श्रोहसिदुं विश्र णिज्झाश्रसि ।

श्रार्ये ! किमिदानीं मामपहसितुमिव निध्यायसि ।

वासवदत्ता—णहि णहि । हला ! श्रधिश्रं श्रज्ज सोहसि । श्रभिदो विश्र दे श्रज्ज वरमुहं पेक्खामि ।

नहि नहि । हला ! श्रधिकमद्य शोभसे । श्रभित इव तेऽद्य वरमुखं पश्यामि ।

पद्मावती—श्रवेहि । मा दाणिं मं श्रोहस ।

श्रपेहि मेदानीं मामुपहस ।

वासवदत्ता—एसह्मि तु ह्लीश्रा भविस्सम्महासेणवहू !

एषास्मि तूष्णीका भविष्यन्महासेनवधु !

पद्मावती—को एसो महासेणो णाम ?

क एष महासेनो नाम ?

वासवदत्ता—अत्थि उज्जइणीश्रो राश्रा पज्जोदो णाम । तस्स बलपरिमाणणिव्वुत्तं णामहेश्रं महासेणो त्ति ।

श्रस्त्युज्जयिनीयो राजा प्रद्योतो नाम । तस्य बलपरिमाणनिर्वृत्तं नामधेयं महासेन इति ।

चेटी—भट्टिदारिश्रा तेण रञ्ञा सह सम्बन्धं णेच्छदि ।

भर्तृदारिका तेन राज्ञा सह सम्बन्धं नेच्छति ।

वासवदत्ता—श्रह केण खु दाणि श्रभिलसदि ।

श्रथ केन खल्विदानीमभिलषति ।

चेटी—श्रत्थि वच्छराश्रो उदश्रणो णाम । तस्स गुणानि भट्टिदारिश्रा श्रभिलसदि ।

श्रस्ति वत्सराज उदयनो नाम । तस्य गुणान् भर्तृदारिका श्रभिलषति ।

वासवदत्ता--[श्रात्मगतम्] श्रय्यउत्तं भत्तारं श्रभिलसदि । [प्रकाशम्] केण कारणेण ?

श्रार्यपुत्रं भर्त्तारमभिलषति । केन कारणेन ।

चेटी—साणुक्कोसो त्ति । —सानुक्रोश इति ?

परकीयौ श्रन्यदीयौ । इवेत्युत्प्रेक्ष्यते ।

क्रीडतु क्रीडतु पुनः पुनः खेलतु । नैति सुलभं श्वसुरकुल इति भावः ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

चेटी—खेलिए, खेलिए, राजकुमारी। बालपन के इस रमणीय समय को जी भर कर बर्तिए।

पद्मावती–आर्ये! क्या इस समय जैसे मेरी हँसी उड़ाने के लिए मेरी ओर देख रही हो!

वासवदत्ता—नहीं, नहीं। सखि! आज तुम अत्यन्त ही शोभित हो रही हो। आज मैं तो (तुम्हारे) चारों ओर से तुम्हारे वर-मुख-मण्डल (सुन्दर मुख-मण्डल, वर=पति के मुख-मण्डल) को ही देख रही हूँ!

पद्मावती—हट जाओ। इस समय मेरा उपहास मत करो।

वासवदत्ता—अच्छा महासेन की भावी पुत्रवधू! यह मैं चुप हो गई हूँ।

पद्मावती—यह महासेन कौन हैं?

वासवदत्ता—हैं उज्जयिनी के प्रद्योत नाम के एक राजा। सेना के महा-परिमाण से उनका नाम महासेना हुआ।

चेटी—राजकुमारी उस राजा के साथ सम्बन्ध करना नहीं चाहती हैं।

वासवदत्ता—तब फिर किस के साथ इस समय सम्बन्ध करना चाहती हैं?

चेटी—उदयन नाम के वत्सदेश के राजा हैं। उनके गुणों पर मुग्ध हुई राजकुमारी उन्हें चाहती हैं।

वासवदत्ता—[स्वगत] आर्यपुत्र को भर्ता बनाना चाहती हैं! [प्रकट] किस कारण से?

चेटी—सहृदय होने से।

निर्वर्त्यताम् स्वातन्त्र्येण उपयुज्यताम्। **कन्याभावरमणीयः** कन्याभावेन कुमारीत्वेन रमणीयः मनोहरः। **कालः** वयः। **निध्यायसि**—निर्वर्णयसि आलोकयसि। **वरमुखम्** सुचारुमुखम्, पक्षे—वरस्य पत्नीत्वेन त्वां वरयितुर्मुखमिति परिहासोक्तिः। **तूष्णीका** मौनधारिणी। **भविष्यन्महासेनवधु!** महासेनः प्रद्योतस्तस्य वधूः पुत्रवधूः, भविष्यन्ती भाविनी चासौ महासेनवधूः इति तत्सम्बुद्धौ हे भविष्यन्महासेनवधु! प्रथमाङ्कोक्तचेटीवाक्यमूलं पद्मावतीहृद्गतभावावगमार्थमिदं सपरिहासवचनम्। **बलपरिमाणनिर्वृत्तं** बलस्य सैन्यबलस्य परिमाणेन महापरिमाणेन निर्वृत्तम् सञ्जातम्। **महासेनः** महती सेना यस्य सः। **सम्बन्धं** पुत्रवधूरूपम्। **नेच्छति** नाभिलषति, महासेनापरनामधेयस्य प्रद्योतस्य। दारकेण सह परिणयो न रोचते भर्तृदारिकायै इत्यर्थः। **तस्य** उदयनस्य। **गुणान्** पत्नीं प्रति सदयत्वादीन्। **अभिलषति** कामयते। तद्गुणलुब्धा तमेव पतित्वेन कामयत इत्यर्थः। **सानुक्रोशः** अनुक्रोशो दया ['कृपा दयानुकम्पा स्यादनुक्रोशोऽपि' इत्यमरः], अनुक्रोशेन सह वर्तते इति सानुक्रोशः पत्नीं प्रति सकरुणः।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

वासवदत्ता—[आत्मगतम्] जाणामि जाणामि । अअं वि जणो एव्वं उम्मादितो ।

जानामि जानामि । अयमपि जन एवमुन्मादितः ।

चेटी—भट्टिदारिए ! जदि सो राआ विरूवो भवे ?

भर्तृदारिके ! यदि स राजा विरूपो भवेत् ?

वासवदत्ता—णहि णहि । दंसणीओ एव्व ।

नहि नहि । दर्शनीय एव ।

पद्मावती—अय्ये ! कहं तुवं जाणासि ?

आर्ये ! कथं त्वं जानासि ?

वासवदत्ता—[आत्मगतम्] अय्यउत्तपक्खवादेण अदिकन्दो समुदाआरो । किं दाणिं करिस्सं । होदु, दिट्ठं । [प्रकाशम्] हला ! एव्वं उज्जइणीओ जणो मन्तेदि ।

आर्यपुत्रपक्षपातेनातिक्रान्तः समुदाचारः । किमिदानीं करिष्यामि ! भवतु, दृष्टम् । हला ! एवमुज्जयिनीयो जनो मन्त्रयते ।

पद्मावती—जुज्जइ । ण खु एसो उज्जइणीदुल्लहो । सव्वजणमणोभिरामं खु सोभग्गं णाम ।

युज्यते । न खल्वेष उज्जयिनीदुर्लभः । सर्वजनमनोभिरामं खलु सौभाग्यं नाम ।

[ततः प्रविशति धात्री]

धात्री—जेदु भट्टिदारिआ । भट्टिदारिए ! दिण्णासि ।

जयतु भर्तृदारिका ! भर्तृदारिके । दत्तासि ।

वासवदत्ता—अय्ये ! कस्स ।

आर्ये ! कस्मै ।

धात्री—वच्छराअस्स उदअणस्स ।

वत्सराजायोदयनाय ।

वासवदत्ता—अह कुसली सो राआ ? —अथ कुशली स राजा ?

धात्री—कुसली सो इह आअदो । तस्स भट्टिदारिआ पडिच्छिदा अ ।

कुशली स इहागतः । तस्य भर्तृदारिका प्रतीष्टा च ।

वासवदत्ता—अच्चाहिदं ! —अत्याहितम् !

धात्री—किं एत्थ अच्चाहिदं ?

किमत्र अत्याहितम् ?

वासवदत्ता—ण हु किंचि । तह णाम सन्तप्पिअ उदासीणो होदि त्ति ।

न खलु किञ्चित् । तथा नाम सन्तप्योदासीनो भवतीति ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

वासवदत्ता—[स्वगत] जानती हूँ, जानती हूँ। यह (दासी) जन भी इसी सहृदयता पर दीवाना बना था।

चेटी—राजकुमारि ! यदि वह राजा कुरूप हुआ तो ?

वासवदत्ता—[सहसा] नहीं, नहीं। वे बड़े दर्शनीय हैं।

पद्मावती—आर्ये ! तुम कैसे जानती हो ?

वासवदत्ता—[स्वगत] ओह ! मैंने आर्यपुत्र के स्नेहवश अज्ञातवास के उपयुक्त आचार का उल्लंघन कर दिया। अब, क्या करूँगी ! अच्छा, सोच लिया। [प्रकट] उज्जयिनी के लोग ऐसा कहते हैं।

पद्मावती—ठीक है। उज्जयिनी के लिए वे दुर्लभ नहीं हैं। सुन्दरता सब ही जनों के मनों को अच्छी लगती है।

[धात्री का प्रवेश]

धात्री—जय हो राजकुमारि ! राजकुमारि ! तुम दी गई हो।

वासवदत्ता—आर्ये ! किस के लिए ?

धात्री—वत्सराज उदयन के लिए।

वासवदत्ता—वे महाराज कुशलपूर्वक तो हैं न ?

धात्री—हाँ, कुशलपूर्वक हैं और यहीं पधारे हुए हैं। उन्होंने राजकुमारी का सम्बन्ध भी स्वीकार कर लिया है।

वासवदत्ता—कैसा अन्याय है !

धात्री—इसमें अन्याय क्या है ?

वासवदत्ता—कुछ नहीं। यही कि, उस तरह सन्ताप करके उदासीन हो रहे हैं (वासवदत्ता को इतनी जल्दी भूल गये)।

अयमपि जनः अहमपीत्यर्थः। **एवम्** अनेन प्रकारेण, सानुक्रोशत्वेनेत्यर्थः। **उन्मादितः** उन्मत्तीकृतः। **विरूपः** कुरूपः असुन्दरः। **नहि नही**ति पत्यौ विरूपत्वाभियोगशङ्कामसहमानायाः वासवदत्तायाः सहसोक्तिः। **दर्शनीयः** दर्शनयोग्यः सुरूपः। **आर्यपुत्रपक्षपातेन** भर्तृसौन्दर्यप्रशंसया। **समुदाचारः** अज्ञातवासानुकूल आचारः। **अतिक्रान्तः** उल्लंघितः। **उज्जयिनीयः** उज्जयिन्यां भवः। **युज्यते** भवितुमर्हति। **सर्वजनमनोभिरामं** सर्वविधस्यापि जनस्य हृदयाह्लादकम्। **सौभाग्यम्** सौन्दर्यं चारुता। **दत्तासि** वराय वाचा दत्ताऽसि। तव विवाहसम्बन्धो निर्णीत इत्यर्थः। **कुशली** क्षेमयुक्तः। **प्रतीष्टा** स्वीकृता। **अत्याहितमि**ति हृदयक्षोभजनितः वाग्रूपोऽनुतापः। तत्तु अनर्थापातः, महदनिष्टम्, विपत्पातः, अन्याय्यम्, इत्याद्युन्नेयम्। **तथा नाम सन्तप्य** यथा ब्रह्मचारिणा निगदितमस्माभिः श्रुतं तथा प्रमीतपत्नीशोकपर्याकुलो भूत्वा। **उदासीनो भवति** नवपत्नीपरिग्रहेण वासवदत्तायां स्नेहशून्यतया च औदासीन्यमवलम्बते इत्यर्थः।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

धात्री—अय्ये ! आअमप्पहाणाणि सुलहपय्यवत्थाणाणि महापुरुसहिअआणि होन्ति ।

आर्ये ! आगमप्रधानानि सुलभपर्यवस्थानानि महापुरुषहृदयानि भवन्ति ।

वासवदत्ता—अय्ये ! सअं एव्व तेण वरिदा ?

आर्ये ! स्वयमेव तेन वारिता ?

धात्री—णहि णहि । अण्णप्पओअणेण इह आअदस्स अभिजणविञ्ञाणवओरूवं पेक्खिअ सअं एव्व महाराएण दिण्णा ।

नहि नहि । अन्यप्रयोजनेनेहागतस्य अभिजनविज्ञानवयोरूपं दृष्ट्वा स्वयमेव महाराजेन दत्ता ।

वासवदत्ता—[आत्मगतम्] एव्वं । अणवरद्धो दाणिं एत्थ अय्यउत्तो ।

एवम् । अनपराद्ध इदानीमत्रार्यपुत्रः ।

[प्रविश्यापरा]

चेटी—तुवरदु तुवरदु दाव अय्या । अज्ज एव्व किल सोभणं णक्खत्तं । अज्ज एव्व कोदुअमङ्गलं कादव्वं त्ति अह्माणं भट्टिणी भणादि ।

त्वरतां त्वरतां तावदार्या । अद्यैव किल शोभनं नक्षत्रम् । अद्यैव कौतुकमङ्गलं कर्तव्यमित्यस्माकं भट्टिनी भणति ।

वासवदत्ता—[आत्मगतम्] जह जह तुवरदि, तह तह अन्धीकरेदि मे हिअअं ।

यथा यथा त्वरते, तथान्धीकरोति मे हृदयम् ।

धात्री—एदु एदु भट्टिदारिआ ।

एतु एतु भर्तृदारिका ।

[निष्क्रान्ताः सर्वे]

इति द्वितीयोऽङ्कः ।

आगमप्रधानानि आगमः शास्त्रं शास्त्रोपदेशः प्रधानं येषां तानि । **सुलभपर्यवस्थानानि** सुलभं पर्यवस्थानं विकारपरिहारेण विवेकलाभेन च प्रकृतावस्थानं येषां तानि । **महापुरुषहृदयानि** महापुरुषाणां हृदयानि चेतांसि । विचित्रचरिता हि महान्त इति भावः । 'वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि । लोकोत्तराणां चेतांसि को नु विज्ञातुमर्हति ॥' इति स्फुटम् । **वरिता** वृता पत्नीत्वेन कामिता । **अभिजनेति**—**अभिजनः** कुलम्, ['सन्ततिर्गोत्रजननकुलान्यभिजनान्वयौ' इत्यमरः], **विज्ञानम्** शिल्पकौशलं शास्त्रपटुता च ['विज्ञानं शिल्पशास्त्रयोः' इत्यमरः], वयः [illegible], [illegible]म्, एतेषां समाहारः अभि-

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

धात्री—आर्ये ! महापुरुषों के हृदय शास्त्रों के ज्ञान के प्रभाव से अनायास ही प्रकृतिस्थ हो जाते हैं।

वासवदत्ता—आर्ये ! क्या उन्होंने स्वयं वरण की है ?

धात्री—नहीं, नहीं। वे यहां किसी अन्य प्रयोजन से आये थे। उनका उच्च-कुल, विशिष्ठ ज्ञान, तरुण वय और रम्य रूप देखकर स्वयं ही महाराज ने दे दी।

वासवदत्ता—[स्वगत] ऐसा ! तब तो इसमें आर्यपुत्र निरपराध हैं।

[दूसरी चेटी का प्रवेश]

चेटी—आर्ये ! जल्दी चलिए, जल्दी चलिए। आज ही शुभ नक्षत्र है। हमारी महारानी कहती हैं कि आज ही कौतुक-मंगलाचार करना चाहिए।

वासवदत्ता—[स्वगत] जैसे-जैसे (महारानी) शीघ्रता कर रही है, वैसे-वैसे मेरे हृदय को अन्धकारमय बना रही है।

धात्री—आओ, आओ, राजकुमारी।

[सब का प्रस्थान]

दूसरा अङ्क समाप्त।

जनविज्ञानवयोरूपम्, एतत् सर्वं, **दृष्ट्वा** पर्यालोच्य। 'कुलं च शीलं च सनाथता च विद्या च वित्तं च वपुर्वयश्च' इत्युक्तिमनुरुध्येति भावः। **शोभनम्** शुभम्। **नक्षत्रम्** उत्तराफाल्गुनी-हस्त-चित्रा-उत्तराषाढा-श्रवण-धनिष्ठा-उत्तरा-भाद्रपदा-रेवती-अश्विनी-स्वाति-रोहिणी-मृगशिरसामन्यतमद् विवाह-नक्षत्रं तारा। विवाहस्य सद्दिवसकर्तव्यता यथोक्ता पारस्करगृह्ये —'पुण्याहे कुमार्याः पाणिं गृह्णीयात्। त्रिपु त्रिपूत्तरादिपु। स्वातौ मृगशिरसि रोहिण्यां वा इति। नक्षत्र-शब्दः सत्तिथिवारयोगादीनामप्युपलक्षकः। **कौतुकमङ्गलम्** कौतुकं कङ्कणापर-नामकं विवाहसूत्रम्, तस्य मङ्गलं माङ्गलिकाचारः ['कौतुकं त्वभिलाषे स्यादुत्सवे नर्महर्षयोः। विवाहसूत्रगीतादिभोगयोरपि न द्वयोः॥' इति मेदिनी], तच्च दूर्वा-कुरहरिद्रादियुक्तमाचाराद् विरच्यते विवाहेषु [यथोक्तं मात्स्ये—'दूर्वा यवांकुराश्चैव वालकं चूतपल्लवाः। हरिद्राद्वय-सिद्धार्थशिखिपत्रोरगत्वचः॥ कङ्कणौषधयश्चैताः कौतुकाख्या नव स्मृताः॥' इति]।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

अथ तृतीयोऽङ्कः ।

[ततः प्रविशति विचिन्तयन्ती वासवदत्ता]

वासवदत्ता—विवाहामोदसंकुले अन्तेउरचउस्साले परित्तजिअ पदुमावदि इह आअदह्मि पमदवणं । जाव दाणिं भाअधेअणिव्वुत्तं दुःखं विणोदेमि । [परिक्रम्य] अहो ! अच्चाहिदं । अय्यउत्तो वि णाम परकेरओ संवुत्तो । जाव उवविशामि । [उपविश्य] धञ्ञा खु चक्कवाअवहू, जा विरहिदा ण जीवइ । ण खु अहं पाणाणि परित्तजामि । अय्यउत्तं पेक्खामि त्ति एदिणा मणोरहेण जीवामि मन्दभाआ ।

विवाहामोदसंकुले अन्तःपुरचतुःशाले परित्यज्य पद्मावतीमिहागतास्मि प्रमदवनम् । यावदिदानीं भागधेयनिर्वृत्तं दुःखं विनोदयामि । अहो ! अत्याहितम् । आर्यपुत्रोऽपि नाम परकीयः संवृत्तः । यावद् उपविशामि । धन्या खलु चक्रवाकवधूः, या विरहिता न जीवति । न खल्वहं प्राणान् परित्यजामि । आर्यपुत्रं पश्यामीत्येतेन मनोरथेन जीवामि मन्दभागा ।

[ततः प्रविशति पुष्पाणि गृहीत्वा चेटी]

चेटी—कहिं णु खु गदा अय्या आवन्तिआ ? [परिक्रम्यावलोक्य] अम्मो ! इअं चिन्तासुञ्ञहिअआ णीहारपडिहदचन्दलेहा विअ अमण्डिदभद्दअं वेसं धारअन्दी पिअङ्गुसिलापट्टए उवविट्ठा । जाव उवसप्पामि । [उपसृत्य] अय्ये आवन्तिए ! को कालो, तुमं अण्णेसामि ।

क्व नु खलु गता आर्यावन्तिका ? अम्मो ! इयं चिन्ताशून्यहृदया नीहारप्रतिहतचन्द्रलेखेवामण्डितभद्रकं वेषं धारयन्ती प्रियङ्गुशिलापट्टके उपविष्टा । यावदुपसर्पामि । आर्ये आवन्तिके ! कः कालः, त्वामन्विष्यामि ।

अथ द्वितीयाङ्कोपक्षिप्तपद्मावतीपरिणयमङ्गलम्, विषण्णाया वासवदत्तायाः स्वमनो विनोदयितुं छन्नं प्रमदवनगमनम्, वासवदत्तामन्विष्यन्त्याः सख्या अपि प्रमदवनं गत्वा तत्र तामुपलभ्य तस्यै कौतुकमालागुम्फनाय राजमहिषीसन्देशदानम्, तत्रोभयोः सरससंवादः, विमनायमानाया अपि वासवदत्तायाः स्वकराभ्यामेव पद्मावत्यै विविधौषधयुक्तकौतुकमालां विरच्य सखीकरेण प्रेषणमित्याद्यर्थगर्भं तृतीयाङ्कमारभमाणस्तत्रभवान् भासः पूर्वं द्वितीयाङ्कोपक्षिप्तचिन्तापरवशाया वासवदत्तायाः प्रवेशं तावदाह—"**ततः प्रविशती**"ति—**विचिन्तयन्ती** चिन्तां कुर्वाणा ।

विवाहामोदसङ्कुले विवाहस्य पद्मावत्या उदयनेन सह क्रियमाणस्य परिणयस्य आमोदः [illegible] कार्यव्यापृतनानाजन-

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

तीसरा अङ्क

[चिन्ता करती हुई वासवदत्ता का प्रवेश]

वासवदत्ता—विवाह के आमोद से जनाकीर्ण हुए, अन्तःपुर के आंगन में पद्मावती को छोड़कर मैं यहां प्रमदवन में चली आई हूँ। तो अब कुछ देर दुर्भाग्यवश प्राप्त हुए दुःख को दूर करूँ। [इधर उधर घूमकर] ओह ! कैसा अन्धेर है। आर्यपुत्र भी पराये हो गये। थोड़ी देर यहीं बैठूं। [बैठकर] धन्य है चक्रवाकवधू, जो पति-विरह होने पर नहीं जीती। पर मैं अभी प्राणों को तजूंगी। कदाचित् आर्यपुत्र के दर्शन कर पाऊँ, इस लालसा से मैं अभागिनी जी रही हूँ।

[फूलों को लिए हुए चेटी का प्रवेश]

चेटी—कहां गई आर्या आवन्तिका ? [घूमकर और देखकर] ओह ! ये तो चिन्ता में डूबने से शून्य-हृदय हुई प्रियंगु-लता के नीचे शिलापीठ पर बैठी हुई हैं। बिना शृङ्गार किये ही सहज सुन्दर वेष को धारण किये हुई, कुहरे से छाई हुई चन्द्रलेखा के समान दिखाई दे रही हैं। तो मैं इनके पास चलूं। [पास जाकर] आर्ये आवन्तिके ! कितना समय से तुम्हें खोज रही हूं।

संकीर्णे। **अन्तःपुरचतुःशाले** अन्तःपुरं राजयोषिद्भवनम्, तत्र यत् चतुःशालम् अन्योन्याभिमुखीभिश्चतसृभिः शालाभिः युक्तं स्थानं चत्वरादिकं तस्मिन्। **प्रमदवनम्** प्रमदानां राजयोषितां वनं क्रीडोद्यानम् ['स्यादेतदेव प्रमदवनमन्तःपुरोचितम्' इत्यमरः। प्रमदवनमित्यत्र 'ङ्यापोः—' इत्यनेन ह्रस्वः]। **भागधेयनिर्वृत्तं** दुर्दैवप्राप्तम्। **विनोदयामि** अपाकरोमि उपशमयामि। **अत्याहितमि**ति विवेचितं प्राक् (पृ० ३८)। **विरहिता** प्रियवियोगं प्राप्ता। **आर्यपुत्रम्** भर्तारम्। आर्यपुत्र इति पतिं प्रति पत्न्याः व्याहरणसमुदाचारो नाट्ये। **पश्यामि** अवलोकयामि। **एतेन** आर्यपुत्रदर्शनरूपेण। **मनोरथेन** अभिलाषेण आशयेति यावत्। **जीवामि** प्राणधारणं करोमि। चिरान्न विलोकितो मया भर्ता, जीवन्ती कदाचिदिह तद्दर्शनं लभे इत्यनया आशयैवाहमधन्या जीवामि। 'जीवन्नरो भद्रशतानि पश्येत्' इति, 'आशाबन्धः कुसुमसदृशं प्रायशो ह्यङ्गनानां सद्यःपाति प्रणयि हृदयं विप्रयोगे रुणद्धि' इति भावः। **अम्मो** इति आश्चर्यद्योतको निपातः। **चिन्ताशून्यहृदया** चिन्तया शून्यं स्वव्यापारपराङ्मुखं हृदयं चित्तं यस्याः सा परितश्चिन्तयावृता, अत एव **नीहारप्रतिहतचन्द्रलेखेव** नीहारेण अवश्यायेन कुहेडिकाजालेन ('कोहरा' इति भाषायाम्) प्रतिहता छन्नप्रभा चन्द्रलेखेव चन्द्रकलेव। चिन्ताच्छन्नाया वासवदत्तायाः कुहेडिकाजालच्छन्नच्छायया चन्द्रलेखयासममौपम्यम्। **अमण्डितभद्रकम्** अमण्डितः अनलङ्कृतश्चासौ भद्रकः सुन्दरस्तम्। **प्रियङ्गुशिलापट्टके** गन्धफलीतरोरधः

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

वासवदत्ता—किण्णिमित्तं ?

किं निमित्तम् ?

चेटी—अह्माअं भट्टिणी भणादि—महाकुलप्पसूदा सिणिद्धा णिउणा त्ति । इमं दाव कोदुअमालिअं गुह्मदु अय्या ।

अस्माकं भट्टिनी भणति—महाकुलप्रसूता स्निग्धा निपुणेति । इमां तावत् कौतुकमालिकां गुम्फत्वार्या ।

वासवदत्ता—अह कस्स किल गुह्मिदव्वं ?

अथ कस्मै किल गुम्फितव्यम् ?

चेटी—अह्माअं भट्टिदारिआए ।

अस्माकं भर्तृदारिकायै ।

वासवदत्ता—[आत्मगतम्] एदं पि मए कत्तव्वं आसी । अहो ! अकरुणा खु इस्सरा ।

एतदपि मया कर्तव्यमासीत् । अहो ! अकरुणाः खल्वीश्वराः ।

चेटी—अय्ये ! मा दाणिं अञ्ञं चिन्तिअ । एसो जामादुओ मणिभूमीए ण्हाअदि । सिग्घं दाव गुह्मदु अय्या ।

आर्ये ! मेदानीमन्यच्चिन्तयित्वा । एष जामाता मणिभूम्यां स्नायति । शीघ्रं तावद् गुम्फत्वार्या ।

वासवदत्ता—[आत्मगतम्] ण सक्कुणोमि अण्णं चिन्तेदुं । [प्रकाशम्] हला ! किं दिट्ठो जामादुओ ?

न शक्नोम्यन्यच्चिन्तयितुम् । हला ! किं दृष्टो जामाता ?

चेटी—आम, दिट्ठो भट्टिदारिआए सिणेहेण अह्माअं कोदूहलेण अ ।

आम्, दृष्टो भर्तृदारिकायाः स्नेहेनास्माकं कौतूहलेन च ।

वासवदत्ता—कीदिसो जामादुओ ?

कीदृशो जामाता ?

चेटी—अय्ये ! भणामि दाव, ण इरिसो दिट्ठपुरुवो ।

आर्ये ! भणामि तावद्, नेदृशो दृष्टपूर्वः ।

वासवदत्ता—हला ! भणाहि भणाहि, किं दंसणीओ ?

हला ! भण भण, किं दर्शनीयः ?

चेटी—सक्कं भणिदुं सरचावहीणो कामदेवो त्ति ।

शक्यं भणितुं शरचापहीनः कामदेव इति ।

वासवदत्ता—होदु एत्तअं । —भवत्वेतावत् ।

चेटी—किण्णिमित्त वारेसि ?

किन्निमित्तं वारयसि ?

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

वासवदत्ता—किस लिए ?

चेटी—हमारी महारानी कहती हैं कि उच्च-कुलोत्पन्ना, स्नेह-शीला और शिल्प-कला-कुशला होने से आर्या इस कौतुक-माला को गूँथ दें।

वासवदत्ता—किस के लिए गूँथनी है ?

चेटी—हमारी राजकुमारी के लिए।

वासवदत्ता—[स्वगत] हाय ! यह भी मुझे करना था। ओह ! ईश्वर बड़े निर्दयी हैं।

चेटी—आर्ये ! इस समय अन्य चिन्ता छोड़ दें। यह जामातामणिभूमि में नहा रहा है। बस, आर्या जल्दी गूँथ दें।

वासवदत्ता—[स्वगत] चिन्तन भी नहीं कर सकती हूँ ! [प्रकट] हला ! क्या जामाता देखा है ?

चेटी—हां, राजकुमारी के स्नेह और हमारे कौतूहल के कारण देखा है।

वासवदत्ता—कैसा है जामाता ?

चेटी—आर्ये ! कहती हूँ, ऐसा पहले कभी नहीं देखा।

वासवदत्ता—सखी ! बता, बता। क्या अति सुन्दर है ?

चेटी—कहा जाता है कि धनुष-बाण-रहित साक्षात् कामदेव है।

वासवदत्ता—बस, इतना ही।

चेटी—किस कारण से रोक रही हो ?

शिलापीठे। ['प्रियङ्गुः फलिनी फली। विष्वक्सेना गन्धफली' इत्यमरः]। **उपविष्टा** स्थिता आसीना। **कः कालः** कियान् समयः, व्यतीत इति शेषः।

भट्टिनी राजयोषित् दर्शकपत्नीत्यर्थः। **महाकुलप्रसूते**त्यादिप्रशंसापरवचनं तस्याः झटिति मालानिष्पादनाभिमुखीकरणार्थम्। **अकरुणाः** निर्दयाः। **ईश्वराः** प्रभवो देवाः। **मेदानीमि**ति—**इदानीम्** अस्मिन् विवाहत्वराकाले। **अन्यत्** कार्यान्तरं विषयान्तरचिन्तनादिकम्। **मा चिन्तयित्वा** न चिन्तनीयमित्यर्थः। **मणिभूम्यां** मणिनिर्मितस्थण्डिले। **न दृष्टपूर्वः** पूर्वं कदापि नावलोकित इत्यर्थः। **शरचापहीनः** शरचापाभ्यां स्वपुष्पमयबाणधनुर्भ्यां हीनः रहितः। **भवतु** तिष्ठतु। **एतावद्** इयन्मात्रम्। एतावदेव पर्याप्तं तद्वर्णनम्, मास्त्वधिकमिति भावः।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

वासवदत्ता—अजुत्त परपुरुससङ्कित्तणं सोदुं ।

अयुक्तं परपुरुषसङ्कीर्त्तनं श्रोतुम् ।

चेटी—तेण हि गुह्मदु अय्या सिग्घं ।

तेन हि गुम्फत्वार्या शीघ्रम् ।

वासवदत्ता—इअं गुह्माामि । आणेहि दाव ।

इयं गुम्फामि । आनय तावत् ।

चेटी—गृह्लदु अय्या । —गृह्णात्वार्या ।

वासवदत्ता—[वर्जयित्वा विलोक्य] इमं दाव ओसहं किं णाम ?

इदं तावदौषधं किं नाम ?

चेटी—अविहवाकरणं णाम ।

अविधवाकरणं नाम ।

वासवदत्ता—[आत्मगतम्] इदं बहुसो गुह्मिदव्वं मम अ पदुमावदीए अ । [प्रकाशम्] इदं दाव ओसहं किं णाम ?

इदं बहुशो गुम्फितव्यं मम च पद्मावत्याश्च । इदं तावदौषधं किं नाम ?

चेटी—सवत्तिमद्दणं णाम ।

सपत्नीमर्दनं नाम ।

वासवदत्ता—इदं ण गुह्मिदव्वं ।

इदं न गुम्फितव्यम् ।

चेटी—कीस ? —कस्मात् ?

वासवदत्ता—उवरदा तस्स अय्या, तं णिप्पओअणं त्ति ।

उपरता तस्य भार्या; तन्निष्प्रयोजनमिति ।

[प्रविश्यापरा]

चेटी—तुवरदु तुवरदु अय्या । एसो जामादुओ अविहवाहि अब्भन्तरच-उस्सालं पवेसीअदि ।

त्वरतां त्वरतामार्या । एष जामाता अविधवाभिरभ्यन्तरचतुःशालं प्रवेश्यते ।

वासवदत्ता—अइ ! वदामि, गह्ण एदं ।

अयि ! वदामि, गृहाणैतत् ।

वर्जयित्वा वर्जनस्येह निस्सारणमर्थः, तेन पुष्पभाजन्याः पुष्पाणि बहिर्निस्सार्येत्यर्थः । **विलोक्य** पुष्पाणि पुष्पैः समं गुम्फनीयेष्वन्यद् रक्षार्थमौषधं च दृष्ट्वा । **अविधवाकरणम्** अविधवा सौभाग्यवती क्रियते अनेन इति अविधवाकरणम् । **बहुशः** [illegible] । **गुम्फितव्यम्** [illegible] । **मम च पद्मावत्याश्च**

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

वासवदत्ता—पर-पुरुष का बहुत वर्णन सुनना ठीक नहीं।

चेटी—तो आर्या जल्दी गूंथ दें।

वासवदत्ता—यह गूंथती हूँ। ला, इधर।

चेटी—लीजिए आर्या।

वासवदत्ता—[फुलकंडी से फूल निकालकर और देखकर] इस औषधि का क्या नाम है?

चेटी—सदा-सोहागिन।

वासवदत्ता—[स्वगत] तब तो मेरे और पद्मावती के (सदा-सोहागिन के) लिए इसे अधिक मात्रा में गूंथना चाहिए। [प्रकट] और इस औषधि का क्या नाम है?

चेटी—सौत-नाशिनी।

वासवदत्ता—इसे न गूंथना चाहिए।

चेटी—क्यों?

वासवदत्ता—उसकी पहली स्त्री मर गई है। इसलिए (सौत के न होने से) इसका गूंथना व्यर्थ ही है।

[दूसरी चेटी का प्रवेश]

चेटी—आर्या शीघ्रता करें, शीघ्रता। यह जामाता सोहागिनियों से भीतरी आंगन में ले जाया जा रहा है।

वासवदत्ता—अरी! कहती हूँ, ये लो।

उभयोरप्यवैधव्यायेत्यर्थः। पद्मावत्या अनेन धारितेन अवैधव्ये स्वतस्तावन्ममाप्यवैधव्यमतो बहुशः गुम्फितव्यम्। 'अधिकस्याधिकं फलम्' इतीदमत्राकूतम्। इह मङ्गलावसरे 'अविधवा' इत्यत्र 'विधवा' शब्दः श्रवणमात्रेणामङ्गलसूचनया रसभङ्गमापादयन् कवेः प्रयोगानौचित्यमावेदयति। **सपत्नीमर्दनम्** सपत्नी मर्द्यतेऽनेन धारितेनेति तथा। **इदं न गुम्फनीयम्** सपत्नीमर्दनफलमौषधं न गुम्फितव्यम्। पद्मावत्याः सपत्नीत्वेन आत्मन एव मर्दनं स्यादिति पिहिता भीतिरत्रेति विदन्तु सुधियः। **कस्मात्** कस्माद्धेतोः, इदं न गुम्फितव्यमिति पूर्वतोऽनुषज्यते। जिज्ञासितमर्थं परिपृच्छन्त्याः समाधानार्थमुपन्यस्यति—**उपरतेति**—**तस्य** उदयनस्य **भार्या** पूर्वपत्नी वासवदत्ता **उपरता** मृता। **तत्** तस्मात् कारणाद् **निष्प्रयोजनम्** प्रयोजनरहितम्। पद्मावत्याः सपत्न्युपरमे औषधस्य मर्दितव्यविषयस्यैव तावदलाभ इति भावः। **जामाता** दुहितुः पतिः। जामातेति वचनेन वरयितरि तस्याः वात्सल्या-

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

चेटी—सोहणं । अय्ये ! गच्छामि दाव अहं ।

शोभनम् । आर्ये ! गच्छामि तावदहम् ।

[उभे निष्क्रान्ते]

वासवदत्ता—गदा एसा । अहो ! अच्चाहिदं । अय्यउत्तो वि णाम परकेरओ संवुत्तो । अविदा ! सय्याए मम दुक्खं विणोदेमि । जदि णिद्दं लभामि ।

गतैषा । अहो ! अत्याहितम् । आर्यपुत्रोऽपि नाम परकीयः संवृत्तः । अविदा ! शय्यायां मम दुःखं विनोदयामि, यदि निद्रां लभे ।

[निष्क्रान्ता]

इति तृतीयोऽङ्कः ।

तिशयः, वयसा ज्यायस्त्वम्, दर्शककुले गौरवातिरेकप्राप्तिश्च व्यज्यते । **अविधवाभिः** जीवद्भर्तृकाभिः सौभाग्यवतीभिः स्त्रीभिः । **अभ्यन्तरचतुःशालम्** अभ्यन्तरे अन्तःपुरमध्ये अन्योन्यमभिमुखीभिः चतसृभिः शालाभिर्युक्तं गृहम् । **प्रवेश्यते** प्रविशन्तं प्रवेशयन्तीत्यर्थः । **अयि ! वदामि** अयि ! वच्मि । **एतत्** इदं गुम्फितं कौतुकमाल्यमित्यर्थः । **गृहाण** गृहीत्वा नयेत्यर्थः । कृतगुम्फनमिदं तिष्ठति कौतुकमाल्यम् । मया गुम्फने न विलम्बितं ग्रहणे त्वमेव विलम्बसे इति भावः ।

शोभनम् अतिसुन्दरम्, एतत्कौतुकमाल्यमित्यर्थः । यद्वा—अयि ! वदामि, गृहाणैतदिति यद् ग्रहणाज्ञाप्रदानम्, तत् शोभनं मान्यमित्यर्थः । **एषा** चेटी । **गता** याता । यद्वा—एषा मद्रचिता कौतुकमाला गता पद्मावतीहस्तं प्राप्ता । **अविदा** इति विषादे । [illegible] ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

चेटी—बहुत सुन्दर। आर्ये! तो मैं चलती हूँ।

[दोनों का प्रस्थान]

वासवदत्ता—यह तो गई। ओह! कैसा अन्धेर है। आर्यपुत्र भी पराये हो गये अफ़सोस! शय्या पर लेट कर दुःख हलका करूँगी, यदि नींद आ जाय।

[प्रस्थान]

तीसरा अङ्क समाप्त।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

अथ चतुर्थोऽङ्कः

[ततः प्रविशति विदूषकः]

विदूषकः—[सहर्षम्] भो दिट्ठिआ तत्तहोदो वच्छराअस्स अभिप्पेदविवाहमङ्गलरमणिज्जो कालो दिट्ठो। भो! को णाम एदं जाणादि—तादिसे वयं अणत्थसलिलावत्ते पक्खित्ता उण उम्मज्जिस्सामो त्ति। इदाणिं पासादेसु वसीअदि, अन्देउरदिग्घिआसु ह्लाईअदि, पकिदिमउरसुउमाराणि मोदअखज्जआणि खज्जीअन्ति त्ति अणच्छरसंवासो उत्तरकुरुवासो मए अणुभवीअदि। एक्को खु महन्तो दोसो, मम आहारो सुट्ठु ण परिणमदि। सुप्पच्छदणाए सय्याए णिद्दं ण लभामि, जह वादसोणिदं अभिदो विअ वत्तदि त्ति पेक्खामि। भो! सुहं णामअपरिभूदं अक्कल्लवत्तं च।

भोः! दिष्ट्या तत्रभवतो वत्सराजस्य अभिप्रेतविवाहमङ्गलरमणीयः कालो दृष्टः। भोः! को नामैतज्जानाति—तादृशे वयमनर्थसलिलावर्ते प्रक्षिप्ताः पुनरुन्मङ्क्ष्याम इति। इदानीं प्रासादेषूष्यते, अन्तःपुरदीर्घिकासु स्नायते, प्रकृतिमधुरसुकुमाराणि मोदकखाद्यानि खाद्यन्त इत्यनप्सरस्संवास उत्तरकुरुवासो मयानुभूयते। एकः खलु महान् दोषः, ममाहारः सुष्ठु न परिणमति। सुप्रच्छन्नायां शय्यायां निद्रां न लभे, यथा वातशोणितमभित इव वर्तत इति पश्यामि। भोः! सुखं नामयपरिभूतमकल्यवर्तं च।

[ततः प्रविशति चेटी]

चेटी—कहिं णु खु गदो अय्यवसन्तओ। [परिक्रम्यावलोक्य] अह्मो! एसो अय्यवसन्तओ। [उपगम्य] अय्य वसन्तअ! को कालो, तुमं अण्णेसामि।

कुत्र नु खलु गत आर्यवसन्तकः। अहो! एष आर्यवसन्तकः। आर्य वसन्तक! कः कालः, त्वामन्विष्यामि।

विदूषकः—[दृष्ट्वा] किंणिमित्तं भद्दे! मं अण्णेससि।

किन्निमित्तं भद्रे! मामन्विष्यसि।

अथ विवाहानन्तरं पद्मावतीवासवदत्तोदयनप्रेमसुधासारसुन्दरं चतुर्थाङ्कं प्रयोजयिष्यन् प्रवेशकमाश्रित्य विदूषकप्रवेशमाह—**ततः प्रविशति विदूषक** इति। **विदूषकः** नायकवयस्यः [illegible] कारी विदूषकः' इति।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

चौथा अङ्क

[विदूषक का प्रवेश]

विदूषक—[सहर्ष] अहा ! सौभाग्य से माननीय वत्सराज के अभीष्ट विवाह के मङ्गलोत्सव से सुखमय समय देखने को मिला। ओह ! यह कौन जानता था कि उस प्रकार के अनर्थ-सलिल के भंवर में पड़े हुए हम फिर उबर सकेंगे ? इस समय राजमहलों में रहना, अन्तःपुर की बावड़ियों में नहाना, स्वभावतः मधुर और सुकोमल लड्डू आदि पर हाथ फेरना—बस, देव-लोक का सभी आनन्द लूट रहा हूँ। कमी है तो केवल अप्सराओं की। पर एक बड़ा दोष हो गया है—मेरा खाना अच्छी तरह नहीं पचता। सुकोमल सेज पर भी नींद नहीं आती। वात-रक्त रोग सारे शरीर में व्याप्त हो गया है—ऐसा अनुभव कर रहा हूँ। ओह ! जब रोग घेरे हुए हो और (थोड़ा-सा) कलेवा खा लेने में बदहज़मी का डर बना रहे, तब सुख कहां !

[चेटी का प्रवेश]

चेटी—आर्य वसन्तक कहां गये ? [घूमकर और देखकर] अरे ! आर्य वसन्तक तो ये हैं। [पास जाकर] आर्य वसन्तक ! कितने समय से तुम्हें ढूँढ रही हूँ।

विदूषक—[देखकर] भद्रे ! किसलिए मुझे ढूंढ रही हो ?

अभिप्रेतेति—अभिप्रेतम् अभीष्टं यद् विवाहमङ्गलम्, तेन रमणीयः हर्षवर्द्धनः। **अनर्थसलिलावर्ते** अनर्थः विपज्जालम्, तद्रूपो यः सलिलानाम् अम्भसाम् आवर्तः भ्रमस्तस्मिन्। **प्रक्षिप्ताः** प्रकर्षेण क्षिप्ताः दैवेनेत्यर्थः। **उन्मङ्क्ष्यामः** अनर्थसलिलावर्तात् कृतोद्धारा भविष्यामः। **प्रासादेषु** सौधेषु। **अन्तःपुरदीर्घिकासु** अन्तःपुरसम्बन्धिवापीषु। **प्रकृतिमधुरसुकुमाराणि** प्रकृत्या निसर्गतः मधुराणि मधुरास्वादवन्ति च तानि सुकुमाराणि अतिकोमलानि। **मोदकखाद्यानि** लड्डुकरूपाः खाद्यपदार्थाः। **अनप्सरस्संवासः** नास्ति अप्सरसां रम्भादीनां स्ववेश्यानां संवासः सहवासः साहचर्यं यस्मिंस्तादृशः। **उत्तरकुरुवासः** उत्तरकुरवो नाम सुमेरुपर्वतप्रान्तगता देवभूमयस्तेषां वासः निवासः सुरलोकसौख्यमित्यर्थः। **दोषः** विकारः कष्टम्। **सुष्ठु** सम्यक्। **न परिणमति** नैव परिपचति। **सुप्रच्छदनायां** सुकोमलास्तरणोपेतायाम्। **शय्यायां** पर्यङ्कादिशयनीये। **वातशोणितम्** वातरक्ताख्यो रोगः। **अभितः** सर्वस्मिन् शरीरेऽभिव्याप्तम्। **पश्यामि** अनुभवामि। **सुखमिति**—**आमयपरिभूतं** रोगग्रस्तम्। **अकल्यवर्तं च** नास्ति कल्यस्य निरामयस्य वर्तः वर्तनम् अशनमित्यर्थः, यस्मिंस्तत् तथोक्तम् ['वर्तो निरामयः कल्य' इत्यमरः]। यद्वा—कल्ये प्रत्यूषे वर्तः अशनम् इति कल्यवर्तः

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

चेटी—अह्माणं भट्टिणी भणादि—अवि ह्लादो जामादुओ त्ति ।

अस्माकं भट्टिणी भणति अपि स्नातो जामातेति ।

विदूषकः—किंणिमित्तं भोदि ! पुच्छदि ।

किन्निमित्तं भवति ! पृच्छति ।

चेटी—किमण्णं । सुमणावण्णअं आणेमि त्ति ।

किमन्यत् । सुमनोवर्णकमानयामीति ।

विदूषकः—ह्लादो तत्तभवं । सव्वं आणेदु भोदी वज्जिअ भोअणं ।

स्नातस्तत्रभवान् । सर्वमानयतु भवती वर्जयित्वा भोजनम् ।

चेटी—किंणिमित्त वारेसि भोअणं ।

किन्निमित्तं वारयसि भोजनम् ।

विदूषकः—अधण्णस्स मम कोइलाणं अक्खिपरिवट्टो विअ कुक्खिपरिवट्टो संवुत्तो ।

अधन्यस्य मम कोकिलानाम् अक्षिपरिवर्त इव कुक्षिपरिवर्तः संवृत्तः ।

चेटी—ईदिसो एव्व होहि ।

ईदृश एव भव ।

विदूषकः—गच्छदु भोदी । जाव अहं वि तत्तहोदो सआसं गच्छामि ।

गच्छतु भवती । यावदहमपि तत्रभवतः सकाशं गच्छामि ।

[निष्क्रान्तौ]

प्रवेशकः

[ततः प्रविशति सपरिवारा पद्मावती आवन्तिकावेषधारिणी वासवदत्ता च]

चेटी—किंणिमित्तं भट्टिदारिआ पमदवणं आअदा ।

किन्निमित्तं भर्तृदारिका प्रमदवनमागता ।

पद्मावती—हला ! ताणि दाव सेहालिआगुह्मआणि पेक्खामि कुसुमिदाणि वा ण वेत्ति ।

हला ! ते तावच्छेफालिकागुल्मकाः पश्यामि कुसुमिता वा न वेति ।

चेटी—भट्टिदारिए ! ताणि कुसुमिदाणि णाम, पवालन्तरिदेहिं विअ मोत्तिआलम्बएहिं आइदाणि कुसुमेहिं ।

भर्तृदारिके ! ते कुसुमिता नाम, प्रवालान्तरितैरिव मौक्तिकलम्बकैराचिताः कुसुमैः ।

पद्मावती—हला ! जदि एव्वं, किं दाणिं विलम्बेसि ।

हला ! यद्येवम् , किमिदानीं विलम्बसे ।

प्रातराशः, नास्ति कल्यवर्तो यस्मिन् तत् तथोक्तम् । **सुखं न** सुखपदेन नैव वक्तुमर्हं भवतीत्यर्थः **किन्निमित्तम्** किमर्थम् , कं प्रयोजनमुद्दिश्य ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

चेटी—हमारी महारानी कहती हैं—क्या जामाता स्नान कर चुके हैं ?

विदूषक—श्रीमति ! वे किस लिए पूछती हैं ?

चेटी—और क्या होना है ? स्नान कर चुके हों तो फूल और अङ्गराग ले आऊं।

विदूषक—महाराज स्नान कर चुके हैं। परन्तु भोजन को छोड़कर श्रीमती और सब जो चाहें, ले आवें।

चेटी—किस कारण आप भोजन को रोक रहे हैं !

विदूषक—कोयलों के अक्षि-परिवर्तन (नेत्र-भ्रमण) की भांति मुझ अभागे को कुक्षि-परिवर्तन (पेट में गड़बड़) हो गया।

चेटी—ऐसे ही हो।

विदूषक—आप जाएं। मैं भी महाराज के पास जाता हूँ।

[दोनों का प्रस्थान]

प्रवेशक

[आवान्तिका वेषधारिणी वासवदत्ता के साथ सङ्गिनियों-समेत पद्मावती का प्रवेश]

चेटी—किस लिए राजकुमारी का प्रमदवन में आना हुआ ?

पद्मावती—सखि ! वे शेफालिका के गुच्छे फूले हैं या नहीं, यह देखने आई थी।

चेटी—राजकुमारि ! वे तो खूब फूले हुए हैं। खिले हुए फूलों से लदे हुए वे ऐसे मालूम देते हैं कि मानों (लाल-लाल) प्रवालों से पिरोये हुए मोतियों की (सफेद-सफेद) लड़ियां (झालरें) लटक रही हों।

पद्मावती—यदि ऐसा है तो फिर विलम्ब किस लिए कर रही हो ?

सुमनोवर्णकम् सुमनसः पुष्पाणि, वर्णकं विलेपनचन्दनादिकं च, एतेषां समाहारः सुमनोवर्णकम् ['विलेपने चन्दने च वर्णकं पुंनपुंसकम्।' इति रभसः]। **वर्जयित्वा** विहाय। **अधन्यस्य** हतभाग्यकस्य। **अक्षिपरिवर्तः** अक्ष्णां चक्षुषां परिवर्तः परिभ्रमणम्। **कुक्षिपरिवर्तः** कुक्षिविकारः उदरगुड़गुड़ायितम्। **ईदृश एव भवेति** विदूषकस्य औदरिकत्वेन परिहासः। हलेत्यादि—**हला** इति सखीं प्रति आमन्त्रणसमुदाचारोनाट्ये। ते प्रयत्नपरिरक्षिताः। **तावदिति** वाक्यालङ्कारे। **शेफालिकागुल्मकाः** शेफालिकालतायाः प्रतानाः। **कुसुमिताः** सञ्जातकुसुमाः पुष्पिताः **वा** अथवा **न** नैव कुसुमिताः, **इति, पश्यामि** गत्वा अवलोकयामि। **प्रवालान्तरितैः** विद्रुमव्यवहितैः **मौक्तिकलम्बकैरिव** मौक्तिकानां मुक्तानां लम्बकैः अधोलम्बमानाभिर्ललन्तिकाभिरिव। एतेन कुसुमसम्पदः प्रवालानामिव शोणिमा मौक्तिकानामिव श्वेतिमा च द्योतितः। **आचिताः** आच्छादिता भरिताः। अवचेयानि कुसुमानीति तात्पर्यम्।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

चेटी—तेरा हि इमस्सिं सिलावट्टए मुहुत्तग्रं उपविसदु भट्टिदारिग्रा। जाव ग्रहं वि कुसुमावचग्रं करेमि।

तेन ह्यस्मिन् शिलापट्टके मुहूर्तकमुपविशतु भर्तृदारिका। यावदहमपि कुसुमावचयं करोमि।

पद्मावती—ग्रय्ये! किं एत्थ उपविसामो।

ग्रार्ये! किमत्रोपविशावः।

वासवदत्ता—एव्वं होदु। —एवं भवतु।

[उभे उपविशतः]

चेटी—[तथा कृत्वा] पेक्खदु पेक्खदु भट्टिदारिग्रा ग्रद्धमरणशिलावट्टएहिं विअ सेहालिग्राकुसुमेहिं पूरिग्रं मे ग्रञ्जलिं।

पश्यतु पश्यतु भर्तृदारिका ग्रर्द्धमनःशिलापट्टकेरिव शेफालिकाकुसुमैः पूरितं मेऽञ्जलिम्।

पद्मावती—[दृष्ट्वा] ग्रहो! विइत्तदा कुसुमारगं। पेक्खदु पेक्खदु ग्रय्या।

ग्रहो! विचित्रता कुसुमानाम्। पश्यतु पश्यत्वार्या।

वासवदत्ता—ग्रहो! दस्सरगीग्रदा कुसुमारगं।

ग्रहो! दर्शनीयता कुसुमानाम्।

चेटी—भट्टिदारिए! किं भूयो ग्रवइरगुस्सं।

भर्तृदारिके! किं भूयोऽवचेष्यामि।

पद्मावती—हला! मा मा भूयो ग्रवइरिगग्र।

हला! मा मा भूयोऽवचित्य।

वासवदत्ता—हला! किंरिगमित्तं वारेसि।

हला! किन्निमित्तं वारयसि।

पद्मावती—ग्रय्यउत्तेरग इह आग्रच्छिग्र इमं कुसुमसमिद्धिं पेक्खिग्र सम्मारिगदा भवेग्रं।

ग्रार्यपुत्रेण इहागत्येमां कुसुमसमृद्धिं दृष्ट्वा सम्मानिता भवेयम्।

वासवदत्ता—हला! पिग्रो दे भत्ता।

हला! प्रियस्ते भर्ता।

पद्मावती—ग्रय्ये! रग ग्ररगामि, ग्रय्यउत्तेरग विरहिदा उक्कण्ठिदा होमि।

ग्रार्ये! न जानामि, ग्रार्यपुत्रेण विरहितोत्कण्ठिता भवामि।

वासवदत्ता—[ग्रात्मगतम्] दुक्खरं खु ग्रहं करेमि। इग्रं वि रगाम एव्वं मन्तेदि।

दुष्करं खल्वहं करोमि। इयमपि नामैवं मन्त्रयते।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

चेटी—तो राजकुमारी तनिक देर इसी शिलापीठ पर बैठें। मैं भी इतने में फूल चुन लूँ।

पद्मावती—[वासवदत्ता से] आर्ये! क्या यहीं पर बैठें?

वासवदत्ता—अच्छा।

[दोनों बैठती हैं]

चेटी—[फूल चुनकर] राजकुमारि! देखिए, देखिए! आधे आधे मैनशिल के बट्टों की तरह चमकते हुए इन शेफालिका के फूलों से मेरी अञ्जलि कैसे भर गई है।

पद्मावती—[देखकर] अहा! कैसे रंग-बिरंगे फूल हैं। आर्ये! देखिए, देखिए!

वासवदत्ता—अहा! सचमुच कैसे सुन्दर फूल हैं।

चेटी—राजकुमारि! क्या और चुन लाऊं?

पद्मावती—सखि! न, न। और नहीं चुनने।

वासवदत्ता—सखि! किसलिए रोकती हो?

पद्मावती—इसलिए कि आर्यपुत्र यहां आकर फूलों की अद्भुत बहार देखकर मुझे सम्मानित करें।

वासवदत्ता—सखि! तुम्हें भर्ता प्यारे लगते हैं न?

पद्मावती—आर्ये! यह तो नहीं जानती हूं, पर आर्यपुत्र के विरह में मैं अति व्याकुल हो जाया करती हूँ।

वासवदत्ता—[स्वगत] ओह! मैं अति व्याकुल हो जाया करती हूँ—यह भी ऐसा ही कहती है।

कुसुमावचयं पुष्पचयनम्। **अर्द्धमनःशिलापट्टकैरिव** मनःशिला 'मैनशिल' इति ख्यातः अरुणवर्णः धातुविशेषः, अर्द्धम् एकदेशो मनःशिलापट्टो येषां तैस्तथा इव प्रतीयमानैः। **शेफालिकाकुसुमैः** निर्गुण्डीपुष्पैः। शेफालिकाकुसुमानामर्द्धारुणत्वान्मनःशिलाघटितैकदेशत्वमुत्प्रेक्षितम्। **विचित्रता** वैचित्र्यं विविधवर्णता। **दर्शनीयता** शोभा। **कुसुमसमृद्धिम्** पुष्पप्राचुर्य्यम्। **सम्मानिता** आदृता प्रशंसिता। **उत्कण्ठिता** दर्शनोत्सुका पर्याकुला।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

चेटी—अभिजादं खु भट्टिदारिआए मन्तिदं—पिओ मे भत्तत्ति।

अभिजातं खलु भर्तृदारिकया मन्त्रितम्—प्रियो मे भर्तेति।

पद्मावती—एक्को खु मे सन्देहो।

एकः खलु मे सन्देहः।

वासवदत्ता—किं किं। —किं किम्।

पद्मावती—जह मम अय्यउत्तो, तह एव्व अय्याए वासवदत्ताए त्ति।

यथा ममार्यपुत्रस्तथैवार्याया वासवदत्ताया इति।

वासवदत्ता—अदो वि अहिअं।

अतोऽप्यधिकम्।

पद्मावती—कहं तुवं जाणासि।

कथं त्वं जानासि।

वासवदत्ता—[आत्मगतम्] हं, अय्यउत्तपक्खवादेण अदिक्कन्दो समुदाआरो। एव्वं दाव भणिस्सं। [प्रकाशम्] जइ अप्पो सिणेहो, सा सजणं ण परित्तजदि।

हम्, आर्यपुत्रपक्षपातेनातिक्रान्तः समुदाचारः। एवं तावद् भणिष्यामि। यद्यल्पः स्नेहः, सा स्वजनं न परित्यजति।

पद्मावती—होदव्व। —भवितव्यम्।

चेटी—भट्टिदारिए! साहु भट्टारं भणाहि—अहं पि वीणं सिक्खिस्सामि त्ति।

भर्तृदारिके! साधु भर्तारं भण—अहमपि वीणां शिक्षिष्य इति।

पद्मावती—उत्तो मए अय्यउत्तो।

उक्तो ममार्यपुत्रः।

वासवदत्ता—तदो किं भणिदं।

ततः किं भणितम्।

पद्मावती—अभणिअ किंञ्चि दिग्घं णिस्ससिअ तुह्णीओ संवुत्तो।

अभणित्वा किञ्चिद् दीर्घं निःश्वस्य तूष्णीकः संवृत्तः।

वासवदत्ता—तदो तुवं किं विअ तक्केसि।

ततस्त्वं किमिव तर्कयसि।

पद्मावती—तक्केमि अय्याए वासवदत्ताए गुणाणि सुमरिअ दक्खिण्णदाए मम अग्गदो ण रोदिदि त्ति।

तर्कयाम्यार्याया वासवदत्ताया गुणान् स्मृत्वा दाक्षिण्यतया ममाग्रतो न रोदितीति।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

चेटी—'पति मुझे अति प्यारा है' इसे राजकुमारी ने बड़े ढंग से प्रकट किया।

पद्मावती—मेरा एक सन्देह है।

वासवदत्ता—सो क्या ? सो क्या ?

पद्मावती—आर्यपुत्र जैसे मुझे प्यारे लगते हैं, आर्या वासवदत्ता को भी वे क्या वैसे ही प्यारे लगते रहे होंगे ?

वासवदत्ता—इससे भी अधिक।

पद्मावती—तुम कैसे जानती हो ?

वासवदत्ता—[स्वगत] ओह ! आर्यपुत्र के स्नेह-वश मैंने अज्ञातवास के अनुकूल आचार का भूल से फिर उल्लंघन कर दिया। अच्छा, ऐसा कहूँगी। [प्रकट] यदि कम प्रेम होता तो वह स्वजनों को न छोड़ती।

पद्मावती—ठीक है।

चेटी—राजकुमारि ! भर्ता को किसी मौके पर कहो न कि मैं भी वीणा बजाना सीखूंगी।

पद्मावती—आर्यपुत्र से मैंने कहा तो था।

वासवदत्ता—तब उन्होंने क्या कहा ?

पद्मावती—कुछ न कहकर एक लम्बी सांस लेकर चुप रह गये।

वासवदत्ता—तब तुम क्या अनुमान करती हो ?

पद्मावती—मैं यही अनुमान करती हूँ कि आर्या वासवदत्ता के गुणों को स्मरण कर दाक्षिण्यवश मेरे आगे रोये नहीं।

अभिजातम् न्याय्यम् ['अभिजातः कुलीने स्यान्न्याय्यपण्डितयोस्त्रिषु' इति मेदिनी]। **यथा ममेति**–**यथा** येन प्रकारेण **मम** मे **आर्यपुत्रः** भर्ता, प्रियः इति शेषः। **आर्यायाः** आवन्तिकायाः अपि **तथैव** तेनैव प्रकारेण प्रियः किम् ? इति काक्वा योज्यम्। **अतोऽप्यधिकम्** अस्मादपि अत्यन्तं प्रिय इत्यर्थः। वासवदत्ता-प्रीतिप्रकर्षे तव प्रीतिर्नगण्येति भावः। **हमिति** अनुतापे। **यदीति**—**यदि** चेद् **स्नेहः** भर्तृविषयकः प्रेम **अल्पः** न्यूनः, अभविष्यदित्यर्थः, तदा **सा** आवन्तिका **स्वजनं** जननीजनकादीन् **न** नैव **परित्यजति** पर्यत्यक्ष्यत्। प्रेमाल्पत्वे तेषां परित्यागं नाकरिष्यदित्यर्थः। यदि स्नेहः स्वल्पो भवति, तदा तदर्थं स्वजनं न परित्यजति, यदि तदर्थं स्वजनं परित्यजति तदा स्नेहः स्वल्पो न भवति। अतः स्नेहाधिक्यमेवेति भावः। **भवितव्यम्** युज्यते। **तर्कयामि** ऊहे। **दाक्षिण्यतया** विदग्धतया, गाम्भीर्येण च।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

वासवदत्ता—[आत्मगतम्] धञ्ञा खु ह्मि, जदि एव्वं सच्चं भवे ।
धन्या खल्वस्मि, यद्येवं सत्यं भवेत् ।

[ततः प्रविशति राजा विदूषकश्च]

विदूषकः—ही ! ही ! पचिग्रपडिग्रबन्धुजीवकुसुमविरलवादरमणिज्जं पमदवणं । इदो दाव भवं ।
ही ! ही ! प्रचितपतितबन्धुजीवकुसुमविरलवातरमणीयं प्रमदवनम् ! इतस्तावद् भवान् ।

राजा—वयस्य वसन्तक ! अयमयमागच्छामि ।

कामेनोज्जयिनीं गते मयि तदा कामप्यवस्थां गते
दृष्ट्वा स्वैरमवन्तिराजतनयां पञ्चेषवः पातिताः ।
तैरद्यापि सशल्यमेव हृदयं भूयश्च विद्धा वयं
पञ्चेषुर्मदनो यदा कथमयं षष्ठः शरः पातितः ॥१॥

विदूषकः—कहिं णु खु गदा तत्तहोदी पदुमावदी । लदामण्डवं गदा भवे, उदाहो असणकुसुमसञ्चिदं वग्घचम्मावगुण्ठिदं विअ पव्वदतिलअं णाम शिलापट्टअं गदा भवे, आदु अधिअकडुअगन्धसत्तच्छदवणं पविट्ठा भवे, अहव आलिहिदमिअपक्खिसंकुलं दारुपव्वदअं गदा भवे । [ऊर्ध्वमवलोक्य] ही ! ही ! सरअकालणिम्मले अन्तरिक्खे पसारिअबलदेवबाहुदंसणीअं सारसपन्तिं जाव समाहिदं गच्छन्तिं पेक्खदु दाव भवं ।
कुत्र न खलु गता तत्रभवती पद्मावती । लतामण्डपं गता भवेद्, उताहो असनकुसुमसञ्चितं व्याघ्रचर्मावगुण्ठितमिव पर्वततिलकं नाम

ही ! ही ! इति हर्षस्यानुभावः, अहह ! इत्यर्थः । **प्रचितेति**—प्रचितानि अवचितानि च तानि पतितानि च्युतानि बन्धुजीवकुसुमानि बन्धूकपुष्पाणि तैः विरलेन सौम्येन वातेन पवनेन रमणीयं मनोरमम् ।

"**कामेने**"ति—**कामेन** मनसिजेन **उज्जयिनीं** तदाख्यां प्रसिद्धनगरीम् **गते** प्राप्ते छलपूर्वं प्रद्योतेन मां गृहीत्वा स्वराजधान्याम् उज्जयिन्यां प्रापिते सतीत्यर्थः **तदा** तस्मिन् अवसरे **स्वैरं** विस्रब्धम् **अवन्तिराजतनयाम्** अवन्तिराजस्य प्रद्योतस्य तनयां कन्यकां वासवदत्तामित्यर्थः **दृष्ट्वा** निर्वर्ण्य **कामपि** अनिर्वचनीयाम् **दशाम्** अवस्थाम् **गते** प्राप्ते **मयि** उदयने **पञ्च** पञ्चापि अपरिशेषेण **इषवः** बाणाः शराः **पातिताः** प्रक्षिप्ताः । शरसम्पदोऽपरिशेषप्रक्षेपणोक्तया वासवदत्तायामनुरागातिशयोऽभिहितः । **तैः** पातितैः शरैः **हृदयं** मदीयं चेतः **अद्यापि** वासवदत्तायां प्रमीतायां बहुतिथे काले गते इदानीमपि **सशल्यम्** शल्योपेतं निखातशल्यमेवास्तीत्यर्थः, पूर्वं प्रक्षिप्तास्त इहि निखाता इदं विप्रति न नु तेऽद्यापि कामेनारम-

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

वासवदत्ता—[स्वगत] तब तो मैं धन्य हूँ। यदि यह बात सच हुई।

[राजा और विदूषक का प्रवेश]

विदूषक—अह-ह-ह···! चुनते समय इधर-उधर बिखरे हुए बन्धुजीव के फूलों की महकभरी हवा से यह प्रमदवन (केलिवन) क्या ही रमणीय लग रहा है। इधर से आइए, महाराज।

राजा—सखे वसन्तक ! यह आता हूँ।

—उज्जयिनी जाने पर जब मैंने अवन्ति-राज की कन्या को भलीभांति देखा था और उससे मेरी विचित्र-सी दशा हो गई थी तो कामदेव ने मुझ पर अपने पांचों बाण छोड़ दिये थे। उनसे अभी तक भी मेरा हृदय कसक ही रहा था कि यहां आकर उसने मुझे फिर वेध डाला। यदि मदन पंच-शर है, तो पता नहीं चलता, उसने यह छठा शर कहां से छोड़ा ? ॥१॥

विदूषक—माननीया पद्मावती कहां गई ? लता-मण्डप में गई क्या ? या पर्वत-तिलक नाम के पत्थर के चबूतरे पर गई होंगी, जो चितकबरे असना के फूलों से छाकर बाघम्बर से ढका हुआ-सा दिखाई देता है ? या अधिक

न्युपसंहृता इति भावः। **भूयः** पुनश्च **वयम्** अहम् ['अस्मदो द्वयोश्च' (पा० १.२.५९) इति बहुवचनम्] **विद्धाः** विद्धः शरेण कृतक्षतः। **यदा** यदि चेत् **मदनः** कामः **पञ्चेषु** पञ्च पञ्चसंख्यापरिमिता एव इषवः शराः यस्य स तथोक्तः पञ्चबाण इत्यर्थः [तथोक्तम्—'अरविन्दमशोकं च चूतं च नव-मल्लिका। नीलोत्पलं च पञ्चैते पञ्चबाणस्य सायकाः ॥' इति। 'उन्मादन-स्तापनश्च शोषणस्तम्भनस्तथा। संमोहनश्च कामस्य पञ्चबाणाः प्रकीर्तिताः ॥' इति च।] तदा **अयम्** एषः **षष्ठः शरः** सायकः **कथं** कुत आसाद्य **पातितः** पद्मावतीमुद्दिश्य प्रक्षिप्तः।

अत्रैतद् ध्वनितम्—पञ्चेषोरपि षष्ठशरपातनमित्याश्चर्यम्। वासवदत्ता-विषयकसातिशयानुरागसत्त्वेऽपि पद्मावतीविषयकानुरागोऽपि समुच्छलितप्रसर एव। वासवदत्तामुद्दिश्य पञ्चापीषवः प्रक्षिप्ताः, पद्मावतीमुद्दिश्येषुरेक एव, सोऽपि न निजः, व्ययितसर्वशरसाधनेन कुतोऽपि आसाद्य प्रहृतः स्यादिति पञ्चेषुप्रहार-घटितः वासवदत्ताविषयकानुरागप्रकर्षः एकलशरसमुत्थपद्मावतीविषयकानुरागस्य ततो न्यूनत्वमावेदयति। तथा—वासवदत्ताविषयकतादृशानुरागसद्भावेऽपि अभि-नवोद्गतः पद्मावतीविषयकानुरागः सञ्जातस्तदेतदाश्चर्यमिति। श्लोके 'गते' 'गते' इति द्विरुपात्तेऽपि प्रसादगुणानुबन्धितया न चारुत्वविघातः। शार्दूल-विक्रीडितम् ॥१॥

उताहो किमुत किम् ['आहो उताहो किमुत विकल्पे किं किमूत च' इत्यमरः] **असनकुसुमसञ्चितम्** असनकुसुमैः सर्जकपुष्पैः सञ्चितम् आच्छादितम्,

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

शिलापट्टकं गता भवेद्, अथवा अधिककटुकगन्धसप्तच्छदवनं प्रविष्टा भवेत् अथवा आलिखितमृगपक्षिसंकुलं दारुपर्वतकं गता भवेत्। ही ! ही ! शरत्कालनिर्मलेऽन्तरिक्षे प्रसारितबलदेवबाहुदर्शनीयां सारसपंक्तिं यावत् समाहितं गच्छन्तीं पश्यतु तावत् भवान्।

राजा—वयस्य ! पश्याम्येनाम्,

ऋज्वायतां च विरलां च नतोन्नतां च
सप्तर्षिवंशकुटिलां च निवर्तनेषु।
निर्मुच्यमानभुजगोदरनिर्मलस्य
सीमामिवाम्बरतलस्य विभज्यमानम् ॥२॥

चेटी—पेक्खदु पेक्खदु भट्टिदारिआ एदं कोकणदमालापण्डररमणीअं सारसपन्तिं जाव समाहिदं गच्छन्तिं ! अम्मो ! भट्टा।

पश्यतु पश्यतु भर्तृदारिका ! एतां कोकनदमालापाण्डुररमणीयां सारसपङ्क्तिं यावत् समाहितं गच्छन्तीम्। अहो ! भर्ता।

अत एव **व्याघ्रचर्मावगुण्ठितमिव** व्याघ्रस्य 'बाघ' इति प्रसिद्धस्य चर्मणा कृत्तिना अवगुण्ठितं कृतावगुण्ठनम् आच्छादितमिव दृश्यमानम् **पर्वततिलकं नाम** पर्वततिलकनामकम् **शिलापट्टकं** शिलापीठम् **गता भवेद्** प्रयाता स्यात्। शिलापट्टस्य विविधवर्णविचित्रासनकुसुमसमाच्छन्नत्वेन व्याघ्रचर्मावगुण्ठितत्वमुत्प्रेक्षितम्। **अधिककटुकगन्धसप्तच्छदवनम्** अधिककटुकः अतितीक्ष्णः गन्धः सुगन्धो येषां तथोक्ता ये सप्तच्छदाः सप्तपर्णाख्यास्तेषां वनम् उद्यानम् **प्रविष्टा भवेत्** गता स्याद्। **आलिखितमृगपक्षिसंकुलम्** आलिखिताः चित्रिताः ये मृगाः हरिणाः पक्षिणः खगाः तैः संकुलं व्याप्तम् **दारुपर्वतकम्** दारुणा काष्ठेन निर्मितं पर्वतम्, दारुमयं क्रीडागिरिमित्यर्थः। **ही ही !** इति विस्मये हर्षे वा। **शरत्कालनिर्मले** शरत्कालेन शरदृतुना निर्मले निरभ्रत्वात् स्वच्छे। **अन्तरिक्षे** आकाशे। **प्रसारितेति**—प्रसारितौ धवलौ यौ बलदेवस्य भगवच्छ्रीकृष्णाग्रजस्य बाहू भुजौ तद्वद् दर्शनीयां दर्शनयोग्याम्। **सारसपंक्ति** 'सारस' इति प्रसिद्धविहगततिम्। दैर्घ्याद् धावल्याच्च सारसपंक्तेः बलदेवबाहुसाम्यम्। **समाहितं** सुसंघटितं यथा भवति तथा **गच्छन्तीं** विहायसा चलन्तीम् **भवान्** वत्सराज उदयनः **पश्यतु** समीक्षताम्। स्वयं पश्यतोऽपि पुनर्दर्शनप्रेरणा सादरदर्शनार्थम्। कृतं सामान्यबुद्ध्या, अस्या दर्शने नानादरः कर्तव्य इति भावः। **वयस्य ! पश्याम्येनामिति** श्लोकेन सम्बध्यते।

"ऋज्वायतामि"ति—**वयस्य !** हे मित्र ! **ऋज्वायतां च** ऋजुः अवक्रा च

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

तीखी सुगन्ध वाले सप्तच्छद वन में गई हैं ? अथवा दारु-पर्वत पर गई हैं, जिस पर मृग तथा पक्षियों के विविध चित्र बने हैं ? [ऊपर देखकर] अह-ह-ह···! शरत्-काल के निर्मल आकाश में, अच्छी तरह संघटित होकर एक-साथ चलती हुई सारस-पंक्ति को, महाराज, तनिक देखें तो सही। वाह ! देखने ही योग्य है। ऐसा जान पड़ता है, मानों बलदेव जी की दीर्घ धवल भुजा फैली हुई है।

राजा—सखे ! मैं इसे देख रहा हूँ,

—यह कभी सीधी और फैली हुई हो जाती है, कभी अलग-अलग हो जाती है। कभी बहुत नीचे आ जाती है और कभी बहुत ऊपर। कभी सुदूर उड़कर दूसरी ओर घूमने में सप्तर्षि-मण्डल की तरह तिरछी दिखाई देती है। कभी तो ऐसी जान पड़ती है कि केंचुरी छोड़ते हुए सांप के उदर के समान निर्मल आकाश को दो भागों में बांटने वाली मानों (सीधी सफेद खींची हुई) सीमा-रेखा हो ॥२॥

चेटी—देखिए, देखिए, राजकुमारी ! कमल-माला की भांति शुभ्रसुन्दर सारस-पंक्ति अच्छी तरह संघटित होकर एक-साथ आसमान में कैसे उड़ी जा रही है। ओह ! ये भर्ता—

सा आयता दीर्घा च तां च **विरलां च** अन्योन्यमसंहतां च, **नतोन्नतां च** नीचैरवनता च सा पुनः उन्नता उच्चैरुत्पतिता च तां च, खे भ्रमणलीलया कदाचिदधः आगच्छन्तीं कदाचिच्चात्युच्चैरुत्पतन्तीमित्यर्थः, **निवर्तनेषु** सुदूरमुड्डीय पुनरन्यां दिशमुद्दिश्य परावर्तनेषु **सप्तर्षिवंशकुटिलां च** सप्तर्षिवंशमिव मरीच्यादि-सप्तर्षिमण्डलमिव कुटिलां तिर्यक्सन्निवेशां च, तथा **निर्मुच्यमानभुजगोदरनिर्मलस्य** निर्मुच्यमानं कञ्चुकजालाद् निष्पतद् यद् भुजगोदरं सर्पस्योदरप्रदेशः तदिव निर्मलस्य अतिस्वच्छस्य **अम्बरतलस्य** गगनतलस्य **विभज्यमानां** भागद्वये कल्प्यमानाम् **सीमाम्** इव धावल्येनाङ्कितां मर्यादारेखामिव स्थिताम् **एनां** दृश्यमानां सारसपंक्तिम् **पश्यामि** अवलोकयामि।

'सप्तर्षिवंशकुटिलाम्' इतीह 'निर्मुच्यमानभुजगोदरनिर्मलस्य' इतीह च उपमा। 'सीमामिव' इत्यत्र च उत्प्रेक्षा। एवमाभ्यामुपमोत्प्रेक्षाभ्यां संसृष्टा स्वभावोक्तिः। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥२॥

कोकनदमालेति—कोकनदशब्दस्येह कमलसामान्यरूप एवार्थो ग्राह्यः, न तु रक्तोत्पलरूपः। कोकनदानां कमलानां या माला तद्वत् पाण्डुरा चासौ रमणीया मनोहरा ताम्। ग्रन्थे 'पण्डर' इति प्राकृतस्य 'पाण्डुर' इति संस्कृत सर्वेष्वेव संस्करणेषु समुपलभ्यते। पाण्डुरशब्दस्य च पीतमिश्रितशुक्लार्थः। यथा—'हरिणः

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

पद्मावती—हं ! अय्यउत्तो । अय्ये ! तव कारणादो अय्यउत्तदंसणं परिहरामि । ता इमं दाव माहवीलदामण्डवं पविसामो ।

हम् ! आर्यपुत्रः ! आर्ये ! तव कारणादार्यपुत्रदर्शनं परिहरामि । तदिमं तावन्माधवीलतामण्डपं प्रविशामः ।

वासवदत्ता—एव्वं होदु । —एवं भवतु ।

[तथा कुर्वन्ति]

विदूषकः—तत्तहोदी पदुमावदी इह आअच्छिअ णिग्गदा भवे ।

तत्रभवती पद्मावतीहागत्य निर्गता भवेत् ।

राजा—कथं भवान् जानाति ।

विदूषकः—इमाणि अवइदकुसुमाणि सेफालिआगुच्छआणि पेक्खदु दाव भवं ।

इमानवचितकुसुमान् शेफालिकागुच्छकान् प्रेक्षतां तावद् भवान् ।

राजा—अहो ! विचित्रता कुसुमस्य वसन्तक !

वासवदत्ता—[आत्मगतम्] वसन्तअसङ्कित्तणेण अहं पुण जाणामि उज्जइणाए वत्तामि त्ति ।

वसन्तकसङ्कीर्तनेनाहं पुनर्जानामि उज्जयिन्यां वर्ते इति ।

राजा—वसन्तक ! अस्मिन्नेवासीनौ शिलातले पद्मावतीं प्रतीक्षिष्यावहे ।

विदूषकः—भो ! तह । [उपविश्योत्थाय] ही ! ही ! सरअकालतिक्खो दुस्सहो आदवो । ता इमं दाव माहवीमण्डवं पविसामो ।

भोस्तथा । ही ! ही ! शरत्कालतीक्ष्णो दुस्सह आतपः । तदिमं तावन्माधवीमण्डपं प्रविशामः ।

राजा—बाढम् । गच्छाग्रतः ।

विदूषकः—एव्वं होदु । —एवं भवतु ।

[उभौ परिक्रामतः]

पद्मावती—सव्वं आउलं कत्तुकामो अय्यवसन्तओ । किं दाणिं करेह्म ।

सर्वमाकुलं कर्तुकाम आर्यवसन्तकः । किमिदानीं कुर्मः ।

पाण्डुरः पाण्डुः' इत्यमरः, 'त्रीणि पीतसंवलितशुक्लस्य' इत्यमरव्याख्यासुधाकारः । प्रकृते निसर्गशुभ्रसारसपङ्क्तिवर्णने पाण्डुरशब्दः पीतसंवलितशुक्लार्थावबोधकतया न सङ्गच्छते । 'पण्डर' इत्यस्य 'पाण्डर' इति संस्कृते च पाण्डरा शुक्ला चासौ रमणीयेति तां सारसपङ्क्तिमिति सम्यगाभाति । यथाहामरसिंहः—'शुक्लशुभ्र-

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

पद्मावती—ऊंह ! आर्यपुत्र ! [वासवदत्ता से] आर्ये ! तुम्हारे कारण मैं आर्यपुत्र के सामने नहीं होना चाहती । इसलिए, आओ, इस माधवी-लता-मण्डप में चली चलें ।

वासवदत्ता—अच्छा, चलो, चलें ।

[माधवी-लता-मण्डप में जाती हैं]

विदूषक—जान पड़ता है, माननीया पद्मावती यहां आकर चली गई ।

राजा—कैसे तुमने जाना ?

विदूषक—चुने हुए फूलों वाले इन शेफालिका के गुच्छों को देखिए न !

राजा—अहो ! वसन्तक ! फूलों की विचित्रता !

वासवदत्ता—[स्वगत] वसन्तक नाम सुनकर मुझे ऐसा जान पड़ता है कि मैं उज्जयिनी में हूं ।

राजा—वसन्तक ! आओ, इसी शिलातल पर बैठकर पद्मावती की प्रतीक्षा करें ।

विदूषक—अच्छा, ऐसा ही सही । [बैठकर और उठकर] ओह-ओ-ओ··· ! शरत्-काल की कड़ी धूप सही नहीं जाती । इसलिए, चलिए, इस माधवी-मण्डप में चलें ।

राजा—अच्छा, चलो आगे ।

विदूषक—आइए, आगे मैं ही सही ।

[दोनों घूमते हैं]

पद्मावती—आर्य वसन्तक सब को असमञ्जस में डालना चाहते हैं । अब क्या करें ?

शुचिश्वेतविशदश्येतपाण्डराः' इति । पण्डर' इति प्राकृतस्य 'पाण्डुर' इति संस्कृतपाठो भ्रमविहित एवेति अग्रे सुधियः प्रमाणम् । **अहो भर्ता** अत्रायात इति शेषः । अत्र क्रियापदप्रयोगाभावः सातिशयसम्भ्रमं सूचयति ।

हमिति नायकागमनजनितसम्भ्रमस्यानुभावः । **तव कारणाद्** तव हेतोः, यतस्त्वं परपुरुषदर्शनं परिहरसि अत इति भावः । **आर्यपुत्रदर्शनं परिहरामि** आर्यपुत्रकृतम् अस्माकमवलोकनं परिवर्जयामि । यथा भर्ता नास्मान् पश्येत् तथा करोमीत्यर्थः । **अवचितकुसुमान्** अवचितानि कुसुमानि पुष्पाणि येषांस्तान् तथाभूतान् **शेफालिकागुच्छकान्** शेफालिकास्तबकान्, **भवान्, प्रेक्षताम्** पश्यतु । **तावदिति** निर्धारणे । पद्मावतीमतिरिच्य नहि कश्चिदन्यः प्रमदवनकुसुमान्यवचेतुं शक्नोति, अतः सैवेहागत्य कुसुमावचयं कृत्वा निर्गतेति भावः । **विचित्रता** विविधरागयुक्तत्वम् । **ही ! ही !** इति दुःखे । **शरत्कालतीक्ष्णः** शरत्कालेन शरदृतुना तीक्ष्णः

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

चेटी—भट्टिदारिए ! एदं महुअरपरिणिलीणं ओलंबलदं ओधूय भट्टारं वारयिस्सं ।

भर्तृदारिके ! एतां मधुकरपरिनिलीनामवलम्बलतामवधूय भर्तारं वारयिष्यामि ।

पद्मावती—एव्वं करेहि ! —एवं कुरु ।

[चेटी तथा करोति]

विदूषकः—अविहा ! अविहा ! चिट्ठदु चिट्ठदु दाव भवं ।

अविह ! अविह ! तिष्ठतु तिष्ठतु तावद् भवान् ।

राजा—किमर्थम् ?

विदूषकः—दासीएपुत्तहि महुअरेहि पीडिदो ह्मि ।

दास्याः पुत्रैर्मधुकरैः पीडितोऽस्मि ।

राजा—मा मा भवानेवम् । मधुकरसन्त्रासः परिहार्यः ।

पश्य—

मधुमदकला मधुकरा मदनार्ताभिः प्रियाभिरुपगूढाः ।
पादन्यासविषण्णाः वयमिव कान्तावियुक्ता स्युः ॥३॥

तस्मादिहैं वासिष्यावहे ।

विदूषकः—एव्वं होदु ! —एवं भवतु ।

[उभावुपविशतः]

राजा[1]—[अवलोक्य]

प्रखरः, अतएव दुस्सहः सोढुमशक्यः । **आतपः** सूर्यसन्तापः । **सर्वमिति—आर्यवसन्तकः, सर्वम्** आर्यपुत्रदर्शनपरिहारार्थं कृताम् अखिलामपि योजनाम् **आकुलम्** व्यर्थम् **कर्तुकामः** कर्तुं कामः अभिलाषो यस्य सः तथा ।

मधुकरपरिनिलीनाम् मधुकराः भ्रमराः परितः अभितः निलीनाः पुष्परसपानसंसक्ततया स्थिताः यस्यां ताम्, यद्वा—मधुकरैः भ्रमरैः परितः निलीनां समाच्छन्नाम्, **अवलम्बलताम्** अन्यासां लतानामप्याधारभूतां लतामण्डपप्रवेश-

---

१. अत्र श्रीगणपति शास्त्रिणः—"अथ नाटचदर्पणे रामचन्द्रप्रणीते 'यथा भासकृते स्वप्नवासवदत्ते शेफालिकामण्डपशिलातलमवलोक्य वत्सराजः—

पादाक्रान्तानि पुष्पाणि सोष्म चेदं शिलातपम् ।
ननं काचिदिहासीना मां दृष्ट्वा सहसा गता ॥

पूर्वार्द्धं लिङ्गम्, उत्तरार्द्धमनुमानम्' इत्यनुमानोदाहरणनिरूपणदर्शनाद् राजा अवलोक्य' इत्येवञ्च [illegible] 'पादाक्रान्तानी'ति श्लोकः स्थित एव मूले चिरनिष्प्रचारत्वशात् पाठभ्रंशं प्राप्य इत्यनुमीयते । तमेतास्मिन् स्थाने योग्यतया निवेश्य व्याकुर्मः ।" इति ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

चेटी—राजकुमारि ! भौंरों से छाई हुई इस बड़ी बेल को, जो कि अन्य बेलों से उलझी हुई है, हिलाकर भर्ता को रोकूँगी।

पद्मावती—हां, हां, ऐसा ही कर।

[चेटी हिलाती है]

विदूषक—अरे ! बाप रे बाप ! महाराज, ठहरिए, ठहरिए ।

राजा—क्यों ? क्या बात हुई ?

विदूषक—ये हरामजादे भौंरे मुझ पर टूट पड़े हैं।

राजा—न, न । आप, ऐसा नहीं । भौंरो को न छेड़ो । देखो,

—कामदेव से सताई हुई अपनी प्रियतमाओं से चिपटे हुए, मधु के मद से भनभनाते हुए भौंरे पांवों की आहट से दुःखित होकर हमारी तरह अपनी प्रियाओं से बिछुड़ जाएंगे ॥३॥

इसलिए, आओ, यहीं पर बैठें।

[दोनों बैठते हैं]

विदूषक—अच्छा, ऐसा ही सही ।

राजा—[देखकर]

मार्गवर्तिनी व्रततिम् **अवधूय** कम्पयित्वा हस्ताभ्यां चालयित्वा **भर्तारं** पतिं तवेत्यर्थः, **वारयिष्यामि** प्रतिषेधयिष्यामि। भ्रमरसमाच्छन्नावलम्बलतावधूननेन भ्रमराः भृशमुत्पतिष्यन्ति, अतो न भर्ता प्रभविष्यति प्रवेष्टुमन्तरिति भावः। **अविह ! अविह !** अति सम्भ्रमे। **दास्याः पुत्रैरिति** सकोपमधिक्षेपोक्तिः। **पीडितोऽस्मि** आक्रान्तोऽस्मि। **मधुकरसन्त्रासः** भ्रमरातङ्कः **परिहार्यः** परिवर्जनीयः, न कर्तव्य इत्यर्थः।

"**मधुमदेति**—**मधुमदकलाः** मधुनः मदो मधुमदः पुष्परसपानजनितानन्दः, तेन कलाः अव्यक्तमधुरस्वनाः, यद्वा—मधुमदेन कलाः प्रियोपभोगतन्मयतया मूकाः ['जडो मूकः कलोऽप्यवाक्' इति यादवः] **मदनार्ताभिः** स्मरपीडिताभिः **प्रियाभिः** वल्लभाभिः **उपगूढाः** दृढमाश्लिष्टाः **मधुकराः** भ्रमराः **पादन्यासविषण्णाः** पादन्यासेन लतामण्डपान्तःप्रवेशार्थं कर्तुमारब्धेन चरणप्रक्षेपेण, विषण्णाः व्यथिताः उद्विग्नाः सन्तः **वयमिव** अहमिव **कान्तावियुक्ताः** कान्ताभिः प्रियाभिः वियुक्ताः विरहिताः परस्परं विश्लेषिता इति यावत्, **स्युः** भवेयुः।

कान्ताविरहशोके ममेव समानमेव सर्वेषां दूयेत चेतः, अतोऽस्माभिर्न तावदेते प्रियावियोगदुःखे पातनीया इति भावः। वयमिवेत्युपमा। आर्यावृत्तम्। लक्षणं यथा—'यस्याः पादे प्रथमे द्वादश मात्रास्तथा तृतीयेऽपि । अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश सार्या ॥' इति ॥३॥

तस्मादिति—**तस्मात्** ततः हेतोः **इहैव** अत्र शिलातल एव **आसिष्यावहे** उपवेक्ष्यावः।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

पादाक्रान्तानि पुष्पाणि सोष्म चेदं शिलातलम्।
नूनं काचिदिहासीना मां दृष्ट्वा सहसा गता ॥४॥

चेटी—भट्टिदारिए ! रुद्धा खु ह्म वयं।
भर्तृदारिके ! रुद्धा खलु स्मो वयम् !

पद्मावती—दिट्ठिआ उववि‍ट्ठो अय्यउत्तो।
दिष्ट्योपविष्ट आर्यपुत्रः।

वासवदत्ता—[आत्मगतम्] दिट्ठिआ पकिदित्थसरीरो अय्यउत्तो।
दिष्टया प्रकृतिस्थशरीर आर्यपुत्रः।

चेटी—भट्टिदारिए ! सस्सुपादा खु अय्याए दिट्ठी।
भर्तृदारिके ! साश्रुपाता खल्वार्याया दृष्टिः।

वासवदत्ता—एसा खु महुअराणं अविणआदो कासकुसुमरेणुणा पडिदेण सोदआ मे दिट्ठी।
एषा खलु मधुकराणाम् अविनयात् काशकुसुमरेणुना पतितेन सोदका मे दृष्टिः।

पद्मावती—जुज्जइ। —युज्यते।

विदूषकः—भो ! सुण्णं खु इदं पमदवणं। पुच्छिदव्वं किञ्चि अत्थि। पुच्छामि भवन्तं।
भोः ! शून्यं खल्विदं प्रमदवनम्। प्रष्टव्यं किञ्चिदस्ति। पृच्छामि भवन्तम्।

राजा—छन्दतः।

विदूषकः—का भवदो पिआ—तदाणिं तत्तहोदी वासवदत्ता, इदाणिं पदुमावदी वा।
का भवतः प्रिया—तदानीं तत्रभवती वासवदत्ता, इदानीं पद्मावती वा।

राजा—किमिदानीं भवान् महति बहुमानसङ्कटे मां न्यस्यति।

पद्मावती—हला ! जादिसे सङ्कडे निक्खित्तो अय्यउत्तो।
हला ! यादृशे सङ्कटे निक्षिप्त आर्यपुत्रः।

"**पादाक्रान्तानि**" इति—**पुष्पाणि** भूमौ पातितानि शेफालिकाप्रसूनानि। **पादाक्रान्तानि** पद्भ्यामाक्रान्तानि चरणन्यासमर्दितानि दृश्यन्ते इति शेषः **इदम्** एतत् **शिलातलं च** पाषाणपट्टं च **सोष्म** ऊष्मसहितं विद्यते। अतः **नूनम्** अवश्यम् **इह** अस्मिन् शिलातले **आसीना** चिरमुपविष्टा **काचित्** कापि स्त्री **माम्** आगच्छन्तम् **दृष्ट्वा** विलोक्य **सहसा** त्वरया सद्यः **गता** अन्यत्र चलिता।

अत्र पुष्पाणां पादाक्रान्तत्वेन लिङ्गेन गमनम्, प्रच्छायशीतलशिला-

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

—फूल पैरों से रौंदे हुए दिखाई दे रहे हैं और यह शिलातल गरम प्रतीत हो रहा है। जान पड़ता है कि अवश्य ही यहां पर बैठी हुई कोई मुझ पर नजर पड़ते ही सहसा चल पड़ी ॥४॥

चेटी—राजकुमारि ! लो, हम तो यहां घिर गईं !

पद्मावती—शुक्र है, आर्यपुत्र (बाहर ही) बैठ गये।

वासवदत्ता—[स्वगत] बड़े हर्ष की बात है कि आर्यपुत्र सकुशल हैं।

चेटी—राजकुमारि ! आर्या की आंखों से आंसू गिर रहे हैं।

वासवदत्ता—भौंरों के उत्पात से काश-कुसुम-रज के उड़कर पड़ने से मेरी आंख में यह जल भर आया।

पद्मावती—हो सकता है।

विदूषक—महाराज ! यह प्रमदवन सुनसान है। कुछ पूछने योग्य है। आपसे पूछूं ?

राजा—हां, हां, स्वच्छन्दता से पूछिए।

विदूषक—आपको कौन प्यारी है — तब माननीया वासवदत्ता या अब पद्मावती ?

राजा—क्यों इस समय आप मुझे इस बहुमान-सङ्कट में डाल रहे हो ?

पद्मावती—सखि ! देखिए तो सही, जैसे सङ्कट (उलझन) में वसन्तक ने आर्यपुत्र को डाल दिया है।

तलस्य ऊष्मणा च तत्रोपवेशनमनुमीयते अनुमानालङ्कारः ॥४॥

रुद्धाः वारितनिर्गमाः। लतामण्डपाद् बहिः समीप एव नृपस्यावस्थानादिति भावः। **प्रकृतिस्थेति**—प्रकृतिस्थं शरीरं यस्य स तथोक्तः, स्वस्थशरीर इत्यर्थः। **आर्यायाः** वासवदत्तायाः **दृष्टिः साश्रुपाता** नयने अश्रुजलपरिपूर्णे। अश्रुजलं च हर्षशोकसम्मिश्रणजन्यम्। हर्षः पत्युश्चिरलब्धदर्शनजनितः, शोकश्च पत्युः पत्न्यन्तरपरिग्रहेणात्मनि स्नेहाल्पत्वभावनया। **अविनयात्** उपद्रवात्। **काशकुसुमरेणुना** काशपुष्परजसा। **पतितेन** चक्षुरन्तः प्रविष्टेन। **सोदका** उदकं जलं तेन सह वर्तते इति तथा, सजला न तु साश्रपातेति तदीयो भावः। छन्दतः स्वच्छन्दतया, निश्शङ्कं परिपृच्छेत्यर्थः। **बहुमानेति**—बहुमानसङ्कटः तारतम्येन प्रियतरत्वकथनरूपक्लेशस्तस्मिन्। **किं न्यस्यति** किं प्रक्षिपति। वासवदत्ता प्रियतरा आसीदुत वर्तमाना पद्मावती अस्तीति नैव परिप्रष्टव्यमिति भावः। **हलेति**—**हला** ! सखि ! **यादृशे** यद्रूपे **सङ्कटे** प्रियतरत्वकथनरूपक्लेशे। **आर्यपुत्रः** भर्ता **निक्षिप्तः** पातितः, वसन्तकेनेत्यर्थः, तादृक् त्वं पश्येत्यर्थः।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

वासवदत्ता—[आत्मगतम्] अहं अ मन्दभाआ।

अहं च मन्दभागा।

विदूषकः—सेरं सेरं भणादु भवं। एक्का उवरदा, अवरा असण्णिहिदा।

स्वैरं स्वैरं भवतु भवान्। एकोपरता, अपरा असन्निहिता।

राजा—वयस्य! न खलु न खलु ब्रूयाम्। भवांस्तु मुखरः।

पद्मावती—एत्तएण भणिदं अय्यउत्तेण।

एतावता भणितमार्यपुत्रेण।

विदूषकः—भो! सच्चेण सवामि, कस्स वि ण आचक्खिस्सं। एसा सन्दट्ठा मे जीहा।

भोः! सत्येन शपामि, कस्मा अपि नाख्यास्ये। एषा सन्दष्टा मे जिह्वा!

राजा—नोत्सहे सखे! वक्तुम्।

पद्मावती—अहो! इमस्स पुरोभाइदा। एत्तिएण हिअअं ण जाणादि।

अहो! अस्य पुरोभागिता। एतावता हृदयं न जानाति।

विदूषकः—किं ण भणादि मम। अणाचक्खिअ इमादो सिलावट्टआदो ण सक्कं एक्कपदं वि गमिदुं। एसो रुद्धो अत्तभवं।

किं न भणति मम। अनाख्यायास्माच्छिलापट्टकान्न शक्यमेकपदमपि गन्तुम्। एष रुद्धोऽत्रभवान्!

राजा—किं बलात्कारेण।

विदूषकः—आम, बलक्कारेण। —आम, बलात्कारेण।

राजा—तेन हि पश्यामस्तावत्।

विदूषकः—पसीददु पसीददु भवं। वअस्सभावेण साविदो सि, जइ सच्चं ण भणासि।

प्रसीदतु प्रसीदतु भवान्। वयस्यभावेन शापितोऽसि, यदि सत्यं न भणसि।

राजा—का गतिः। श्रूयताम्—

पद्मावती बहुमता मम यद्यपि रूपशीलमाधुर्यैः।
वासवदत्ताबद्धं न तु तावन्मे मनो हरति॥५॥

अहं च अहमपि **मन्दभागा** भाग्यरहिता, सङ्कटे निक्षिप्ता इत्यर्थः। **पुरोभागिता** पुरोभागी दोषैकदृक् ['दोषैकदृक् पुरोभागी' इत्यमरः], तस्य भावः पुरोभागिता दोषैकमात्रदर्शित्वमित्यर्थः। पुरोभागित्वं न वसन्तकस्य राज्ञा स्वहृदयेनिवे-

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

वासवदत्ता—[स्वगत] मैं अभागिनी भी—

विदूषक—आप निश्शङ्क होकर कहें। एक तो संसार से चल बसी, दूसरी समीप नहीं।

राजा—न वयस्य ! मैं न कहूँगा। आप तो बड़े वाचाल हो।

पद्मावती—आर्यपुत्र ने इतने में सब कह दिया।

विदूषक—महाराज ! मैं सत्य की शपथ खाकर कहता हूँ। किसी से भी न कहूँगा। लीजिए, यह मैंने अपनी जीभ काट ली !

राजा—मुझे कहने का उत्साह ही नहीं होता।

पद्मावती—ओह ! इसका आग्रह। इतने पर भी हृदय न समझ सका।

विदूषक—मुझ से न कहेंगे आप ? बिना कहे इस शिला-पटल से एक कदम भी नहीं चल सकते। यह लो, आप रोक लिये गये।

राजा—क्या बलात्कार से ?

विदूषक—हां, बलात्कार से।

राजा—अच्छा, तो देखते हैं।

विदूषक—महाराज, प्रसन्न हों, प्रसन्न हों। आपको मित्रभाव की शपथ है, जो आप सच-सच न कहें।

राजा—विवश हूँ। सुनिए—

—पद्मावती यद्यपि रूप, शील और वचन-मधुरता से मुझे अति भाती है, तदपि वह वासवदत्ता में लगे हुए मेरे मन को नहीं हर सकती ॥५॥

दितेऽपि तद्धृद्गतमनूहमानस्य पुनः पुनः परिप्रश्नेन प्रीतितारतम्यस्य अकथनरूप-दोषदर्शित्वम्। **बलात्कारेण** बलप्रयोगेण। **आम्** इति स्वीकृतौ। **तेन** हि तर्हि। **पश्यामः** अवलोकयामः। तावदिति निर्धारणे। तव बलात्कारः फलति वा न वेति भावः। **प्रसीदतु** प्रसन्नो भवतु, क्षन्तव्यमित्यर्थः। नितान्तप्रसादाभिमुखीकरणार्थं द्वित्वम्।

"**पद्मावती**"ति—**पद्मावती, रूपशीलमाधुर्यैः** रूपं सौन्दर्यम्, शीलं सत्स्वभावः सद्वृत्तं वा ['शीलं स्वभावे सद्वृत्ते' इत्यमरः], माधुर्यं वचसः मधुरता वचनचारुता, एतैः, **यद्यपि, मम मे बहुमता** कामं प्रीतिविषयीभूता, वर्तते, **तु** तथापि **वासवदत्ताबद्धम्** वासवदत्तायाम् अतीतायाम् अपि आबद्धं संयतम्, यद्वा—वासवदत्तया बद्धं पूर्वं स्वायत्तीकृतम्, **मे** मदीयम् **मनः** हृदयम् **न नैव हरति** आकर्षति स्वायत्तीकरोति। यद्यपि पद्मावती रूपशीलमाधुर्यैरप्रतिमगुणै-रुपेता ममातीवेष्टा, तथापि सा नैतावता वासवदत्तापदमधिगन्तुं प्रभवतीत्यर्थः। वासवदत्तया भृशमाकृष्टं मे चेत इति भावः। आर्यावृत्तम् ॥५॥

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

वासवदत्ता—[आत्मगतम्] भोदु भोदु । दिण्णं वेदणं इमस्स परिखेदस्स । अहो ! अञ्ञादवासं पि एत्थ बहुगुणं सम्पज्जइ ।

भवतु भवतु । दत्तं वेतनमस्य परिखेदस्य । अहो ! अज्ञातवासोऽप्यत्र बहुगुणः सम्पद्यते ।

चेटी—भट्टिदारिए ! अदक्खिञ्ञो खु भट्टा ।

भर्तृदारिके ! अदाक्षिण्यः खलु भर्ता ।

पद्मावती—हला ! मा मा एव्वं । सदक्खिञ्ञो एव्व अय्यउत्तो, जो इदाणिं वि अय्याए वासवदत्ताए गुणाणि सुमरदि ।

हला ! मा मैवम् । सदाक्षिण्य एवार्यपुत्रः, य इदानीमप्यार्याया वासवदत्ताया गुणान् स्मरति ।

वासवदत्ता—भद्दे ! अभिजणस्स सदिसं मन्तिदं ।

भद्रे ! अभिजनस्य सदृशं मन्त्रितम् ।

राजा—उक्तं मया । भवानिदानीं कथयतु । का भवतः प्रिया—तदा वासवदत्ता, इदानीं पद्मावती वा ।

पद्मावती—अय्यउत्तो पि वसन्तओ संवुत्तो ।

आर्यपुत्रोऽपि वसन्तकः संवृत्तः ।

विदूषकः—किं मे विप्पलविदेण । उभओ वि तत्तहोदीओ मे बहुमदाओ ।

किं मे विप्रलपितेन । उभे अपि तत्रभवत्यौ मे बहुमते ।

राजा—वैधेय ! मामेवं बलाच्छ्रुत्वा किमिदानीं नाभिभाषसे ।

विदूषकः—किं मं पि बलक्कारेण ।

किं मामपि बलात्कारेण ।

राजा—अथ किम्, बलात्कारेण ।

विदूषकः—तेण हि ण सक्कं सोदुं । —तेन हि न शक्यं श्रोतुम् ।

राजा—प्रसीदतु प्रसीदतु महाब्राह्मणः । स्वैरं स्वैरमभिधीयताम् ।

विदूषकः—इदाणिं सुणादु भवं । तत्तहोदी वासवदत्ता मे बहुमदा । तत्तहोदी पदुमावदी तरुणी, दस्सणीआ, अकोवणा, अणहक्कारा, महुरवाआ, सदक्खिञ्ञा । अअं च अवरो महन्तो गुणो, सिणिद्धेण भोअणेण मं पच्चुग्गच्छइ—कहिं णु खु गदो अय्यवसन्तओ त्ति ।

इदानीं शृणोतु भवान् । तत्रभवती वासवदत्ता मे बहुमता । तत्रभवती पद्मावती तरुणी, दर्शनीया, अकोपना, अनहङ्कारा, मधुरवाक्, सदाक्षिण्या । अयं चापरो महान् गुणः, स्निग्धेन भोजनेन मां प्रत्युद्गच्छति—कुत्र नु खलु गत आर्यवसन्तक इति ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

वासवदत्ता—[स्वगत] (कष्ट) होवे, होवे। (मुझे सन्तोष है)। मैंने इस कष्ट का वेतन भर पाया। अहो! यहाँ अज्ञात-वास में भी बहुत गुण हैं।

चेटी—राजकुमारि! भर्ता दाक्षिण्यहीन हैं।

पद्मावती—न सखि! ऐसा न कह। आर्यपुत्र दाक्षिण्य-युक्त ही हैं, जो अब तक भी आर्या वासवदत्ता के गुणों को याद करते हैं।

वासवदत्ता—भद्रे! आपने अपने उच्च कुल के अनुरूप बात कही।

राजा—मैंने तो कह दिया, अब तुम कहो। तुम्हें कौन प्यारी है—तब वासवदत्ता या अब पद्मावती?

पद्मावती—आर्यपुत्र भी वसन्तक हो गये!

विदूषक—इस सम्बन्ध में मेरा कहना व्यर्थ है। मेरे लिए तो दोनों ही बहुत अच्छी हैं।

राजा—मूर्ख! मुझसे बलपूर्वक सुनकर अब क्यों अपनी बार टालमटोल करते हो!

विदूषक—क्यों, मुझसे भी बलपूर्वक कहलाना चाहते हैं?

राजा—हां, बलपूर्वक।

विदूषक—तब तो सुन चुके।

राजा—प्रसन्न हों, प्रसन्न हों, महाब्राह्मण देवता। तो अपनी ही इच्छा से कहिए।

विदूषक—अच्छा तो आप सुनिए। माननीया वासवदत्ता मुझे बहुत प्रिय थीं। माननीया पद्मावती नवयुवती हैं, दर्शनीया हैं, अकोपना हैं, निरहंकारा हैं, एवं सुचतुरा हैं और उनमें एक सब से बड़ा गुण यह है कि स्निग्ध भोजन लेकर मेरी खोज करती हैं कि आर्य वसन्तक कहां गये।

भवतु भवतु अज्ञातवासादिपरिखेदः कामं भवतु। **वेतनम्** भृतिः फलमित्यर्थः ['विधाभृत्याभृतयो भर्म वेतनम्' इत्यमरः]। **बहुगुणः** बहुफलः अनेकशुभपरिणामयुक्तः। **अदाक्षिण्यः** दाक्षिण्यरहितः अविदग्धः। **अभिजनस्य** कुलस्य। **सदृशम्** अनुरूपम्। **मन्त्रितम्** उक्तम्। **मे विप्रलपितेन** मम अनर्थकवचसा। यद्वा—विप्रलपितेन तव विरुद्धवचसा। ['विप्रलापो विरुद्धोक्तावनर्थकवचस्यपि' इति हैमः।] भवता तु वासवदत्तायाः सातिशयसमुत्कर्षः प्रतिपादितः, मया तु स्निग्धभोजनादिना प्रत्युद्गच्छन्त्या पद्मावत्या एव विशिष्य प्रियतरत्वमुच्येतेति मे तव विरुद्धवचसा किम्, न किमपि प्रयोजनमिति भावः। **वैधेय** मूढ ['अज्ञे मूढयथाजातमूर्खवैधेयबालिशाः' इत्यमरः]। **महाब्राह्मण** इत्यपकर्षे। **स्वैरं स्वैरं** स्वच्छन्दतया। **अभिधीयताम्** उच्यताम्। **बहुमता**

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

वासवदत्ता—भोदु भोदु, वसन्तअ ! सुमरेहि दाणिं एदं ।

भवतु भवतु, वसन्तक ! स्मरेदानीमेताम् ।

राजा—भवतु भवतु, वसन्तक ! सर्वमेतत् कथयिष्ये देव्यै वासवदत्तायै ।

विदूषकः—अविहा वासवदत्ता । कहिं वासवदत्ता । चिरा खु उवरदा वासवदत्ता ।

अविहा वासवदत्ता । कुत्र वासवदत्ता । चिरात् खलूपरता वासवदत्ता ।

राजा—[सविषादम्] एवम् । उपरता वासवदत्ता । वयस्य !

अनेन परिहासेन व्याक्षिप्तं मे मनस्त्वया ।
ततो वाणी तथैवेयं पूर्वाभ्यासेन निस्सृता ॥६॥

पद्मावती—रमणीओ खु कहाजोओ णिसंसेण विसंवादिओ ।

रमणीयः खलु कथायोगो नृशंसेन विसंवादितः ।

वासवदत्ता—[आत्मगतम्] भोदु भोदु, विस्सत्थह्मि । अहो ! पिअं णाम, ईदिसं वअणं अप्पच्चक्खं सुणीअदि ।

भवतु भवतु, विश्वस्तास्मि । अहो ! प्रियं नाम, ईदृशं वचनमप्रत्यक्षं श्रूयते ।

विदूषकः—धारेदु धारेदु भवं । अणदिक्कमणीओ हि विही । ईदिसं दाणिं एदं ।

धारयतु धारयतु भवान् । अनतिक्रमणीयो हि विधिः । ईदृशमिदानीमेतत् ।

राजा—वयस्य ! न जानाति भवानवस्थाम् । कुतः,

दुःखं त्यक्तुं बद्धमूलोऽनुरागः
स्मृत्वा स्मृत्वा याति दुःखं नवत्वम् ।

अतिमान्या । **तरुणी** नवयौवना । **दर्शनीया** सौन्दर्यशालिनी **अकोपना** क्रोधरहिता अक्रोधशीला । **अनहङ्कारा** निरभिमानिनी अभिमानशून्या । **मधुरवाक्** मधुरभाषिणी । **सदाक्षिण्या** मृदुलहृदया । **स्निग्धेन** रुचिकरेण, सुस्वादुना ।

स्मरेति—इदानीं वासवदत्तामुपरतामाकलय्य अस्मिन् काले **एताम्** स्निग्धभोजनादिना त्वाम् आप्याययन्तीमिमां पद्मावतीम् **स्मर** प्रशंसेत्यर्थः । अथवा—'एदं' इत्यस्य 'एतत्' इति संस्कृते—एतत् यत् त्वयोक्तं तत् स्मर । वासवदत्ता त्वद्यापि जीवति, त्वया स्वकथितं नैव विस्मर्तव्यमिति भावः । **अविहा** इति शोकविषादयोः । **उपरता** मृता ।

"अनेन"ति—**अनेन परिहासेन त्वया मे मनः व्याक्षिप्तम्** वासवदत्ताव्यासक्तं

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

वासवदत्ता—अच्छा, अच्छा, वसन्तक ! अब इनको ही याद करो ।

राजा—अच्छा, अच्छा, वसन्तक ! यह सब देवी वासवदत्ता को कहूँगा ।

विदूषक—हाय ! वासवदत्ता । अत्र वासवदत्ता कहां ! बेचारी वासवदत्ता कभी की संसार से चल बसी ।

राजा—[बड़े शोक से] ऐसा ही है । अब वासवदत्ता कहां । सखे !

—इस परिहास से तुमने मेरा मन वासवदत्ता-संसक्त कर दिया । इसलिए पहले के चिर अभ्यास के कारण यह वाणी पहले जैसे ही बरबस (मेरे मुंह से) निकल पड़ी ॥६॥

पद्मावती—रमणीय कथा-प्रसङ्ग को निर्दयी ने बिगाड़ डाला ।

वासवदत्ता—[स्वगत] जो हो, मैं तो (पति-प्रेम से) विश्वस्त हुई । अहो ! बड़े आनन्द की बात है, जो परोक्ष में ऐसे वचन सुनने को मिले ।

विदूषक—धीरज धरिए, धीरज धरिए, महाराज । भवितव्यता को कौन टाल सकता है ? अब तो जो बात होनी थी, हो गई ।

राजा—सखे ! तुम मेरी मानसिक दशा को नहीं जानते; क्योंकि,

—अत्यन्त दृढ़ प्रेम भुलाये नहीं भुलाया जा सकता । बार-बार स्मरण करने से दुःख नया-नया होता जाता है । इस संसार में जब आदमी

कृतम् । **ततः** तस्मात् मनसः वासवदत्तास्मृतिपर्याकुलत्वाद् हेतोः, **पूर्वाभ्यासेन, इयम्** एषा **वाणी** वाक् 'सर्वमेतत् कथयिष्ये देव्यै वासवदत्तायै' इत्येवंरूपा **तथैव** वासवदत्ताया जीवितावस्थायां यथा **निस्सृता** स्वयं मुखाद् उद्गता ॥६॥

रमणीय इति—**रमणीयः** चित्ताकर्षणसुन्दरः । **कथायोगः** स्वदारविषयक-कथाप्रसङ्गः । **नृशंसेन** क्रूरेण निर्दयेन । **विसंवादितः** विच्छेदं प्रापितः **। धारयतु धारयतु** धैर्यमवलम्बतामित्यर्थः । हि निश्चितमेतत्, **विधिः** भवितव्यता **अनतिक्रमणीयः** अनुल्लङ्घनीयः । **इदानीम्** अस्मिन् काले **एतत्** इदमनुभूयमानं दुःखजातम् **ईदृशम्** ईदृक्रूपं दैवघटितमेवेत्यर्थः । सर्वमेतत्पर्यालोच्य नानुतपनीयमिति भावः ।

"दुःखमि"ति—**बद्धमूलः** चिरप्ररूढः **अनुरागः** वासवदत्ताविषयकं प्रेम **त्यक्तुं** परिहातुं स्मृतिपथादपनेतुम् **दुःखम्** अतिकठिनम् अशक्यं भवतीत्यर्थः, प्रगाढं प्रेम सुदुस्त्यजमिति भावः । **स्मृत्वा स्मृत्वा** वासवदत्तानिर्भरप्रेमसम्बन्धीनि पूर्वसंस्मरणानि पुनः पुनश्चिन्तयित्वा **दुःखं** प्रियाविरहशोकजनिता व्यथा **नवत्वं** नवताम् **याति** प्राप्नोति, वासवदत्ताया अतीतप्रेमसम्बन्धीनि संस्मरणानि पुनः पुनः संस्मृत्य नवनवी भवति दुःखमिति भावः । **इह** ईदृशे दुःखविषये, **यद्वा**—

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

यात्रा त्वेषा यद् विमुच्येह बाष्पं
प्राप्तानृण्या याति बुद्धिः प्रसादम् ॥७॥

विदूषकः—अस्सुपादकिलिण्णं खु तत्तहोदो मुहं । जाव मुहोदअं आणेमि । [निष्क्रान्तः]

अश्रुपातक्लिन्नं खलु तत्रभवतो मुखम् । यावन्मुखोदकमानयामि ।

पद्मावती—अय्ये ! बप्फाउलपडन्तरिदं अय्यउत्तस्स मुहं । जाव णिक्कमह्म ।

आर्ये ! वाष्पाकुलपटान्तरितमार्यपुत्रस्य मुखम् । यावन्निष्क्रामामः ।

वासवदत्ता—एव्वं होदु । अहव चिट्ठ तुवं । उक्कण्ठिदं भत्तारं उज्झिअ अजुत्तं णिग्गमणं । अहं एव्व गमिस्सं ।

एवं भवतु । अथवा तिष्ठ त्वम् । उत्कण्ठितं भर्तारमुज्झित्वायुक्तं निर्गमनम् । अहमेव गमिष्यामि ।

चेटी—सुट्ठु अय्या भणादि । उपसप्पदु दाव भट्टिदारिआ ।

सुष्ठ्वार्या भणति । उपसर्पतु तावद् भर्तृदारिका ।

पद्मावती—किं णु खु पविसामि ।

किं नु खलु प्रविशामि ।

वासवदत्ता—हला ! पविस । [इत्युक्त्वा निष्क्रान्ता]

हला ! प्रविश ।

[प्रविश्य]

विदूषकः—[नलिनीपत्रेण जलं गृहीत्वा] एसा तत्तहोदी पदुमावदी ।

एषा तत्रभवती पद्मावती ।

पद्मावती—अय्य वसन्तअ ! किं एदं ।

आर्य वसन्तक ! किमेतत् ।

विदूषकः—एदं इदं । इदं एदं ।

एतदिदम् । इदमेतत् ।

पद्मावती—भणादु भणादु अय्यो भणादु ।

भणतु भणत्वार्यो भणतु ।

इह अस्मिन् लोके **बुद्धिः** हृदयमित्यर्थः **बाष्पम्** अश्रुजलम् **विमुच्य** विसृज्य अविरताश्रुजलपातनेन हार्दं दुःखं प्रदर्श्येत्यर्थः, अत एव **प्राप्तानृण्या** प्राप्तम् आसादितम् आनृण्यं प्रमीतं प्रियजनं प्रति कर्तव्यरूपऋणस्याभावो यया सा तथोक्ता कृतकार्या सती **प्रसादं** प्रसन्नतां शान्तिमित्यर्थः, **याति** गच्छति । यथा परस्य धनादिकं देयमृणमपाकृत्य प्रसन्नं भवति चेतस्तद्वदेवेति भावः । इति **यद्**, **एषा तु** इयमेव **यात्रा** लोकरीतिः ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

(दिवंगत के शोक में) रोकर आंसू बहा लेता है तो चित्त अश्रु-पातन-रूप ऋण से मुक्त होकर शान्त हो जाता है; यही संसार की रीति है ।।७।।

विदूषक—महाराज का मुँह आंसुओं से भीग गया । अच्छा, मुँह धोने के लिए थोड़ा जल ले आऊं ।

[प्रस्थान]

पद्मावती—आर्ये ! आर्यपुत्र का चेहरा आंसुओं से तर हुए रूमाल से ढका हुआ है । आओ, इस बीच यहां से निकल चलें ।

वासवदत्ता—ऐसा ही सही । अथवा तुम ठहरो । उत्कण्ठित हुए भर्ता को छोड़-कर तुम्हारा इस तरह चला जाना ठीक नहीं । मैं ही जाऊंगी ।

चेटी—आर्या ने बहुत अच्छा कहा । राजकुमारी महाराज के समीप जाएं ।

पद्मावती—तो क्या सचमुच मैं जाऊँ ?

वासवदत्ता—हां, सखि ! अवश्य जाओ ।

[इतना कहकर वासवदत्ता का प्रस्थान]

[विदूषक का प्रवेश]

विदूषक—[कमल के पत्ते से जल लिये हुए] ओह ! यह तो पूज्या पद्मावती आईं ।

पद्मावती—आर्य वसन्तक ! यह क्या ?

विदूषक—यह-यह, यह-यह……!

पद्मावती—कहो कहो आर्य ! कहो ।

शोकक्षुभितचेतसामश्रुजलपातनेन शान्ततया स्वाभाविकं प्रकृतावनवस्थान-मिति भावः । शालिनीवृत्तम् ।।७।।

अश्रुपातक्लिन्नम् अश्रूणां नेत्रजलानां पातेन पतनेन हेतुना क्लिन्नम् आर्द्रम् । **मुखोदकम्** मुखप्रक्षालनार्थं सलिलम् । **आर्ये** अयि आवन्तिके । **आर्य-पुत्रस्य मुखं बाष्पाकुलपटान्तरितम्** बाष्पाकुलम् अश्रुजलव्याप्तम् अत एव पटान्तरितं मुखप्रोञ्छनवाससा आच्छादितम् । **निष्क्रामामः** निर्गच्छामः । भर्तरि बाष्परुद्धदृष्टिप्रसरे वसन्तके च उदकमानेतुं निर्गते सुनिर्गमः खल्वयमवसरो नोपेक्षितव्य इति भावः । **उत्कण्ठितम्** उत्कण्ठा प्रियजनं प्रति उत्कलिका, सा सञ्जाता अस्य इति उत्कण्ठितम् , प्रियास्मृतिव्यसनप्राप्तमित्यर्थः । **भर्तारं** पतिम् । **उज्झित्वा** त्यक्त्वा । **निर्गमनम्** पलायनम् । **उपसर्पतु** अन्तिके गच्छतु । चेट्या उपसर्पणाय प्रेरिता पद्मावती आवन्तिकां परिपृच्छति—**किंनु** इति नु इति प्रश्ने । **नलिनीपत्रेण** कमलिनी दलेन । **'एतदिदम् । इदमेतद्'** इति अतर्कितोपनतां पद्मावतीं दृष्ट्वा 'किमेतद्' इति तत्कृतप्रश्नस्योत्तरणे वस्तुरहस्यमुद्घाटयितुम-

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

विदूषकः—भोदि ! वादणीदेण कासकुसुमरेणुणा अक्खिणिपडिदेण सस्सुपादं खु तत्तहोदो मुहं । ता गह्णदु होदी इदं मुहोदअं ।

भवति ! वातनीतेन काशकुसुमरेणुनाक्षिनिपतितेन साश्रुपातं खलु तत्रभवतो मुखम् । तद् गृह्णातु भवतीदं मुखोदकम् ।

पद्मावती—[आत्मगतम्] अहो ! सदक्खिञ्ञस्स जणस्स परिजणो वि सदक्खिञ्ञो एव्व होदि । [उपेत्य] जेदु अय्यउत्तो । इदं मुहोदअं ।

अहो ! सदाक्षिण्यस्य जनस्य परिजनोऽपि सदाक्षिण्य एव भवति । जयत्वार्यपुत्रः इदं मुखोदकम् ।

राजा—अये । पद्मावती । [अपवार्य] वसन्तक ! किमिदम् ।

विदूषकः—[कर्णे] एव्वं विअ ।

एवमिव ।

राजा—साधु वसन्तक, साधु । [आचम्य] पद्मावति ! आस्यताम् ।

पद्मावती—जं अय्यउत्तो आणवेदि । [उपविशति]

यदार्यपुत्र आज्ञापयति ।

राजा—पद्मावति !

शरच्छशाङ्कगौरेण वाताविद्धेन भामिनि ।
काशपुष्पलवेनेदं साश्रुपातं मुखं मम ॥८॥

[आत्मगतम्]

इयं बाला नवोद्वाहा सत्यं श्रुत्वा व्यथां व्रजेत् ।
कामं धीरस्वभावेयं स्त्रीस्वभावस्तु कातरः ॥९॥

निच्छतो वसन्तकस्य, कल्पितोत्तरस्य झटित्यस्फुरणात् नलिनीदलं तद्गतनीरं चोद्दिश्य ससम्भ्रमोक्तिः । **भणतु भणतु** इति असकृदुक्तिः सम्भ्रमातिशयं द्योतयति । **वातनीतेन** पवनचालितेन । **काशकुसुमरेणुना** काशपुष्पपरागेण । **अक्षिनिपतितेन** चक्षुरन्तःप्रविष्टेन । **खलु** निश्चयेन । **तत्रभवतः** माननीयमहाराजस्य । **साश्रुपातम्** अश्रुजलयुक्तं जातमित्यर्थः ।

सदाक्षिण्यस्य दाक्षिण्ययुक्तस्य, सुविदग्धस्य । **परिजनः** परिचारकजनः । **अपवार्य** रहस्यं श्रोतुं पद्मावत्याः परावर्त्य । अपवारितलक्षणं यथा—'रहस्यं कथ्यतेऽन्यस्य परावृत्याऽपवारितम् ।' इति । **एवमिव**—अनेन प्रकारेण पद्मावतीमुक्त्वा मया रहस्यसंगोपनं कृतमित्यर्थः ।

"**शरदि**"ति—**भामिनी** । अयि प्रमदे । **शरच्छशाङ्कगौरेण** शरच्छशाङ्क-

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

विदूषक—माननीये ! महाराज की आंखों में हवा से उड़कर काश-कुसुम की पराग जा पड़ी। इसी से आंसू बहकर उनका चेहरा भीग गया। तो, लीजिए आप, यह मुँह धोने के लिए जल है।

पद्मावती—[स्वगत] ओह ! चतुर जनों के सेवक भी चतुर ही होते हैं। [समीप जाकर] जय हो आर्यपुत्र की।

राजा—ऐं ! पद्मावती ! [अलग से] वसन्तक ! यह क्या ?

विदूषक—[कान में] ऐसी बात है।

राजा—वाह ! वसन्तक, वाह ! [आचमन करके] पद्मावति ! बैठिए।

पद्मावती—आर्यपुत्र की जैसी आज्ञा। [बैठती है]

राजा—पद्मावति !

—काश-कुसुम के शरच्चन्द्र के समान शुभ्र पराग हवा से उड़कर मेरी आंखों में आ पड़ा। हे सुन्दरि ! इसी से आंसू बहकर मेरा मुँह भीग गया ॥८॥

[स्वगत]

—यह बाला एवं नव-विवाहिता है। यदि सच्ची बात कह दूं तो सुनकर इसे बड़ा दुःख होगा। माना कि यह बहुत ही धीर स्वभाव वाली है, पर नारी-प्रकृति स्वभावतः कातर हुआ करती है ॥९॥

शरच्चन्द्र इव गौरः विशदस्तेन तथाभूतेन **वाताविद्धेन** वातेन वायुना आविद्धेन आक्षिप्तेन **काशपुष्पलवेन** काशकुसुमरजसा **इदम्** एतत् **मम** मदीयम् **मुखं** वदनम् **साश्रुपातम्** अविरताश्रुजलपातयुक्तं जातमिति शेषः। चक्षुरन्तःप्रविष्टेन सता काशकुसुमरजसा निरगलदेषः अश्रुप्रवाहः न तु केनापि हार्देन विकारेणेति व्याजोक्तिविहितं सत्यसंगोपनमवसेयम् ॥८॥

'इयमि'ति—**इयं** पद्मावती **बाला** अप्रौढा **नवोद्वाहा** नवोऽभिनवः अचिरनिर्वृत्तः उद्वाहः विवाहो यस्यास्तथाभूता सद्यःपरिणीता अस्तीत्यर्थः, विशेषणद्वयं तस्याः पारमार्थिकव्यथाश्रवणायोग्यत्वमावेदयति। **सत्यं** तथ्यम् 'अयमश्रुपातः वासवदत्तास्मृतिविषादजन्यः' इत्येवं वास्तविकहेतुम् **श्रुत्वा** आकर्ण्य **व्यथां** गुरुतरवेदनाम् **व्रजेत्** यायात्। यद्यपि, **इयम्** एषा **कामं** पर्याप्तम् **धीरस्वभावा** धीरप्रकृतिः, **तु** तथापि **स्त्रीस्वभावः** सामान्येन स्त्रीप्रकृतिः **कातरः** अधीरः भवतीत्यर्थः।

कदाचिदियमपि स्त्रीस्वभावसुलभया कातरतया परमार्थश्रवणेन पर्याकुलीभवेदिति हेतोरलीकवृत्तोपन्यसनमेव श्रेय इति भावः। व्यथाप्राप्तिं प्रति 'बाला' 'नवोद्वाहा' इति पदयोरर्थो हेतुरिति पदार्थहेतुकं काव्यलिङ्गम् ॥९॥

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

विदूषकः—उइदं तत्तहोदो मग्रधराग्रस्स ग्रवरह्लकाले भवन्तं ग्रग्गदो करिग्र सुहिज्जणदंसणं । सक्कारो हि णाम सक्कारेण पडिच्छिदो पीदिं उप्पादेदि । ता उट्ठेदु दाव भवं ।

उचितं तत्रभवतो मगधराजस्यापराह्लकाले भवन्तमग्रतः कृत्वा सुहृज्जनदर्शनम् । सत्कारो हि नाम सत्कारेण प्रतीष्टः प्रीतिमुत्पादयति । तदुत्तिष्ठतु तावद् भवान् ।

राजा—बाढम् । प्रथमः कल्पः । [उत्थाय]

गुणानां वा विशालानां सत्काराणां च नित्यशः ।
कर्तारः सुलभा लोके विज्ञातारस्तु दुर्लभाः ॥१०॥

[निष्क्रान्ताः सर्वे]

इति चतुर्थोऽङ्कः ।

अथ वासवदत्तास्मृतिविषादजनितमुखवैवर्ण्यचित्तास्थैर्यहेतोः राज्ञः पद्मावतीसम्मुखं चिरमवस्थातुमक्षमतामाकलय्य विदूषकः प्रकृतं विच्छिद्य प्रसङ्गान्तरमारभते—"**उचितमि**"ति । **तत्रभवतः** माननीयस्य **मगधराजस्य** महाराजदर्शकस्य **भवन्तं** वत्सराजम् **अग्रतः कृत्वा** विशेषसम्मानसमुदाचारात् सर्वेषामपि उपस्थितानाम् अग्रे विधाय **अपराह्लकाले** मध्याह्नोत्तरकाले **सुहृज्जनदर्शनं** मित्रमण्डलदर्शनम **उचितम्** मङ्गलदिवसेषु कर्तव्यत्वेन निश्चितं । **हि** निश्चयेन **सत्कारो नाम** पूजा **सत्कारेण प्रतीष्टः** सादरं पूज्येन अङ्गीकृतः **प्रीतिं** समधिकं प्रेम **उत्पादयति** जनयति । **प्रथमः कल्पः** प्रधानं कृतम् ।

"**गुणानामि**"ति—**विशालानाम्** अतिमहताम् **गुणानां** परोपकारौदार्यादीनाम् , **वा, विशालानां सत्काराणां** प्रियजनसभाजनसमभ्यर्चनादीनां **च नित्यशः** अहरहः **कर्तारः** अनुष्ठातारः **लोके** संसारे **सुलभाः** बहुलाः सन्ति, **तु** किन्तु **विज्ञातारः** विशालानां गुणानां सततसत्काराणां च विशेषज्ञानशालिनो गुणग्राहिणः कृतसत्कारज्ञाश्च **दुर्लभाः** विरलाः, सन्तीत्यर्थः । अप्रस्तुतप्रशंसालङ्कारः ॥१०॥

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

विदूषक—महाराज ! अपराह्णकाल में माननीय मगधराज आपको आगे करके अपने सुहृद-जनों से भेंट करेंगे। निस्सन्देह, सत्कार सत्कार्य द्वारा आदरपूर्वक स्वीकार किये जाने पर ही परस्पर प्रीति को बढ़ाता है। इसलिए, आप उठिए।

राजा—बहुत अच्छा। यह तो मुख्य कर्तव्य है। [उठकर]

—विशाल गुणों और नित्यप्रति विशाल सत्कारों के करने वाले तो संसार में अनेकों हैं, पर उन विशाल गुणों को परखने वाले गुणग्राही और किये गये सत्कारों को मानने वाले सत्कारमानी विरले ही हैं ॥१०॥

[सब का प्रस्थान]

चौथा अङ्क समाप्त।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

अथ पञ्चमोऽङ्कः

[ततः प्रविशति पद्मिनिका]

पद्मिनिका—महुअरिए ! महुअरिए ! आअच्छ दाव सिग्घं ।

मधुकरिके ! मधुकरिके ! आगच्छ तावच्छीघ्रम् ।

[प्रविश्य]

मधुकरिका—हला ! इअह्मि । किं करीअदु ।

हला ! इयमस्मि । किं क्रियताम् ।

पद्मिनिका—हला ! किं ण जाणासि तुवं भट्टिदारिआ पदुमावदी सीसवेदणाए दुक्खाविदेत्ति ।

हला ! किं न जानासि त्वं भर्तृदारिका पद्मावती शीर्षवेदनया दुःखितेति ।

मधुकरिका—हद्धि ।

हा ! धिक् ।

पद्मिनिका—हला ! गच्छ सिग्घं, अय्यं आवन्तिअं सद्दावेहि । केवलं भट्टिदारिआए सीसवेदणं एव्व णिवेदेहि । तदो सअं एव्व आगमिस्सदि ।

हला ! गच्छ शीघ्रम्, आर्यामावन्तिकां शब्दापय । केवलं भर्तृदारिकायाः शीर्षवेदनामेव निवेदय । ततः स्वयमेवागमिष्यति ।

मधुकरिका—हला ! किं सा करिस्सदि ।

हला ! किं सा करिष्यति ।

पद्मिनिका—सा हु दाणिं महुराहि कहाहि भट्टिदारिआए सीसवेदणं विणोदेदि ।

सा खल्विदानीं मधुराभिः कथाभिर्भर्तृदारिकायाः शीर्षवेदनां विनोदयति ।

मधुकरिका—जुज्जइ । कहिं सअणीयं रइदं भट्टिदारिआए ।

युज्यते । कुत्र शयनीयं रचितं भर्तृदारिकायाः ?

पद्मिनिका—समुद्दगिहके किल सेज्जात्थिण्णा । गच्छ दाणिं तुवं । अहं वि भट्टिणो णिवेदणत्थं अय्यवसन्तअं अण्णेसामि ।

समुद्रगृहके किल शय्यास्तीर्णा । गच्छेदानीं त्वम् । अहमपि भर्त्रे निवेदनार्थमार्यवसन्तकमन्विष्यामि ।

मधुकरिका—एव्वं होदु । [निष्क्रान्ता]

एवं भवतु ।

CC-0 Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

पांचवां अङ्क

[पद्मिनिका का प्रवेश]

पद्मिनिका—मधुकरिका ! अरी मधुकरिका ! शीघ्र आ ।

[मधुकरिका का प्रवेश]

मधुकरिका—सखि ! मैं यह हूँ । क्या काम है ?

पद्मिनिका—अरी ! क्या तुम नहीं जानतीं कि राजकुमारी पद्मावती सिर की पीड़ा से दुःखित हैं ।

मधुकरिका—ओह ! बड़े दुःख की बात है ।

पद्मिनिका—अरी ! शीघ्र जा । आर्या आवन्तिका को कहना तो । केवल राजकुमारी की सिर-पीड़ा की बात ही कहना । तब वह स्वयं ही चली आयेंगी ।

मधुकरिका—अरी ! इसमें वे क्या करेंगी ?

पद्मिनिका—वे इस समय मनोरंजक कहानियों से राजकुमारी का मन बहला कर सिर-पीड़ा को दूर करेंगी ।

मधुकरिका—ठीक है । राजकुमारी का बिस्तर कहां बिछाया गया है ?

पद्मिनिका—समुद्र-गृह में शय्या बिछाई हुई है । अब तू जा । मैं भी भर्ता को सूचना देने के लिए आर्य वसन्तक को खोजती हूँ ।

मधुकरिका—अच्छी बात है । [प्रस्थान]

अथ पञ्चमाङ्के कथावस्तुसूचनायादौ प्रवेशकं तदनुगुणैः पद्मिनिकामधुकरिकाविदूषकैः प्रयोजयिष्यन् प्रथमं पद्मिनिकां प्रवेशयति—"**ततः प्रविशति पद्मिनिका**" इति ।

पद्मिनिका मधुकरिका इत्युभे अन्तःपुरपरिचारिके । **शीर्षवेदनया** शिरोव्यथया । **शब्दापय** आकारय । **निवेदय** कथय । **मधुराभिः** मनोरञ्जनक्षमाभिः । **विनोदयति** अपहरति अपनयति । **समुद्रगृहके** जलयन्त्रसुशोभिते ग्रीष्मसुखकरे निकेतने ['समुद्रगृहमित्युक्तं जलयन्त्रनिकेतनम्' इति हारावती] ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

पद्मिनिका—कहिं दाणिं अय्यवसन्तअं पेक्खामि ।

कुत्रेदानीमार्यवसन्तकं पश्यामि ।

[ततः प्रविशति विदूषकः]

विदूषकः—अज्ज खु देवीविओअविहुरहिअअस्स तत्तहोदो वच्छराअस्स पदुमावदीपाणिग्गहणसमीरिअस्स अच्चन्तसुहावहे मङ्गलोसवे मदणग्गिदाहो अहिअदरं वहइ । [पद्मिनिकां विलोक्य] अयि ! पदुमिणिआ । पदुमिणिए ! किं इह वत्तदि ।

अद्य खलु देवीवियोगविधुरहृदयस्य तत्रभवतो वत्सराजस्य पद्मावतीपाणिग्रहणसमीरितस्यात्यन्तसुखावहे मङ्गलोत्सवे मदनाग्निदाहोऽधिकतरं वर्धते । अयि । पद्मिनिका ! पद्मिनिके ! किमिह वर्तते ।

पद्मिनिका—अय्य वसन्तअ ! किं ण जाणासि तुवं भट्टिदारिआ पदुमावदी सीसवेदणाए दुक्खाविदेत्ति ।

आर्य वसन्तक ! किं न जानासि त्वं भर्तृदारिका पद्मावती शीर्षवेदनया दुःखितेति ।

विदूषकः—भोदि ! सच्चं, ण जाणामि ।

भवति ! सत्यम्, न जानामि ।

पद्मिनिका—तेण हि भट्टिणो णिवेदेहि णं । जाव अहं वि सीसाणुलेवणं तुवारेमि ।

तेन हि भर्त्रे निवेदयैनाम् । यावदहमपि शीर्षानुलेपनं त्वरयामि ।

विदूषकः—कहिं सअणीअं रइदं पदुमावदीए ।

कुत्र शयनीयं रचितं पद्मावत्याः ।

पद्मिनिका—समुद्दगिहके किल सेज्जात्थिण्णा ।

समुद्रगृहके किल शय्यास्तीर्णा ।

विदूषकः—गच्छदु भोदी । जाव अहं वि तत्तहोदो णिवेदइस्सं ।

गच्छतु भवती । यावदहमपि तत्रभवते निवेदयिष्यामि ।

[निष्क्रान्तौ]

प्रवेशकः ।

[ततः प्रविशति राजा]

राजा—

श्लाघ्यामवन्तिनृपतेः सदृशीं तनूजां
कालक्रमेण पुनरागतदारभारः ।

देवीवियोगेति—देव्याः वासवदत्तायाः वियोगेन विच्छेदशोकेन हेतुना पूर्वं विधुरं विषयादिपराङ्मुखं हृदयं मनो यस्य स तस्य । **पद्मावतीति**—पद्मावत्याः

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

पद्मिनिका—इस समय आर्य वसन्तक को कहां देखूं ?

[विदूषक का प्रवेश]

विदूषक—देवी वासवदत्ता के वियोग से दुःखित हृदय वाले महाराज वत्सराज की विरहाग्नि की जलन आज इस सुखमय मङ्गलोत्सव में पद्मावती के विवाहरूपी वायु से उत्तेजित होकर और भी बढ़ गई है। [पद्मिनिका को देखकर] अरे ! यहां तो पद्मिनिका है। पद्मिनिके ! क्या समाचार है ?

पद्मिनिका—आर्य वसन्तक ! क्या तुम्हें मालूम नहीं कि राजकुमारी पद्मावती सिर की पीड़ा से दुःखित हैं ?

विदूषक—श्रीमति ! सच ? मुझे तो नहीं मालूम।

पद्मिनिका—तो स्वामी को इसकी सूचना दो। तब तक मैं भी सिर के लिए लेप तैयार करूँ।

विदूषक—पद्मावती का विस्तर कहां बिछाया गया है ?

पद्मिनिका—समुद्र-गृह में शय्या बिछाई गई है।

विदूषक—अच्छा, आप जावें। मैं भी महाराज को सूचना देता हूँ।

[दोनों का प्रस्थान]

प्रवेशक

[राजा का प्रवेश]

राजा—वासवदत्ता के चल बसने से बहुत समय के पश्चात् यद्यपि मैंने फिर विवाह कर लिया है, किन्तु अपने पिता अवन्ति-राज के समान गुणों

महाराजदर्शकस्वसुः पाणिग्रहणेन तथा समं विवाहेन समीरितस्य विषयाकृष्टचेतस इत्यर्थः। **अत्यन्तसुखावहे** अत्यानन्दकरे। **मदनाग्निदाहः** कामाग्निजनितसंतापः। **शीर्षानुलेपनं** शिरोरुजापहं लेपनौषधम्। **त्वरयामि** सद्यः सम्पादयामि।

"**श्लाघ्यामि**"ति—**कालक्रमेण** गच्छता कालेन, वासवदत्तायामुपरतायां चिरकालातिक्रमणानन्तरमित्यर्थः, **पुनरागतदारभारः** पुनः पश्चाद् आगतः प्राप्तः दाराणां कलत्रान्तरस्य भारः विवाहरूपो यस्य तथाभूतः अहम् **श्लाघ्याम्** अतिप्रशस्याम् **अवन्तिनृपतेः** महाराजप्रद्योतस्य **सदृशीं** समगुणां गुणैः प्रद्योतानुकारिणीम् **तनूजाम्** कन्याम् **लावाणके** लावाणकनाम्नि ग्रामे **हुतवहेन** अग्निना **हृताङ्गयष्टिम्** अङ्गं शरीरं यष्टिः यष्टिकेव इत्यङ्गयष्टिः तनुप्रशस्तशरीरम् [यष्टिका—छड़ी], हृता दाहदग्धा अङ्गयष्टिर्यस्यास्तथाभूताम् **तां** प्रेमातिशयेन मानसानुभवविषयां वासवदत्ताम् **हिमहतां** हिमेन तुषारपातेन हतां नाशिताम् **पद्मिनीम् इव** नलिनीम् इव **चिन्तयामि** स्मरामि। 'पुनरागतदारभारः' इति सत्यपि हेताव-

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

लावाणके हुतवहेन हृताङ्गयष्टिं
तां पद्मिनीं हिमहतामिव चिन्तयामि ॥१॥

[प्रविश्य]

विदूषकः—तुवरदु तुवरदु दाव भवं।
त्वरतां त्वरतां तावद् भवान्।

राजा—किमर्थम्।

विदूषकः—तत्तहोदी पदुमावदी सीसवेदणाए दुक्खाविदा।
तत्रभवती पद्मावती शीर्षवेदनया दुःखिता।

राजा—कैवमाह।

विदूषकः—पदुमिणिआए कहिदं।
पद्मिनिकया कथितम्।

राजा—भोः! कष्टम्।

रूपश्रिया समुदितां गुणतश्च युक्तां
लब्ध्वा प्रियां मम तु मन्द इवाद्य शोकः।
पूर्वाभिघातसरुजोऽप्यनुभूतदुःखः
पद्मावतीमपि तथैव समर्थयामि ॥२॥

अथ कस्मिन् प्रदेशे वर्तते पद्मावती।

विदूषकः—समुद्दगिहके किल सेज्जात्थिण्णा।
समुद्रगृहके किल शय्यास्तीर्णा।

राजा—तेन हि तस्य मार्गमादेशय।

विदूषकः—एदु एदु भवं। [उभौ परिक्रामतः]
एतु एतु भवान्।

विदूषकः—इदं समुद्दगिहकं। पविसदु भवं।
इदं समुद्रगृहकम्। प्रविशतु भवान्।

राजा—पूर्वं प्रविश।

चिन्तनरूपतत्कार्यस्याकथनाद् विशेषोक्तिः। यथोक्तम्—'सति हेतौ फलाभावे विशेषोक्तिर्निगद्यते' इति। पद्मिनीमिवेत्युपमा। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥१॥

"**रूपश्रिया**" इति **रूपश्रिया** सातिशयसौन्दर्यलक्ष्म्या **समुदितां** समुज्ज्वलाम् **गुणतः** विनयमार्दवदयौदार्यादिभिः सुललनासमुचितैः गुणैः च, **युक्ताम्** अलंकृताम् **प्रियाम्** प्रेमयुक्तां पद्मावतीम् **लब्ध्वा** नवपत्नीत्वेन प्राप्य **पूर्वाभिघातसरुजः अपि** पूर्वः प्रथमः यः अभिघातः वासवदत्तावियोगरूपस्तेन सरुजः मर्मव्यथितस्यापि **मम** मे, **शोकः तु, अद्य** इदानीम् **मन्द इव** किञ्चिन्न्यून एव अस्तीति

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

वाली, अति प्रशंसा योग्य उस वासवदत्ता का (प्रतिक्षण) स्मरण आता रहता है, जिसका (छड़ी-जैसा छरहरा) कोमल शरीर, हिम से नष्ट हुई कमलिनी के समान, लावाणक में अग्नि से जल गया ॥१॥

[विदूषक का प्रवेश]

विदूषक—महाराज ! शीघ्रता कीजिए, शीघ्रता कीजिए।

राजा—किस लिए ?

विदूषक—माननीया पद्मावती सिर की पीड़ा से दुःखित हैं।

राजा—किसने तुमसे ऐसा कहा ?

विदूषक—मुझसे पद्मिनिका ने कहा।

राजा—ओह ! बड़े दुःख की बात है।

—(वासवदत्ता के विरह-रूपी) पहले आघात से व्यथित हुए भी मेरा शोक, अब, सौन्दर्य-शोभा से जगमगाती हुई और गुणों से युक्त (पद्मावती-जैसी) प्रिय-पत्नी को पाकर तनिक मन्द-सा था। किन्तु (वासवदत्ता-विरह-जनित) दुःख का धक्का खाने से पद्मावती के विषय में भी (उसके बीमार होने की बात सुनकर) मेरा मन उसी तरह दुःशङ्का-युक्त हो गया है ॥२॥

पद्मावती इस समय कहां है ?

विदूषक—समुद्र-गृह में शय्या बिछाई गई है।

राजा—तो उसका रास्ता बतलाओ।

विदूषक—आइए, आइए, महाराज ! [दोनों घूमते हैं]

विदूषक—यह समुद्र-गृह है। चलिए महाराज !

राजा—पहले तुम चलो।

शेषः। **अनुभूतदुःखः** अनुभूतं दुःखं वासवदत्तानिधनजनितं येन तथाभूतोऽहम् **पद्मावतीमपि** तदस्वस्थवार्ताश्रवणेन **तथैव** वासवदत्तानिधनसमानमेव **समर्थयामि** सम्भावयामि शङ्के।

यथा मम दौर्भाग्याद् वासवदत्तोपरता तथैवेयं पद्मावत्यपि न खलूपरता स्यादिति बिभेमीति भावः। अत्र पूर्वाभिघातसरुजोऽपि मन्द इत्यपिशब्दोत्थो विरोधः। शोकस्य मन्दत्वं प्रति 'रूपश्रिया समुदितां गुणतश्च युक्तां प्रियां लब्ध्वा' इति समुदितवाक्यार्थो हेतुरिति वाक्यार्थहेतुकं काव्यलिङ्गमेकम्। यतोऽनुभूत-दुःखः, अतः पद्मावतीमपि तथैव समर्थयामीति पदार्थहेतुकं काव्यलिङ्गं द्वितीयम्। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥२॥

मार्गम् पन्थानम्। **आदेशय** बोधय निर्दिश, अग्रे भवेत्यर्थः।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

विदूषकः—भो ! तह । [प्रविश्य] अविहा ! चिट्ठदु चिट्ठदु दाव भवं ।

भोः ! तथा । अविहा ! तिष्ठतु तिष्ठतु तावद् भवान् ।

राजा—किमर्थम् ।

विदूषकः—एसो खु दीवप्पभावसूइदरूवो वसुधातले परिवत्तमाणो अअं काओदरो ।

एष खलु दीपप्रभावसूचितरूपो वसुधातले परिवर्तमानोऽयं काकोदरः ।

राजा—[प्रविश्यावलोक्य सस्मितम्] अहो ! सर्पव्यक्तिर्वैधेयस्य ।

ऋज्वायतां हि मुखतोरणलोलमालां
भ्रष्टां क्षितौ त्वमवगच्छसि मूर्ख ! सर्पम् ।
मन्दानिलेन निशि या परिवर्तमाना
किञ्चित् करोति भुजगस्य विचेष्टितानि ॥३॥

विदूषकः—[निरूप्य] सुट्ठु भवं भणादि । ण हु अअं काओदरो । [प्रविश्यावलोक्य] तत्तहोदी पदुमावदी इह आअच्छिअ णिग्गदा भवे ।

सुष्ठु भवान् भणति । न खल्वयं काकोदरः । तत्रभवती पद्मावतीहागत्य निर्गता भवेत् ।

राजा—वयस्य ! अनागतया भवितव्यम् ।

विदूषकः—कहं भवं जाणादि ।

कथं भवान् जानाति ।

राजा—किमत्र ज्ञेयम् । पश्य,

शय्या नावनता तथास्तृतसमा न व्याकुलप्रच्छदा
न क्लिष्टं हि शिरोपधानममलं शीर्षाभिघातौषधैः ।

दीपप्रभेति—दीपप्रभया दीपकप्रकाशेन अवसूचितं रूपम् आकारो यस्य सः । **वसुधातले** भुवि । **परिवर्तमानः** परिसर्पन् परिलुठन् । **काकोदरः** काकम् ईषत्कुटिल-गतिमद् उदरं यस्य सः, सर्प इत्यर्थः । **सर्पव्यक्तिः** भ्रान्त्या सर्पभासः । **वैधेयस्य** मूर्खस्य ।

"ऋज्वायतामि"ति—**मूर्ख** ! हे मूढ ! **हि** निश्चयेन **त्वम् ऋज्वायताम्** ऋजुः सरला चासौ आयता दीर्घा च ताम्, अनेन भ्रान्त्युत्पादकसर्पाकारसादृश्यं द्योतितम्, **क्षितौ** भुवि **भ्रष्टां** बन्धनाद् अधश्च्युताम् **मुखतोरणलोलमालां** मुखतोरणे समुद्रगृहकस्य मुख्यबहिर्द्वारे लोला चलनशीला या माला स्रक् ताम् **सर्पम्** भुजङ्गम् **अवगच्छसि** भ्रान्त्या सर्पोऽयम् इति प्रत्येषि, **या** या माला **निशि** रात्रौ **मन्दानिलेन** मन्दमारुतेन **परिवर्तमाना** परिसर्पन्ती **भुजगस्य** सर्पस्य

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

विदूषक—बहुत अच्छा। [प्रवेश करके] बाप रे बाप! ठहरिए, ठहरिए, महाराज!

राजा—किस लिए?

विदूषक—यह जमीन पर लोटता हुआ सांप दीये के उजाले में साफ़ दिखाई दे रहा है।

राजा—[प्रवेश करके देखकर मुस्कराता हुआ] ओह! यह मूर्ख इसे सांप समझ रहा है।

—मूर्ख! तू (समुद्र-गृह के) मुख्य तोरण (बहिर्द्वार) से जमीन पर गिरी हुई, सीधी लम्बी, हिलती हुई माला को सांप समझ रहा है, जो रात की मन्द-मन्द पवन से कुछ हिलती हुई सांप की-सी चेष्टाएं कर रही है॥३॥

विदूषक—[अच्छी तरह देखकर] आप ठीक कहते हैं। यह सांप नहीं है। [भीतर जाकर और देखकर] जान पड़ता है, माननीया पद्मावती यहां आकर चली गई।

राजा—उसका यहां आना प्रकट नहीं होता।

विदूषक—आपने कैसे जाना?

राजा—इसमें जानने की क्या बात है। देखो,

—बिछौना नीचे दबा हुआ नहीं है, उसी तरह चौरस बिछा पड़ा है। बिछौने के ऊपर की चादर भी सिमटी (सिकुड़ी) हुई नहीं है। निर्मल

विचेष्टितानि सर्पसुलभचलनानि **किञ्चित्** किमपि अल्पं **करोति**। अनेन सर्पभ्रमप्रयोजकचेष्टाधर्म उक्तः। अत्र कविप्रतिभया स्रजि सर्पभ्रमाद् भ्रान्तिमानलङ्कारः। वसन्ततिलकम्॥३॥

"**शय्या**" इति—हि यतः **शय्या** शयनीयम्। **तथास्तृतसमा** तथा यथापूर्वम् आस्तृता कृतास्तरणा चासौ समा अविषमा च तथाभूता, तथा इति पृथक्पदं वा, **अवनता** देहभारेण नीचैर्नता **न** नैव वर्तते इत्यर्थः। **व्याकुलप्रच्छदा** व्याकुलः शरीरभारपार्श्वपरिवर्तनादिना सङ्कुचितः उन्नतावनततया विसदृश इति यावत् प्रच्छदः शय्याप्रच्छादनपटो यस्यास्तथाभूता **न** नैवास्तीत्यर्थः। तथा **अमलम्** अमलिनं स्वच्छशुभ्रमित्यर्थः **शिरोपधानं** शिरोनिधानम् [अत्र अकारान्तः शिरशब्दो बोध्यः] **शीर्षाभिघातौषधैः** शीर्षाभिघातः शिरोवेदना उत्तमाङ्गव्यथा तस्य औषधैः वेदनाप्रतीकारक्षमैः शीर्षानुलेपनैः **न क्लिष्टम्** नैव दूषितम्। **रोगे** रुजायां निमित्ते सति **दृष्टिविलोभनं** नयनरञ्जनम् **जनयितुं** कर्तुम्, रुग्णस्य सद्यः स्वास्थ्यलाभार्थं चक्षुरावर्जनेन रोगसंवेदनादन्यत्र योगेन

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

रोगे दृष्टिविलोभनं जनयितुं शोभा न काचित् कृता
प्राणी प्राप्य रुजा पुनर्न शयनं शीघ्रं स्वयं मुञ्चति ॥४॥

विदूषकः—तेण हि इमस्सिं सय्याए मुहुत्तअं उवविसिय तत्तहोदिं पडिवालेदु भवं ।

तेन ह्यस्यां शय्यायां मुहूर्तकमुपविश्य तत्रभवतीं प्रतिपालयतु भवान् ।

राजा—बाढम् । [उपविश्य] वयस्य ! निद्रा मां बाधते । कथ्यतां काचित् कथा ।

विदूषकः—अहं कहइस्सं । होँ त्ति करेदु अत्तभवं ।

अहं कथयिष्यामि । होँ इति करोत्वत्रभवान् ।

राजा—बाढम् ।

विदूषकः—अत्थि णअरी उज्जइणी णाम । तहिं अहिअरमणीआणि उदअह्लाणाणि वत्तन्ति किल ।

अस्ति नगर्युज्जयिनी नाम । तत्र अधिकरमणीयान्युदकस्नानानि वर्तन्ते किल ।

राजा—कथमुज्जयिनी नाम ।

विदूषकः—जइ अणभिप्पेदा एसा कहा, अण्णं कहइस्सं ।

यद्यनभिप्रेतैषा कथा, अन्यां कथयिष्यामि ।

राजा—वयस्य ! न खलु नाभिप्रेतैषा कथा । किन्तु,

स्मराम्यवन्त्याधिपतेः सुतायाः प्रस्थानकाले स्वजनं स्मरन्त्याः ।
बाष्पं प्रवृत्तं नयनान्तलग्नं स्नेहान्ममैवोरसि पातयन्त्याः ॥५॥

अपि च,

मनो विनोदयितुमित्यर्थः, **काचित्** कापि **शोभा** चित्राद्यलङ्करणम् **न कृता** नैव विहिता । **पुनः** अपरं च **प्राणी** जीवः मनुष्य इत्यर्थः, **रुजा** रोगेण हेतुना **शयनं** शय्याम् **प्राप्य** लब्ध्वा **शीघ्रं** द्रुतम् **स्वयम्** आत्मनैव **न** नैव **मुञ्चति** परित्यजति, अपि तु रोगिसुलभस्वभावतया चिरं शय्यामधिशयान एव तिष्ठतीत्यर्थः ।

शय्यानवनतत्वादिभिः साधनैः पद्मावत्या इहानागमनमनुमिनोमीति भावः । अनुमानालङ्कारः । शार्दूलविक्रीडितम् ॥४॥

मुहूर्तकम् मुहूर्तमेव मुहूर्तकं क्षणमात्रमित्यर्थः [मुहूर्तकमिति 'कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे' इति द्वितीया] । **प्रतिपालयतु** प्रतीक्षताम् । **होँ** होँ कारः, हुङ्कृतमिति यावत् । 'हुँ' इति कथाश्रावयितुः प्रतिवाक्यान्तं कथाश्रवणसावधानतासंसूचनार्थं श्रोत्रा क्रियमाणः ध्वनिविशेषः । **अधिकरमणीयानि** अतिमनोहराणि । **उदकस्नानानि** स्नानयोग्याः सलिलप्रदेशाः स्नानागाराणि । **किलेति** वार्तायाम् ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

तकिया भी सिर-दर्द को हटाने के लिए लेप की हुई ओषधियों से मैला नहीं है। रोगी की आंखों को लुभाने के लिए कोई सजावट भी नहीं की हुई है। और दूसरी बात यह है कि रोगी शय्या पाकर इतनी जल्दी अपने-आप उसे नहीं छोड़ा करता ॥४॥

विदूषक—तो आप इसी शय्या पर थोड़ी देर बैठकर पद्मावती की प्रतीक्षा करें।

राजा—अच्छा। [बैठकर] मित्र ! मुझे नींद सता रही है। कोई कहानी कहिए।

विदूषक—अच्छा, मैं कहता हूं। आप हुँकारी भरते जाइए।

राजा—अच्छा।

विदूषक—उज्जयिनी नाम की एक नगरी है। कहते हैं, वहां स्नान करने के लिए अति मनोहर स्थान हैं।

राजा—क्यों तुम उज्जयिनी की बात छेड़ते हो ?

विदूषक—यदि यह कहानी आपको अच्छी नहीं लगती तो मैं दूसरी कहता हूं।

राजा—वयस्य ! यह बात नहीं कि मुझे अच्छी नहीं लगती। किन्तु,

—(उज्जयिनी का नाम सुनकर) मैं अवन्ति-राजकुमारी उस वासवदत्ता की याद करने लगता हूं, जिसने मेरे साथ उज्जयिनी से कौशाम्बी चलते समय अपने माता-पिता आदि की याद करके स्नेह से उमड़े हुए, अपने आंखों की कोर में लगे हुए आंसुओं को मेरी ही गोद में बरसाया था ॥५॥

और,

"**स्मरामि**"इति—**प्रस्थानकाले** स्वजन्मभूमेरुज्जयिन्याः मया सह कौशाम्बीं प्रति प्रयाणसमये **स्वजनं** मदर्थे परित्यज्यमानं पित्रादिकम् **स्मरन्त्याः** विचिन्तयन्त्याः **स्नेहात्** सातिशयस्नेहप्रभावात् **प्रवृत्तम्** उद्गतम् **नयनान्तलग्नम्** नयनयोः नेत्रयोः अन्ते प्रान्तभागे अपाङ्गदेशे लग्नं संसक्तं पतनोन्मुखम् **बाष्पम्** अश्रुजलप्रवाहम् **ममैव** मदीय एव **उरसि** वक्षसि **पातयन्त्याः** विसृजन्त्याः वर्षयन्त्याः **अवन्त्याधिपतेः** अवन्त्याः तदाख्यायाः नगर्याः आ समन्ताद् अधिपतिः अप्रतिहतशासनो नृपः तस्य अवन्तीमहाराजस्य प्रद्योतस्य [अथवा—धान्येन धनी गवा स्वामीतिवद् अवन्त्या हेतुना अधिपतिरिति हेत्वर्थे तृतीया] **सुतायाः** सुताम् वासवदत्तामित्यर्थः, ['अधीगर्थदयेशां कर्मणि' (पा० २.३.५२) इति कर्मणि षष्ठी], **स्मरामि** आध्यामि चिन्तयामि।

त्वयोच्यमानायां कथायामुज्जयिनीनामश्रवणेन तद्विच्छेदकालिकानि वासवदत्तायाः सातिशयस्नेहसंस्मरणानि स्मृतिपथमुपगतानि साम्प्रतिकशोकपरिपोषकतयाऽतिमात्रं व्यथयन्ति चेतः, अतोऽलमनयेति भावः। उज्जयिनीनामश्रवणे

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

रोगे दृष्टिविलोभनं जनयितुं शोभा न काचित् कृता
प्राणी प्राप्य रुजा पुनर्न शयनं शीघ्रं स्वयं मुञ्चति ॥४॥

विदूषकः—तेण हि इमस्सिं सय्याए मुहुत्तअं उवविसिय तत्तहोदिं पडिवालेदु भवं।

तेन ह्यस्यां शय्यायां मुहूर्तकमुपविश्य तत्रभवतीं प्रतिपालयतु भवान्।

राजा—बाढम्। [उपविश्य] वयस्य ! निद्रा मां बाधते। कथ्यतां काचित् कथा।

विदूषकः—अहं कहइस्सं। हों ँ त्ति करेदु अत्तभवं।

अहं कथयिष्यामि। हो ँ इति करोत्वत्रभवान्।

राजा—बाढम्।

विदूषकः—अत्थि णअरी उज्जइणी णाम। तहिं अहिअरमणीआणि उदअह्लाणाणि वत्तन्ति किल।

अस्ति नगर्युज्जयिनी नाम। तत्र अधिकरमणीयान्युदकस्नानानि वर्तन्ते किल।

राजा—कथमुज्जयिनी नाम।

विदूषकः—जइ अणभिप्पेदा एसा कहा, अण्णां कहइस्सं।

यद्यनभिप्रेतैषा कथा, अन्यां कथयिष्यामि।

राजा—वयस्य ! न खलु नाभिप्रेतैषा कथा। किन्तु,

स्मराम्यवन्त्याधिपतेः सुतायाः प्रस्थानकाले स्वजनं स्मरन्त्याः।
बाष्पं प्रवृत्तं नयनान्तलग्नं स्नेहान्ममैवोरसि पातयन्त्याः ॥५॥

अपि च,

मनो विनोदयितुमित्यर्थः, **काचित्** कापि **शोभा** चित्राद्यलङ्करणम् **न कृता** नैव विहिता। **पुनः** अपरं च **प्राणी** जीवः मनुष्य इत्यर्थः, **रुजा** रोगेण हेतुना **शयनं** शय्याम् **प्राप्य** लब्ध्वा **शीघ्रं** द्रुतम् **स्वयम्** आत्मनैव **न** नैव **मुञ्चति** परित्यजति, अपि तु रोगिसुलभस्वभावतया चिरं शय्यामधिशयान एव तिष्ठतीत्यर्थः।

शय्यानवनतत्वादिभिः साधनैः पद्मावत्या इहानागमनमनुमिनोमीति भावः। अनुमानालङ्कारः। शार्दूलविक्रीडितम् ॥४॥

मुहूर्तकम् मुहूर्तमेव मुहूर्तकं क्षणमात्रमित्यर्थः [मुहूर्तकमिति 'कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे' इति द्वितीया]। **प्रतिपालयतु** प्रतीक्षताम्। **हों** हो ँ कारः, हुङ्कृतमिति यावत्। 'हुँ' इति कथाश्रावयितुः प्रतिवाक्यान्तं कथाश्रवणसावधानतासंसूचनार्थं श्रोत्रा क्रियमाणः ध्वनिविशेषः। **अधिकरमणीयानि** अतिमनोहराणि। **उदकस्नानानि** स्नानयोग्याः सलिलप्रदेशाः स्नानागाराणि। **किलेति** वार्तायाम्।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

तकिया भी सिर-दर्द को हटाने के लिए लेप की हुई औषधियों से मैला नहीं है। रोगी की आंखों को लुभाने के लिए कोई सजावट भी नहीं की हुई है। और दूसरी बात यह है कि रोगी शय्या पाकर इतनी जल्दी अपने-आप उसे नहीं छोड़ा करता ॥४॥

विदूषक—तो आप इसी शय्या पर थोड़ी देर बैठकर पद्मावती की प्रतीक्षा करें।

राजा—अच्छा। [बैठकर] मित्र ! मुझे नींद सता रही है। कोई कहानी कहिए।

विदूषक—अच्छा, मैं कहता हूँ। आप हुँकारी भरते जाइए।

राजा—अच्छा।

विदूषक—उज्जयिनी नाम की एक नगरी है। कहते हैं, वहां स्नान करने के लिए अति मनोहर स्थान हैं।

राजा—क्यों तुम उज्जयिनी की बात छेड़ते हो ?

विदूषक—यदि यह कहानी आपको अच्छी नहीं लगती तो मैं दूसरी कहता हूँ।

राजा—वयस्य ! यह बात नहीं कि मुझे अच्छी नहीं लगती। किन्तु,

—(उज्जयिनी का नाम सुनकर) मैं अवन्ति-राजकुमारी उस वासवदत्ता की याद करने लगता हूँ, जिसने मेरे साथ उज्जयिनी से कौशाम्बी चलते समय अपने माता-पिता आदि की याद करके स्नेह से उमड़े हुए, अपने आंखों की कोर में लगे हुए आंसुओं को मेरी ही गोद में बरसाया था ॥५॥

और,

"स्मरामि" इति—**प्रस्थानकाले** स्वजन्मभूमेरुज्जयिन्याः मया सह कौशाम्बीं प्रति प्रयाणसमये **स्वजनं** मदर्थे परित्यज्यमानं पित्रादिकम् **स्मरन्त्याः** विचिन्तयन्त्याः **स्नेहात्** सातिशयस्नेहप्रभावात् **प्रवृत्तम्** उद्गतम् **नयनान्तलग्नम्** नयनयोः नेत्रयोः अन्ते प्रान्तभागे अपाङ्गदेशे लग्नं संसक्तं पतनोन्मुखम् **बाष्पम्** अश्रुजलप्रवाहम् **ममैव** मदीय एव **उरसि** वक्षसि **पातयन्त्याः** विसृजन्त्याः वर्षयन्त्याः **अवन्त्याधिपतेः** अवन्त्याः तदाख्यायाः नगर्याः आ समन्ताद् अधिपतिः अप्रतिहतशासनो नृपः तस्य अवन्तीमहाराजस्य प्रद्योतस्य [अथवा—धान्येन धनी गवा स्वामीतिवद् अवन्त्या हेतुना अधिपतिरिति हेत्वर्थे तृतीया] **सुतायाः** सुताम् वासवदत्तामित्यर्थः, ['अधीगर्थदयेशां कर्मणि' (पा० २.३.५२) इति कर्मणि षष्ठी], **स्मरामि** आध्यामि चिन्तयामि।

त्वयोच्यमानायां कथायामुज्जयिनीनामश्रवणेन तद्विच्छेदकालिकानि वासवदत्तायाः सातिशयस्नेहसंस्मरणानि स्मृतिपथमुपगतानि साम्प्रतिकशोकपरिपोषकतयाऽतिमात्रं व्यथयन्ति चेतः, अतोऽलमनयेति भावः। उज्जयिनीनामश्रवणे

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

बहुशोऽप्युपदेशेषु यया मामीक्षमाणया ।
हस्तेन स्त्रस्तकोणेन कृतमाकाशवादितम् ॥६॥

विदूषकः—भोदु, अण्णं कहइस्सं । अत्थि णअरं ब्रह्मदत्तं णाम । तहिं किल राआ कंपिल्लो णाम ।

भवतु, अन्यां कथयिष्यामि । अस्ति नगरं ब्रह्मदत्तं नाम । तत्र किल राजा काम्पिल्यो नाम ।

राजा—किमिति किमिति ।

विदूषकः—[पुनस्तदेव पठति] ।

राजा—मूर्ख ! राजा ब्रह्मदत्तः, नगरं काम्पिल्यमित्यभिधीयताम् ।

विदूषकः—किं राजा ब्रह्मदत्तो, णअरं कम्पिल्लं ।

किं राजा ब्रह्मदत्तः, नगरं काम्पिल्यम् ।

राजा—एवमेतत् ।

विदूषकः—तेण हि मुहुत्तअं पडिवालेदु भवं, जाव ओट्ठगअं करिस्सं । राआ ब्रह्मदत्तो, णअरं कम्पिल्लं । [इति बहुशस्तदेव पठित्वा] इदाणिं सुणादु भवं । अयि ! सुत्तो अत्तभवं । अदिसीदला इअं वेला । अत्तणो पावरअं गह्लिअ आअमिस्सं ।

[निष्क्रान्तः]

तेन हि मुहूर्तकं प्रतिपालयतु भवान्, यावद् ओष्ठगतं करिष्यामि । राजा ब्रह्मदत्तः, नगरं काम्पिल्यम् । इदानीं शृणोतु भवान् । अयि ! सुप्तोऽत्रभवान् । अतिशीतलेयं वेला । आत्मनः प्रावारकं गृहीत्वा-गमिष्यामि ।

[ततः प्रविशति वासवदत्ता आवन्तिकावेषेण चेटी च]

चेटी—एदु एदु अय्या । दिढं खु भट्टिदारिआ सीसवेदणाए दुक्खाविदा ।

एतु एतु आर्या । दृढं खलु भर्तृदारिका शीर्षवेदनया दुःखिता ।

वासवदत्ता—हद्धि, कहिं सअणीअं रइदं पदुमावदीए ।

हा ! धिक्, कुत्र शयनीयं रचितं पद्मावत्याः ।

वासवदत्तायाः स्नेहसंस्मरणात् स्मरणालङ्कारः । उपजातिवृत्तम् । तल्लक्षणं यथा—'स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः, उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ । अनन्तरो-दीरितलक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्ताः' इति ॥५॥

"**बहुश**" इति—**माम्** उदयनम् **ईक्षमाणया** सततमवलोकयन्त्या, अनेन अवलोकनानन्दरसास्वादनजनितचित्तैकाग्र्यं द्योतितम्, **यथा** अवन्तिराजपुत्र्या

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

—जो मेरे सङ्गीत सिखाते समय न जाने कितनी बार एकटक मुझे देखती हुई (आनन्द में तन्मय होकर हाथ से छूटे हुए वीणा बजाने के यन्त्र —मिज़राब को भी न जानती हुई) मिज़राब से खाली हाथ से (वीणा-) शून्य जगह में (वीणा की तारें) बजाने की-सी क्रिया करती थी ॥६॥

विदूषक—अच्छा, मैं दूसरी कहानी कहता हूँ। ब्रह्मदत्त नाम का एक नगर था। वहां काम्पिल्य नाम का एक राजा था।

राजा—क्या ? क्या ?

विदूषक—[फिर से वही कहता है]।

राजा—मूर्ख ! राजा ब्रह्मदत्त और नगर काम्पिल्य, ऐसा कह।

विदूषक—क्या राजा ब्रह्मदत्त और नगर काम्पिल्य ?

राजा—हाँ, ऐसा ही।

विदूषक—तो आप तनिक ठहरिए। तब तक मैं इसे कण्ठ कर लूं। राजा ब्रह्मदत्त, नगर काम्पिल्य। [कई बार उसी को रटकर] अच्छा, अब आप सुनिए। ऐं ! आप तो सो गये। ओह ! इस समय बड़ी सर्दी पड़ रही है। मैं अपनी चादर ले आऊँ।

[प्रस्थान]

[आवन्तिका के वेष में वासवदत्ता और चेटी का प्रवेश]

चेटी—आइए, आइए, आर्या। राजकुमारी सिर की पीड़ा से बहुत दुःखित हैं।

वासवदत्ता—बड़े दुःख की बात है। पद्मावती का बिस्तर कहां बिछाया गया है ?

वासवदत्तया **बहुशः अपि** बहुवारमपि **उपदेशेषु** वीणावादनकलाशिक्षणेषु **स्रस्तकोणेन** स्रस्तः मनसोऽन्यत्र व्यासञ्जनेन ग्रहणानवधानतया च्युतः कोणः सारिकाख्यः वीणावादनयन्त्रविशेषः ['मिजराब' इति प्रसिद्धः] यस्मात् तेन तथाभूतेन [द्वयोस्तु कोणो वीणादेर्वादनं सारिका च सा' इति शब्दार्णवः] **हस्तेन** करेण चित्तैकाग्रतया अधःस्रस्तमपि वीणावादनयन्त्रमजानानया **आकाश-वादितम्** आकाशे वीणाव्यतिरिक्ते शून्ये स्थले, वादितं वादनाय वीणावादन-यन्त्रव्यापारणम् **कृतम्** अनुष्ठितम्, तस्याः अवन्त्याधिपतेः सुतायाः स्मरामीति पूर्वश्लोकगतेन सम्बन्धः। पूर्ववत् स्मरणालङ्कारः। अनुष्टुप् ॥६॥

ओष्ठगतं झटिति वागुच्चारणसौकर्याय पुनःपुनरभ्यासेन कण्ठस्थम्। **इयं वेला** अयं समयः। **अतिशीतला** अतिशैत्योपेता। **प्रावारकं** शैत्यवारणाय शरीरोपर्याच्छादनवस्त्रम्।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

चेटी—समुद्दगिहके किल सेज्जात्थिण्णा ।

समुद्रगृहके किल शय्यास्तीर्णा ।

वासवदत्ता—तेण हि अग्गदो याहि ।

तेन ह्यग्रतो याहि ।

[उभे परिक्रामतः]

चेटी—इदं समुद्दगिहकं । पविसदु अय्या । जाव अहं वि सीसाणुलेवणं तुवारेमि । [निष्क्रान्ता]

इदं समुद्रगृहकम् । प्रविशत्वार्या । यावदहमपि शीर्षानुलेपनं त्वरयामि ।

वासवदत्ता—अहो ! अकरुणा खु इस्सरा मे । विरहपय्युस्सुअस्स अय्यउत्तस्स विस्समत्थाणभूदा इअं पि णाम पदुमावदी अस्सत्था जादा । जाव पविसामि । [प्रविश्यावलोक्य] अहो ! परिजणस्स पमादो । अस्सत्थं पदुमावदिं केवलं दीवसहाअं करिअ परित्तजदि । इअं पदुमावदी ओसुत्ता । जाव उवविसामि । अहव अञ्जासणपरिग्गहेण अप्पो विअ सिणेहो पडिभादि । ता इमस्सिं सय्याए उवविसामि । [उपविश्य] किं णु खु एदाए सह उवविसन्तीए अज्ज पहलादिदं विअ मे हिअअं । दिट्ठिआ अविच्छिण्णसुहणिस्सासा । णिव्वुत्तरोआए होदव्वं । अहव एअदेससंविभाअदाए सअणीअस्स सूएदि मं आलिङ्गेहि त्ति । जाव सइस्सं । [शयनं नाटयति]

अहो ! अकरुणाः खल्वीश्वरा मे । विरहपर्युत्सुकस्यार्यपुत्रस्य विश्रमस्थानभूतेयमपि नाम पद्मावत्यस्वस्था जाता । यावत् प्रविशामि । अहो ! परिजनस्य प्रमादः । अस्वस्थां पद्मावतीं केवलं दीपसहायां कृत्वा परित्यजति । इयं पद्मावत्यवसुप्ता । यावदुपविशामि । अथवा अन्यासनपरिग्रहेणाल्प इव स्नेहः प्रतिभाति । तदस्यां शय्यायामुपविशामि । किं नु खल्वेतया सहोपविशन्त्या अद्य प्रह्लादितमिव मे हृदयम् । दिष्ट्याविच्छिन्नसुखनिःश्वासा । निवृत्तरोगया भवितव्यम् । अथवैकदेशसंविभागतया शयनीयस्य सूचयति मामालिङ्गेति । यावच्छयिष्ये ।

राजा—[स्वप्नायते] हा वासवदत्ते !

अहो इति विषादे । **ईश्वराः** देवाः । **अकरुणाः** दुःखप्रदानेन निर्दयाः । **विरहपर्युत्सुकस्य** मद्विरहेण व्याकुलचित्तस्य । **विश्रमस्थानभूता** मद्विरहदुःख-

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

चेटी—समुद्र-गृह में शय्या बिछी हुई है।

वासवदत्ता—तो आगे चल।

[दोनों घूमती हैं]

चेटी—यह समुद्र-गृह है। आर्या प्रवेश करें। तब तक मैं भी सिर पर लगाने का लेप जल्दी ले आऊं।

[प्रस्थान]

वासवदत्ता—ओह! ईश्वर, सचमुच, मुझ पर बड़े रुष्ट हैं। विरह से अधीर हुए आर्यपुत्र के मनबहलाव के लिए यह पद्मावती ही एकमात्र आसरा थी, सो यह भी अस्वस्थ हो गई। अच्छा, अन्दर चली चलूं। [भीतर चलकर और देखकर] ओह! दासियों की असावधानता तो देखो! अस्वस्थ हुई पद्मावती को केवल दीये के सहारे छोड़ गईं! यह पद्मावती सो रही हैं। तो मैं यहीं बैठती हूँ। परन्तु (बीमार के पास जाकर) अलग आसन पर बैठने से स्नेह अल्प-सा जान पड़ता है। इसलिए इस शय्या पर ही बैठूं। [पलंग पर बैठकर] ओह! यह कैसे आश्चर्य की बात है! इसके साथ बैठने से मेरा हृदय आनन्द-पुलकित-सा क्यों हो रहा है? सौभाग्य से इसकी सांस अविच्छिन्न-भाव से सुखपूर्वक चल रही है। जान पड़ता है कि रोग निवृत्त हो गया। शय्या के एक किनारे पर सोने से क्या यह ऐसा सूचित कर रही है कि—मुझको आलिङ्गन कर। अच्छा, तो मैं भी लेट जाती हूँ। [लेटती है]

राजा—[स्वप्न में] हा वासवदत्ते!

विनोदस्थानभूता। **'अहो! परिजनस्य प्रमादः'** इत्यत आरभ्य **'यावच्छयिष्ये'** इत्यन्तं वासवदत्तावचनजातं शय्यासुप्ते राजनि पद्मावतीबुद्ध्या निस्सृतमवसेयम्। **अहो** इत्याश्चर्ये। **परिजनस्य** सेविकानाम्। **प्रमादः** अनवधानता। **अस्वस्थां** रुग्णाम्। **दीपसहायाम्** दीपः प्रदीप एव सहायः प्रकाशकरणेन समाश्वासनस्थानं यस्याः सा ताम्। रुग्णस्य परिचर्याकरणार्थं समीपावस्थानमत्यावश्यकमिति भावः। **अन्यासनपरिग्रहेण** अपरासनोपवेशनेन। **स्नेहः** पारस्परिकं प्रेम। **अल्प इव** न्यून इव। **प्रतिभाति** ज्ञानविषयो भवति। रुग्णेन जनेन सहोपवेशनादिघृणामूलकभेदभावः परस्परस्नेहविघातको भवतीति भावः। **प्रह्लादितमिव** हर्षोत्फुल्लमिव। **दिष्ट्येति** हर्षे। **अविच्छिन्नसुखनिःश्वासा** अविच्छिन्नः संततः सुखः सुखपूर्वकः अयत्ननिर्गमागम इत्यर्थः, निःश्वासः उच्छ्वासः यस्याः सा तथा। एतद् रोगनिवृत्तिलक्षणम्। **निवृत्तरोगया** रोगनिर्मुक्तया स्वस्थया। **एकदेशेति**—एकदेशस्य पार्श्वभागस्य संविभागः 'इयति स्थाने प्रियजनः

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

चेटी—समुद्दगिहके किल सेज्जात्थिण्णा ।

समुद्रगृहके किल शय्यास्तीर्णा ।

वासवदत्ता—तेण हि अग्गदो याहि ।

तेन ह्यग्रतो याहि ।

[उभे परिक्रामतः]

चेटी—इदं समुद्दगिहकं । पविसदु अय्या । जाव अहं वि सीसाणुलेवणं तुवारेमि । [निष्क्रान्ता]

इदं समुद्रगृहकम् । प्रविशत्वार्या । यावदहमपि शीर्षानुलेपनं त्वरयामि ।

वासवदत्ता—अहो ! अकरुणा खु इस्सरा मे । विरहपय्युस्सुअस्स अय्यउत्तस्स विस्समत्थाणभूदा इअं पि णाम पदुमावदी अस्सत्था जादा । जाव पविसामि । [प्रविश्यावलोक्य] अहो ! परिजणस्स पमादो । अस्सत्थं पदुमावदिं केवलं दीवसहाअं करिअ परित्तजदि । इअं पदुमावदी ओसुत्ता । जाव उवविसामि । अहव अञ्ञासणपरिग्गहेण अप्पो विअ सिणेहो पडिभादि । ता इमस्सिं सय्याए उवविसामि । [उपविश्य] किं णु खु एदाए सह उवविसन्तीए अज्ज पहलादिदं विअ मे हिअअं । दिट्ठिआ अविच्छिण्णसुहणिस्सासा । णिव्वुत्तरोआए होदव्वं । अहव एअदेससंविभाअदाए सअणीअस्स सूएदि मं आलिङ्गेहि त्ति । जाव सइस्सं । [शयनं नाटयति]

अहो ! अकरुणाः खल्वीश्वरा मे । विरहपर्य्युत्सुकस्यार्यपुत्रस्य विश्रमस्थानभूतेयमपि नाम पद्मावत्यस्वस्था जाता । यावत् प्रविशामि । अहो ! परिजनस्य प्रमादः । अस्वस्थां पद्मावतीं केवलं दीपसहायां कृत्वा परित्यजति । इयं पद्मावत्यवसुप्ता । यावदुपविशामि । अथवा अन्यासनपरिग्रहेणाल्प इव स्नेहः प्रतिभाति । तदस्यां शय्यायामुपविशामि । किं नु खल्वेतया सहोपविशन्त्या अद्य प्रह्लादितमिव मे हृदयम् । दिष्ट्याविच्छिन्नसुखनिःश्वासा । निवृत्तरोगया भवितव्यम् । अथवैकदेशसंविभागतया शयनीयस्य सूचयति मामालिङ्गेति । यावच्छयिष्ये ।

राजा—[स्वप्नायते] हा वासवदत्ते !

अहो इति विषादे । **ईश्वराः** देवाः । **अकरुणाः** दुःखप्रदानेन निर्दयाः । **विरहपर्युत्सुकस्य** मद्विरहेण व्याकुलचित्तस्य । **विश्रमस्थानभूता** मद्विरहदुःख-

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

चेटी—समुद्र-गृह में शय्या बिछी हुई है।

वासवदत्ता—तो आगे चल।

[दोनों घूमती हैं]

चेटी—यह समुद्र-गृह है। आर्या प्रवेश करें। तब तक मैं भी सिर पर लगाने का लेप जल्दी ले आऊँ।

[प्रस्थान]

वासवदत्ता—ओह! ईश्वर, सचमुच, मुझ पर बड़े रुष्ट हैं। विरह से अधीर हुए आर्यपुत्र के मनबहलाव के लिए यह पद्मावती ही एकमात्र आसरा थी, सो यह भी अस्वस्थ हो गई। अच्छा, अन्दर चली चलूं। [भीतर चलकर और देखकर] ओह! दासियों की असावधानता तो देखो! अस्वस्थ हुई पद्मावती को केवल दीये के सहारे छोड़ गईं! यह पद्मावती सो रही हैं। तो मैं यहीं बैठती हूँ। परन्तु (बीमार के पास जाकर) अलग आसन पर बैठने से स्नेह अल्प-सा जान पड़ता है। इसलिए इस शय्या पर ही बैठूं। [पलंग पर बैठकर] ओह! यह कैसे आश्चर्य की बात है! इसके साथ बैठने से मेरा हृदय आनन्द-पुलकित-सा क्यों हो रहा है? सौभाग्य से इसकी सांस अविच्छिन्न-भाव से सुखपूर्वक चल रही है। जान पड़ता है कि रोग निवृत्त हो गया। शय्या के एक किनारे पर सोने से क्या यह ऐसा सूचित कर रही है कि—मुझको आलिङ्गन कर। अच्छा, तो मैं भी लेट जाती हूँ। [लेटती है]

राजा—[स्वप्न में] हा वासवदत्ते!

विनोदस्थानभूता। **'अहो! परिजनस्य प्रमादः'** इत्यत आरभ्य **'यावच्छयिष्ये'** इत्यन्तं वासवदत्तावचनजातं शय्यासुप्ते राजनि पद्मावतीबुद्ध्या निस्सृतमवसेयम्। **अहो** इत्याश्चर्ये। **परिजनस्य** सेविकानाम्। **प्रमादः** अनवधानता। **अस्वस्थां** रुग्णाम्। **दीपसहायाम्** दीपः प्रदीप एव सहायः प्रकाशकरणेन समाश्वासनस्थानं यस्याः सा ताम्। रुग्णस्य परिचर्याकरणार्थे समीपावस्थानमत्यावश्यकमिति भावः। **अन्यासनपरिग्रहेण** अपरासनोपवेशनेन। **स्नेहः** पारस्परिकं प्रेम। **अल्प इव** न्यून इव। **प्रतिभाति** ज्ञानविषयो भवति। रुग्णेन जनेन सहोपवेशनादिघृणामूलकभेदभावः परस्परस्नेहविघातको भवतीति भावः। **प्रह्लादितमिव** हर्षोत्फुल्लमिव। **दिष्ट्येति** हर्षे। **अविच्छिन्नसुखनिःश्वासा** अविच्छिन्नः संततः सुखः सुखपूर्वकः अयत्ननिर्गमागम इत्यर्थः, निःश्वासः उच्छ्वासः यस्याः सा तथा। एतद् रोगनिवृत्तिलक्षणम्। **निवृत्तरोगया** रोगनिर्मुक्तया स्वस्थया। **एकदेशेति**—एकदेशस्य पार्श्वभागस्य संविभागः 'इयति स्थाने प्रियजनः

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

वासवदत्ता—[सहसोत्थाय] हं, अय्यउत्तो, ण हु पदुमावदी। किं णु खु दिट्ठह्मि। महन्तो खु अय्यजोअन्धराअणस्स पडिण्णाहारो मम दंसणेण णिप्फलो संवुत्तो।

हम्, आर्यपुत्रः, न खलु पद्मावती। किं नु खलु दृष्टास्मि। महान् खल्वार्ययौगन्धरायणस्य प्रतिज्ञाभारो मम दर्शनेन निष्फलः संवृत्तः।

राजा—हा अवन्तिराजपुत्रि!

वासवदत्ता—दिट्ठिआ सिविणाअदि खु अय्यउत्तो। ण एत्थ कोच्चि जणो। जाव मुहुत्तअं चिट्ठिअ दिट्ठिं हिअअं च तोसेमि।

दिष्ट्या स्वप्नायते खल्वार्यपुत्रः। नात्र कश्चिज्जनः। यावन्मुहूर्तकं स्थित्वा दृष्टिं हृदयं च तोषयामि।

राजा—हा प्रिये! हा प्रियशिष्ये! देहि मे प्रतिवचनम्।

वासवदत्ता—आलवामि भट्टा! आलवामि।

आलपामि भर्तः! आलपामि।

राजा—किं कुपितासि।

वासवदत्ता—ण हि ण हि, दुःखिदह्मि।

नहि नहि, दुःखितास्मि।

राजा—यद्यकुपिता, किमर्थं नालङ्कृतासि।

वासवदत्ता—इदो वरं किं।

इतः परं किम्।

राजा—किं विरचिकां स्मरसि।

वासवदत्ता—[सरोषम्] आ! अवेहि, इहावि विरचिआ।

आ! अपेहि, इहापि विरचिका।

राजा—तेन हि विरचिकार्थं भवतीं प्रसादयामि। [हस्तौ प्रसारयति]

वासवदत्ता—चिरं ठिदह्मि। को वि मं पेक्खे। ता गमिस्सं। अहव, सय्यापलम्बिअं अय्यउत्तस्स हत्थं सअणीए आरोविअ गमिस्सं। [तथा कृत्वा निष्क्रान्ता]

चिरं स्थितास्मि। कोऽपि मां पश्येत्। तद् गमिष्यामि। अथवा, शय्याप्रलम्बितमार्यपुत्रस्य हस्तं शयनीये आरोप्य गमिष्यामि।

राजा—[सहसोत्थाय] वासवदत्ते! तिष्ठ तिष्ठ। हा! धिक्।

निष्क्रामन् सम्भ्रमेणाहं द्वारपक्षेण ताडितः।
ततो व्यक्तं न जानामि भूतार्थोऽयं मनोरथः॥७॥

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

शयिष्यते' इति सम्यग् विभज्य कल्पनम्, तस्य भावस्तत्ता तया।

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

वासवदत्ता—[एकाएक उठकर] ओह ! ये तो आर्यपुत्र हैं, पद्मावती नहीं। क्या इन्होंने मुझे देख लिया है ? हाय ! आर्य यौगन्धरायण का महान् प्रतिज्ञा-भार मेरे दर्शन से निष्फल हो चला।

राजा—हा अवन्ति-राजपुत्रि।

वासवदत्ता—सौभाग्य की बात है कि आर्यपुत्र स्वप्न देख रहे हैं। यहां कोई और आदमी नहीं है। तो मैं क्षणभर ठहरकर अपनी आंखों और हृदय को सन्तुष्ट (ठण्डा) कर लूं।

राजा—हा प्रिये ! हा प्रिय-शिष्ये ! मुझसे बोलो।

वासवदत्ता—बोलती हूँ, नाथ ! बोलती हूँ।

राजा—क्या कुपित हुई हो ?

वासवदत्ता—नहीं, नहीं, (आपके विरह से) दुःखित हूँ।

राजा—यदि कुपित नहीं हो, तो तुमने अलंकार क्यों नहीं धारण किये हुए हैं।

वासवदत्ता—(मैं दुःखित हूँ) इससे अन्य क्या कारण हो सकता है ?

राजा—क्या विरचिका को याद करती हो ?

वासवदत्ता—[रोषपूर्वक] ऊँह ! जाने भी दो ! यहां भी विरचिका !

राजा—तो विरचिका के लिए मैं तुम्हें मनाता हूँ। [हाथ फैलाता है]

वासवदत्ता—बहुत देर तक ठहर गई हूँ। कहीं कोई देख लेगा। इसलिए अब जाऊं। अथवा, शय्या से नीचे लटके हुए आर्यपुत्र के हाथ को शय्या पर रखकर ही जाऊं। [वैसा ही करके जाती है]

राजा—[एकाएक उठकर] वासवदत्ते ! ठहर, ठहर। हाय !

—उतावली में जाता हुआ मैं दरवाजे से टकरा गया। इसलिए, स्पष्ट-रूप से नहीं जान सकता कि यह सच बात थी या स्वप्न था ॥७॥

विरचिकां विरचिका नाम काचिदन्तःपुरस्था वासवदत्तासपत्नीदेशीया वत्सराजस्य भोगिनी, ताम्। **शय्याप्रलम्बितम्** शय्याप्रदेशादधोलम्बमानम्।

"**निष्क्रामन्**" इति—**अहम्** उदयनः **सम्भ्रमेण** निर्गच्छन्तीयं वासवदत्ता स्यान्नवेति परीक्षणत्वरया **निष्क्रामन्** बहिर्निर्गच्छन् **द्वारपक्षेण** द्वारपार्श्वेन **ताडितः** घट्टनेन प्रहृतः। **ततः** तस्मात् कारणात् **अयम्** एषः वासवदत्तादर्शनानुभवरूपोऽर्थः **भूतार्थः** सत्यः किम् ? **मनोरथः** प्रियजनसततचिन्तनजन्यं स्वप्न-विज्ञानं किम् ? इत्येतत् **व्यक्तं** परिस्फुटं समीचीनतया **न** नैव **जानामि** जाने वेद्मि। वाक्यार्थस्य कर्मत्वम्।

सैषानुभूतार्थविषया किमु सत्यैव वासवदत्ता आसीदुत मानसकल्पना-

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

[प्रविश्य]

विदूषकः—अयि ! पडिबुद्धो अत्तभवं ।

अयि ! प्रतिबुद्धोऽत्रभवान् ।

राजा—वयस्य ! प्रियमावेदये, धरते खलु वासवदत्ता ।

विदूषकः—अविहा वासवदत्ता । कहिं वासवदत्ता । चिरा खु उवरदा वासवदत्ता ।

अविहा वासवदत्ता । कुत्र वासवदत्ता । चिरात् खलूपरता वासवदत्ता ।

राजा—वयस्य ! मा मैवम्,

शय्यायामवसुप्तं मां बोधयित्वा सखे गता ।
दग्धेति ब्रुवता पूर्वं वञ्चितोऽस्मि रुमण्वता ॥८॥

विदूषकः—अविहा ! असम्भावणीअं एदं । आ, उदअह्लाणसङ्कित्तणेण तत्तहोदिं चिन्तअन्तेण सा सिविणे दिट्ठा भवे ।

अविहा ! असम्भावनीयमेतत् । आः, उदकस्नानसङ्कीर्तनेन तत्रभवतीं चिन्तयता सा स्वप्ने दृष्टा भवेत् ।

राजा—एवम्, मया स्वप्नो दृष्टः ।

यदि तावदयं स्वप्नो धन्यमप्रतिबोधनम् ।
अथायं विभ्रमो वा स्याद् विभ्रमो ह्यस्तु मे चिरम् ॥९॥

विदूषकः—भो वअस्स ! एदस्सिं णअरे अवन्तिसुन्दरी णाम जक्खिणी पडिवसदि । सा तुए दिट्ठा भवे ।

भो वयस्य ! एतस्मिन् नगरेऽवन्तिसुन्दरी नाम यक्षिणी प्रतिवसति । सा त्वया दृष्टा भवेत् ।

राजा—न, न,

जनिता स्वप्नवासवदत्तेति तत्त्वतो न वेद्मीति भावः । किमयं भूतार्थः किंवा मनोरथ इति यथास्थितनिश्चयाभावात् सन्देहालङ्कारः ॥७॥

प्रियम् प्रियवृत्तान्तमित्यर्थः । **आवेदये** कथयामि । **धरते** ध्रियते जीवति ।

"शय्यायाम्"इति—**सखे** ! हे वयस्य ! **शय्यायाम्** शयनीये **अवसुप्तं** शयितं निद्रां भजमानम्, **माम्, बोधयित्वा** जागरयित्वा **गता** प्रयाता, वासवदत्तेत्यर्थः । **दग्धा** वासवदत्ता अग्निना दाहं प्राप्य मृता **इति** एवम् **ब्रुवता** कथयता **रुमण्वता** तदाख्येन अमात्येन **पूर्वं** प्राक् पुरा **वञ्चितोऽस्मि** असत्यकथनेन प्रतारितोऽस्मि ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

अत्र पूर्वं मद्बोधनं तदनु तद्गमनमित्युभयोः व्यापारयोः पौर्वापर्यकथनेन

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

[विदूषक का प्रवेश]

विदूषक—ओह ! महाराज तो जाग उठे।

राजा—मित्र ! तुम्हें एक प्रिय बात सुनाता हूँ। वासवदत्ता जीवित हैं।

विदूषक—हा ! वासवदत्ता ? वासवदत्ता अब कहां ? वासवदत्ता को समाप्त हुए बहुत समय बीत चला।

राजा—नहीं, मित्र ! ऐसा मत कहो।

—हे सखे ! वह तो शय्या पर सोये हुए मुझे जगाकर चली गई। वासवदत्ता जल गई, ऐसा कहते हुए रुमण्वान् ने पहले मुझे धोखा दिया है ॥८॥

विदूषक—हा ! यह असम्भव बात है। हां, हां, याद आ गया। उज्जयिनी के स्नानागारों का वर्णन सुनकर वासवदत्ता का चिन्तन करने से आपने वे कदाचित् स्वप्न में देखी होंगी।

राजा—ऐसा ! मैंने स्वप्न में देखा है ? —यदि यह, सचमुच ही, स्वप्न था तो अच्छा होता कि मैं यही स्वप्न देखा करता। यदि यह भ्रम हो तो ऐसा भ्रम मुझे चिर-काल तक बना रहे ॥९॥

विदूषक—वयस्य ! इस नगर में अवन्ति-सुन्दरी नाम की एक यक्षिणी रहती है, कदाचित् तुमने उसी को देखा हो।

राजा—नहीं, नहीं।

मद्बोधनरूपक्रियाव्यापारानन्तरं जागरितावस्थायामेव तद्गमनेन पूर्वप्रतिपादिते—अयं वासवदत्तादर्शनरूपोऽर्थः सत्यः किम् ? स्वप्नविज्ञानं किम् ? इति विकल्पे स्वप्नविज्ञाननिरसनेन वासवदत्तासद्भावः स्थापितो वेदितव्यः। अत्रोत्तरवाक्यार्थं प्रति पूर्ववाक्यार्थो हेतुरिति वाक्यार्थहेतुकं काव्यलिङ्गम् ॥८॥

असम्भावनीयम् असम्भवम्। **आः** इति पूर्वस्मृतौ ['आः स्मरणेऽप्यकारणे कोपसन्तापयोरपि' इति मेदिनी]।

"**यदि**" इति—**यदि** चेद् **तावदिति** वाक्यालङ्कारे **अयम्** एषः अनुभूयमानः वासवदत्तादर्शनरूपोऽर्थः **स्वप्नः** प्रसुप्तविज्ञानम्, तर्हि, **अप्रतिबोधनं** तस्मात् स्वप्नाद् अजागरणम् **धन्यं** प्रियम्। पक्षान्तरमाह—**अथ** चेद् **अयम्** एषः **विभ्रमः** मतिभ्रमः, **वा स्यात्** भवेत्, तर्हि, **मे** मम **विभ्रमो हि** मतिभ्रम एव **चिरं** दीर्घकालम् **अस्तु** भवतु। वासवदत्तासमागमानुबन्धितया स्वप्नविभ्रमावपि मे काममभीष्टाविति भावः ॥९॥

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

स्वप्नस्यान्ते विबुद्धेन नेत्रविप्रोषिताञ्जनम् ।
चारित्रमपि रक्षन्त्या दृष्टं दीर्घालकं मुखम् ॥१०॥

अपि च वयस्य ! पश्य पश्य—

योऽयं सन्त्रस्तया देव्या तया बाहुर्निपीडितः ।
स्वप्नेऽप्युत्पन्नसंस्पर्शो रोमहर्षं न मुञ्चति ॥११॥

विदूषकः—मा दाणिं भवं अणत्थं चिन्तिअ । एदु एदु भवं । चउस्सालं पविसामो ।

मेदानीं भवाननर्थं चिन्तयित्वा । एत्वेतु भवान् । चतुःशालं प्रविशावः ।

[प्रविश्य]

काञ्चुकीयः—जयत्वार्यपुत्रः । अस्माकं महाराजो दर्शको भवन्तमाह —एष खलु भवतोऽमात्यो रुमण्वान् महता बलसमुदयेनोपयातः खल्वारुणिमभिघातयितुम् । तथा हस्त्यश्वरथपदातीनि मामकानि विजयाङ्गानि सन्नद्धानि । तदुत्तिष्ठतु भवान् । अपि च,

भिन्नास्ते रिपवो भवद्गुणरताः पौराः समाश्वासिताः
पार्ष्णी यापि भवत्प्रयाणसमये तस्या विधानं कृतम् ।

"**स्वप्नस्यान्ते**" इति—**स्वप्नस्य** स्वापस्य **अन्ते** अवसाने **विबुद्धेन** जागरितेन सता, मयेत्यर्थः, **चारित्रम्** कुलस्त्रीजनोचितं चरित्रं सद्वृत्तं परपुरुषदर्शनपरिहारादिलक्षणम् **रक्षन्त्याः** सुपरिपालयन्त्याः, **अपि, नेत्रविप्रोषिताञ्जनम्** नेत्राभ्यां नयनाभ्यां विप्रोषितं चिरनिर्गतम् अञ्जनं कज्जलं यस्मिन् तत् तथाभूतम् **दीर्घालकम्** दीर्घाः असंयततया अधोलम्बमानाः अलकाश्चूर्णकुन्तला यस्मिन् तत् तथोक्तम् **मुखम्** आननम् **दृष्टम्** प्रत्यक्षम् अवलोकितम् । सविशेषतन्मुखस्य प्रत्यक्षदर्शनेन नान्या शङ्का भवितुमर्हतीति भावः ॥१०॥

"**योऽयम्**" इति—**तया देव्या** वासवदत्तया **सन्त्रस्तया** भीतभीतया, दृढं बाहुनिपीडनेन प्रतिबुद्धः न मामीक्षेतेति शङ्कापन्नयेत्यर्थः, **यः अयं** य एषः, त्वयापि प्रत्यक्षं दृश्यमानः, **बाहुः** भुजः **निपीडितः** शय्याप्रलम्बनसम्भाव्यव्यथावारणाय शयनीयारोपणकाले मन्दगृहीतः, जागरणभिया मन्दग्रहणम्, तेन रोमहर्षोत्कर्षः, सोऽयम्, यत्तदोर्नित्यसम्बन्धात् तच्छब्दग्रहणम्, **स्वप्ने अपि** स्वप्नावस्थायामपि **उत्पन्नसंस्पर्शः** उत्पन्नः सञ्जातः संस्पर्शः आलिङ्गनं यस्य तथा अपि **रोमहर्षं** रोमहर्षणम् आनन्दादुद्गतरोमाञ्चम् **न मुञ्चति** नैव जहाति, स्वप्न-

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

—स्वप्न के अन्त में जागने पर मैंने पतिव्रता धर्म का पालन करती हुई वासवदत्ता के मुख को देखा है। उसकी आंखें अञ्जनरहित थीं और उसके चूर्ण-कुन्तल भी बहुत लम्बे बढ़े हुए थे ॥१०॥

और मित्र ! यह देखो,

—डरते-डरते उस देवी ने जो यह मेरी बांह (धीरे से) पकड़ी थी, वह निद्रावस्था में उत्पन्न हुए रोमाञ्च को अब जगाने पर भी नहीं छोड़ रही है ॥११॥

विदूषक—आप इस समय अमङ्गल बातों को मत सोचिए। आइए, चतुःशाला (महल) में चलें।

[कंचुकी का प्रवेश]

कंचुकी—जय हो आर्यपुत्र की। हमारे महाराज दर्शक ने कहला भेजा है कि—ये आपके अमात्य रुमण्वान् बड़ी भारी सेना लेकर आरुणि का वध करने के लिए आये हुए हैं। और इसी तरह मेरे भी—हाथी, घोड़े, रथ, और पैदल—सारी विजय-सेनाएं तैयार हैं। इसलिए, आप उठिए। और भी,

—आपके शत्रुओं में भेद (फूट) पैदा हो गया है (और उनमें से बहुतों को अपनी ओर मिला लिया है)। आपके गुणों में रीझे हुए नगर-वासियों को आश्वासन दे दिया गया है। यात्रा के समय आपकी पृष्ठ-गामिनी सेना

स्पर्शसुखेनाद्यापि रोमाञ्चित एव वर्तते इत्यर्थः ॥११॥

अनर्थम् मृतजनसमागमरूपम् अनिष्टम्। **चतुःशालम्** संजवनम्। **बलसमुदयेन** बलस्य सैन्यबलस्य यः समुदयः समुदायस्तेन सैन्यसङ्घेनेत्यर्थः ['समुदायः समुदयः समवायश्चयो गणः' इत्यमरः]। **उपयातः** आगतः। **आरुणिं** तदाख्यं भवच्छत्रुम्। **हस्त्यश्वेति**—हस्तिनश्च अश्वाश्च रथाश्च पदातः पादचारिणो योधाश्च एतेषां समाहारः हस्त्यश्वरथपदातम् ['द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम्' (पा० २.४.२) इत्यनेन समाहारैकवद्भावः। तदेषामस्तीति हस्त्यश्वरथपदातीनि। 'अत इनिठनौ' (पा० ५.२.११५) इति इनिः। विजयाङ्गविशेषणत्वान्नपुंसकत्वं बहुत्वं च]। **विजयाङ्गानि** विजयावहानि अङ्गानि सैन्यानीत्यर्थः [शाकपार्थिवादित्वान्मध्यमपदलोपः]।

"भिन्ना" इति—**ते** तव **रिपवः** परिपन्थिनः शत्रवः **भिन्नाः** भेदोपायेन असंहताः कृताः। **भवद्गुणरताः** भवतः गुणेषु राज्यसुपरिपालनादिषु रताः अनुरक्ताः, भवद्गुणगरिम्णा भवन्तमेव भूपतित्वेन कामयमाना इत्यर्थः, **पौराः** पुरवासिनः **समाश्वासिताः** अविलम्बेन वत्सराजः स्वशत्रून् पराजित्य स्वराज्ये

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

यद् यत् साध्यमरिप्रमाथजननं तत् तन्मयानुष्ठितं
तीर्णा चापि बलैर्नदी त्रिपथगा वत्साश्च हस्ते तव ॥१२॥

राजा—[उत्थाय] बाढम् । अयमिदानीम्,

उपेत्य नागेन्द्रतुरङ्गतीर्णे तमारुणिं दारुणकर्मदक्षम् ।
विकीर्णबाणोग्रतरङ्गभङ्गे महार्णवाभे युधि नाशयामि ॥१३॥

[निष्क्रान्ताः सर्वे]

इति पञ्चमोऽङ्कः

प्रतिष्ठास्यत इति कथयित्वा आश्वासं प्रापिताः । **अपि या, भवत्प्रयाणसमये** भवतः तव प्रयाणसमये गमनकाले **पार्ष्णी** सैन्यपृष्ठम् अस्तीत्यर्थः, **तस्याः, विधानं कृतम्** संरक्षणोपायो विहितः । **अरिप्रमाथजननम्** शत्रुविध्वंसकारकम् **यद् यत्** यत्किञ्चिदपि **साध्यम्** करणीयम्, **तत् तत्** तत् सर्वमपि, **मया, अनुष्ठितम्** कृतम् । **बलैश्च** अस्माकं सैन्यैश्च **त्रिपथगा** त्रयाणां पथां समाहारः त्रिपथम्, तेन गच्छतीति त्रिपथगा आकाशभूमिपातालमार्गगामिनी गङ्गा **नदी अपि** सरिदपि **तीर्णा** लङ्घिता पारं प्राप्ता । अतः **वत्साः** तदाख्याः जनपदाः **तव** ते **हस्ते** करे वेदितव्या इति शेषः, सर्वेषामपि जयसाधनानां सम्पादनेन सम्प्रति वत्सास्तव हस्तगता एव वेदितव्या इत्यर्थः ।

वत्सानां हस्तगतत्वं प्रति 'भिन्नास्ते' इत्यादिवाक्यानामर्था हेतव इति वाक्यार्थहेतुकं काव्यलिङ्गम् । शार्दूलविक्रीडितम् ॥१२॥

अयमिदानीमिति श्लोकेनान्वयि ।

"उपेत्य" इति—**इदानीम्** अस्मिन् काले **अयम्** एषः अहम् **उपेत्य** शत्रुराष्ट्रम् अभिगम्य **नागेन्द्रतुरङ्गतीर्णे** नागेन्द्राः गजराजाः तुरङ्गाः हयाश्च तीर्णाः कृतसञ्चारा यस्मिन् तथाभूते **विकीर्णबाणोग्रतरङ्गभङ्गे** विकीर्णाः प्रक्षिप्ताः बाणाः शराः उग्रतरङ्गाणां भयङ्कराणां भङ्गाः शकलानीव यस्मिन्

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

का भी सुप्रबन्ध कर लिया गया है। शत्रुओं का विनाश करने के लिए जो जो साधन हो सकते हैं, उनका भी अच्छी तरह आयोजन कर लिया गया है। और, हमारे सैन्य दल ने भागीरथी पार कर ली है। अब आप वत्स-देशों को अपने हाथ में ही आये हुए समझिए ॥१२॥

राजा—[उठकर] बहुत अच्छा। यह मैं अब,—जाकर (शत्रु पर चढ़ाई कर) हाथी और घोड़ों की गति से संकुलित तथा चलाये हुए बाण-रूपी भयंकर लहरों वाले रण-महासागर में दारुण कर्म करने में प्रवीण उस आरुणि का विनाश करूँगा ॥१३॥

[सब का प्रस्थान]

पांचवां अङ्क समाप्त।

तत् तथोक्ते **महार्णवाभे** महांश्चासौ अर्णवः समुद्रः, तस्य आभा इव आभा यस्य तस्मिन् तथाभूते समुद्रोपमे **युधि** सङ्ग्रामे **दारुणकर्मदक्षम्** दारुणकर्मणि भीषण-कृत्ये दक्षं चतुरम् **तम्** प्रसिद्धम् **आरुणिम्** तदाख्यं रिपुम् **नाशयामि** घातयामि। समस्तवस्तुविषया उपमा। वृत्त्यनुप्रासः। उपेन्द्रवज्रावृत्तम्। तल्लक्षणं यथा—'उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ' इति ॥१३॥

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

अथ षष्ठोऽङ्कः

[ततः प्रविशति काञ्चुकीयः]

काञ्चुकीयः—क इह भोः ! काञ्चनतोरणद्वारमशून्यं कुरुते ।

[प्रविश्य]

प्रतीहारी—अय्य ! अहं विजआ । किं करीअदु ।

आर्य ! अहं विजया । किं क्रियताम् !

काञ्चुकीयः—भवति ! निवेद्यतां निवेद्यतां वत्सराज्यलाभप्रवृद्धोदयायोदयनाय—एष खलु महासेनस्य सकाशाद् रैभ्यसगोत्रः काञ्चुकीयः प्राप्तः, तत्रभवत्या चाङ्गारवत्या प्रेषितार्या वसुन्धरा नाम वासवदत्ताधात्री च, प्रतीहारमुपस्थिताविति ।

प्रतीहारी—अय्य ! अदेसकालो पडिहारस्स ।

आर्य ! अदेशकालः प्रतीहारस्य ।

काञ्चुकीयः—कथमदेशकालो नाम ।

प्रतीहारी—सुणादु अय्यो । अज्ज भट्टिणो सुय्यामुप्पासादगदेण केण वि वीणा वादिदा । तं च सुणिअ भट्टिणा भणिअं—घोसवदीए सद्दो विअ सुणीअदि त्ति ।

श्रृणोत्वार्यः । अद्य भर्तुः सूर्यामुखप्रासादगतेन केनापि वीणा वादिता । तां च श्रुत्वा भर्त्रा भणितम्—घोषवत्याः शब्द इव श्रूयत इति ।

काञ्चुकीयः—ततस्ततः ।

प्रतीहारी—तदो तहिं गच्छिअ पुच्छिदो—कुदो इमाए वीणाए आगमो त्ति । तेण भणिअं—अह्मेहिं णम्मदातीरे कुय्यगुम्मलग्गा दिट्ठा । जइ प्पओअणं इमाए, उवणीअदु भट्टिणोत्ति । तं च उवणीदं अङ्के करिअ मोहं गदो भट्टा । तदो मोहप्पच्चागदेण बप्फपय्याउलेण मुहेण भट्टिणा भणिअं—दिट्ठासि घोसवदि ! सा हु ण दिस्सदि त्ति । अय्य ! ईदिसो अणवसरो । कहं णिवेदेमि !

ततस्तत्र गत्वा पृष्टः—कुतोऽस्या वीणाया आगम इति । तेन भणितम्—अस्माभिर्नर्मदातीरे कूर्चगुल्मलग्ना दृष्टा । यदि प्रयोजनमनया, उपनीयतां भर्त्रे इति । तां चोपनीतामङ्के कृत्वा मोहं गतो भर्ता । ततो मोहप्रत्यागतेन बाष्पपर्याकुलेन मुखेन भर्त्रा भणितम्—दृष्टासि घोषवति ! सा खलु न दृश्यत इति । आर्य ! ईदृशोऽनवसरः कथं निवेदयामि !

अथ षष्ठाङ्के मिश्रविष्कम्भकमाश्रित्य कांचुकीयप्रवेशमाह—'ततः प्रविशति

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

छठा अङ्क

[कंचुकी का प्रवेश]

कंचुकी—अरे ! यहां स्वर्ण-तोरण-द्वार पर कौन है ?

[प्रतीहारी का प्रवेश]

प्रतीहारी—आर्य ! मैं विजया हूँ । कहिए, क्या काम है ?

कंचुकी—श्रीमति ! वत्स-राज्य के लाभ से विशेष उदय को प्राप्त हुए महाराज उदयन से निवेदन कीजिए कि महाराज महासेन के यहां से रैभ्यसगोत्र कंचुकी आये हुए हैं, और महारानी अङ्गारवती की भेजी हुई वासवदत्ता की धात्री (धाय) आर्या वसुन्धरा भी आई हुई हैं । दोनों द्वार पर खड़े हैं ।

प्रतीहारी—आर्य ! इस समय निवेदन करने के लिए न तो उचित स्थान है और न अनुकूल अवसर ही ।

कंचुकी—क्यों, उचित स्थान और अनुकूल अवसर क्यों नहीं ?

प्रतीहारी—सुनें, आर्य ! आज महाराज के सूर्यामुख प्रासाद में किसी ने वीणा बजा दी । उसे सुनकर महाराज ने कहा कि यह घोषवती वीणा की-सी झंकार सुनाई दे रही है ।

कंचुकी—तब ? तब ?

प्रतीहारी—तब वहां जाकर महाराज ने उससे पूछा—'यह वीणा कहां से आई ?' उसने कहा—'हमने इसे नर्मदा के तट पर कुशाओं की झाड़ी में पड़ा पाया । यदि महाराज का इससे प्रयोजन हो तो इसे अपने पास रखें ।' उसे अङ्क में लेकर ही महाराज मूर्च्छित हो गये । फिर सचेत होने पर आंसू बहाते हुए महाराज कहने लगे—'घोषवती ! तू तो मिल गई, पर वह नहीं दीख पड़ती ।' आर्य ! इस तरह अनुकूल अवसर नहीं है । कैसे निवेदन करूँ ?

काञ्चुकीयः' इति ।

काञ्चनतोरणद्वारम् स्वर्णनिर्मितबहिर्द्वारम् **अशून्यं कुरुते** सनाथं करोति, तत्र वर्तत इत्यर्थः । **वत्सराज्येति**—वत्सानां तदाख्यानां देशानां यद् राज्यम्, तस्य लाभेन प्राप्त्या प्रवृद्धः प्रकर्षेण वृद्धिं गतः उदयो यस्य तस्मै । **रैभ्यसगोत्रः** रैभ्यकुलोद्भवः । रैभ्यस्तत्कुले कश्चित् पूर्वपुरुषः । **अङ्गारवत्या** अङ्गारवती प्रद्योत-पत्नी वासवदत्तामाता तया । **वासवदत्ताधात्री** वासवदत्तायाः उपमाता । **प्रतीहारम्** द्वारदेशम् । **अदेशकालः** अयोग्यः देशः, अयोग्यः कालश्च । प्रतीहार्या गमनस्य अयोग्यः राज्ञो देशः, निवेदनस्य नानुकूलश्च अवसर इत्यर्थः । **सूर्यामुखेति**—सूर्या नवोढा पद्मावती, तस्याः सुखप्रासादगतेन प्रासादपुरोभागवर्तिना । यद्वा—सूर्या (सूर्यासावित्रीति प्रसिद्धा) विवाहदेवता, सा मङ्गलार्थं दारुशिलाद्युत्कीर्णा

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

काञ्चुकीयः—भवति ! निवेद्यताम् इदमपि तदाश्रयमेव ।

प्रतीहारी—अय्य ! इअं णिवेदेमि । एसो भट्टा सुय्यामुहप्पासादादो ओदरइ । ता इह एव्व णिवेदइस्सं ।

आर्य ! इयं निवेदयामि । एष भर्ता सूर्यामुखप्रासादादवतरति । तदिहैव निवेदयिष्यामि ।

काञ्चुकीयः—भवति ! तथा ।

[उभौ निष्क्रान्तौ]

मिश्रविष्कम्भकः ।

[ततः प्रविशति राजा विदूषकश्च]

राजा—

श्रुतिसुखनिनदे ! कथं नु देव्याः
स्तनयुगले जघनस्थले च सुप्ता ।
विहगगणरजोविकीर्णदण्डा
प्रतिभयमध्युषितास्यरण्यवासम् ॥१॥

अपि च । अस्निग्धासि घोषवति ! या तपस्विन्या न स्मरसि,

श्रोणीसमुद्वहनपार्श्वनिपीडितानि
खेदस्तनान्तरसुखान्युपगूहितानि ।

मुखे यस्य स सूर्यामुखप्रासादः, तं गतेन—इति गणपतिशास्त्रिणः । **घोषवत्याः** घोषवती वासवदत्ताचिरसङ्गिनी वीणा तस्याः । **कूर्चगुल्मलग्ना** दर्भस्तम्बसंसक्ता । **उपनीयताम्** गृह्यताम् । **मोहप्रत्यागतेन** अपगतमोहेन लब्धसंज्ञेन ।

इदमपि राजसमीपेऽस्मदुपस्थानमपीत्यर्थः । **तदाश्रयमेव** सा वासवदत्ता आश्रयो यस्य तत् तथा, तत्संबद्धमेव इत्यर्थः ।

मिश्रविष्कम्भक लक्षणं यथा—'वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः । संक्षेपार्थस्तु विष्कम्भो मध्यपात्रप्रयोजितः । एकानेकगतः शुद्धः सङ्कीर्णो नीचमध्यमैः ।' इति ।

"**श्रुतिसुखे**"ति—**श्रुतिसुखनिनदे** ! श्रुतिसुखः श्रवणानन्दकरः निनदः शब्दो यस्यास्तत्सम्बुद्धौ तथा, हे कर्णमधुरस्वने घोषवति ! इत्यर्थः, **देव्याः** वासवदत्तायाः **स्तनयुगले** कुचयुग्मे **जघनस्थले च** श्रोणिपुरोभागे च **सुप्ता** सुखस्थिता, वासवदत्तायां वीणावादनश्रममपनोदयन्त्यां श्रमसुलभनिद्रां भजमानायां वा कदाचित् तदीये स्तनयुगले कदाचिच्च तदीये जघनस्थले सुखस्थितेत्यर्थः, त्वम्, अधुना, **विहगगणरजोविकीर्णदण्डा** विहगानां पक्षिणां गणः समूहः, तस्य रजसा धूल्या विष्टया वा विकीर्णः व्याप्तः दण्डः प्रवालः यस्याः सा तादृशी ['वीणा-

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

कंचुकी—श्रीमति ! निवेदन कर दीजिए। यह भी उसी से सम्बन्ध रखता है।
प्रतीहारी—आर्य ! यह निवेदन किये देती हूँ। ये महाराज सूर्यामुख प्रासाद से उतर ही रहे हैं। तो यहीं निवेदन किये देती हूँ।
कंचुकी—श्रीमति ! ऐसा ही कीजिए।

[दोनों का प्रस्थान]

मिश्रविष्कम्भक

[राजा और विदूषक का प्रवेश]

राजा—

—ऐ कर्ण-मधुर झंकार (सुरीले शब्द) वाली ! पहले तो तू देवी वासवदत्ता के स्तनों और जांघों पर सुख से लेटा करती थी। तो अब पक्षियों की बीठ से भरे हुए डंडे वाली होकर तू किस तरह भयानक जंगल में वास करती रही ॥१॥

और भी। ऐ घोषवती ! तू बड़ी स्नेह-शून्य है, जो उस बेचारी का,—(बजाते समय) अपनी जांघ पर तुम्हारे पेंदे को उठाना और अपनी बगल में तुम्हारे वीणा-दण्ड को (गोद से पकड़ने के समय) प्रेम-पूर्वक

दण्डः प्रवालः स्याद्' इत्यमरः] **प्रतिभयं** भयानकम् **अरण्यवासं** वनवासम् **कथं नु** कथमिव **अध्युषितासि** निवासं कृतवती असि [‘उपान्वध्याङ्वसः’ (पा० १.४.४८) इति द्वितीया]। पुष्पिताग्रावृत्तम् ॥१॥

घोषवति ! हे प्रशस्तघोषयुक्ते वीणे ! त्वम् **अस्निग्धासि** स्नेहशून्यासि। **या** या त्वम् **तपस्विन्याः** अनुकम्प्यायाः वासवदत्तायाः **न स्मरसीति** श्लोकेन सम्बध्यते।

“श्रोणी”इति—**श्रोणीसमुद्वहनपार्श्वनिपीडितानि** श्रोण्या कटिभागेन, वासवदत्तया स्वश्रोणीभागमारोप्येत्यर्थः, समुद्वहनानि च धारणानि च, पार्श्वेन पार्श्वदेशेन निजोत्सङ्गेन निपीडितानि अवमर्दनानि च [यद्वा—श्रोणी वासवदत्ताकटिप्रदेश इव श्रोणी वीणादण्डाधःस्थं शब्दगाम्भीर्यार्थं चर्मावनद्धं दारुमयपृथुभाण्डं ककुभाख्यम्, तस्याः समुद्वहनानि च, पार्श्वं वासवदत्तापार्श्वदेश इव पार्श्वं प्रवालाख्यः वीणादण्डः, तस्य निपीडितानि वादनार्थम् उत्सङ्गेन धारणावसरे अवमर्दनानि च] **खेदस्तनान्तरसुखानि** खेदे वादनजनितश्रमे सति स्तनान्तरे कुचयोरन्तराले सुखानि सुखदानि **उपगूहितानि** आलिङ्गनानि **विरहे** मद्वियोगे निमित्ते **माम्** उदयनम् **उद्दिश्य** लक्ष्यीकृत्य **परिदेवितानि च** विलापवादितानि च **वाद्यन्तरेषु** चमत्कारपूर्णेषु सङ्गीतस्वरविरामेषु **सस्मितानि** ईषद्धाससहितानि **कथितानि च** विरहगीतरूपाणि कथनानि च **न स्मरसि** नैव ध्यायसि।

वासवदत्तापरित्यागपूर्वं प्रतिभयवनवासाश्रयणेन सुविज्ञेयं तव स्मरणवै-

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

उद्दिश्य मां च विरहे परिदेवितानि
वाद्यान्तरेषु कथितानि च सस्मितानि ॥२॥

विदूषकः—अलं दाणिं भवं अदिमत्तं सन्तप्पिअ।
अलमिदानीं भवानतिमात्रं सन्तप्य।

राजा—वयस्य ! मा मैवम्,
चिरप्रसुप्तः कामो मे वीणया प्रतिबोधितः।
तां तु देवीं न पश्यामि यस्या घोषवती प्रिया ॥३॥
वसन्तक ! शिल्पिजनसकाशान्नवयोगां घोषवतीं कृत्वा शीघ्रमानय।

विदूषकः—जं भवं आणवेदि। [वीणां गृहीत्वा निष्क्रान्तः]
यद् भवानाज्ञापयति। [प्रविश्य]

प्रतीहारी—जेदु भट्टा। एसो खु महासेणस्स सआसादो रब्भसगोत्तो कञ्चुईओ देवीए अङ्गारवदीए पेसिदा अय्या वसुन्धरा णाम वासवदत्ताधत्ती अ पडिहारं उवट्ठिदा।
जयतु भर्ता। एष खलु महासेनस्य सकाशाद् रैभ्यसगोत्रः काञ्चुकीयो देव्याङ्गारवत्या प्रेषितार्या वसुन्धरा नाम वासवदत्ताधात्री च प्रतिहारमुपस्थितौ।

राजा—तेन हि पद्मावती तावदाहूयताम्।

प्रतीहारी—जं भट्टा आणवेदि। [निष्क्रान्ता] यद् भर्ताज्ञापयति।

राजा—किं नु खलु शीघ्रमिदानीमयं वृत्तान्तो महासेनेन विदितः।

[ततः प्रविशतिः पद्मावती प्रतीहारी च]

प्रतीहारी—एदु एदु भट्टिदारिआ। —एतु एतु भर्तृदारिका।

पद्मावती—जेदु अय्यउत्तो। —जयत्वार्यपुत्रः।

राजा—पद्मावति ! किं श्रुतं महासेनस्य सकाशाद् रैभ्यसगोत्रः काञ्चुकीयः प्राप्तः, तत्रभवत्या चाङ्गारवत्या प्रेषितार्या वसुन्धरा नाम वासवदत्ताधात्री च, प्रतिहारमुपस्थिताविति।

पद्मावती—अय्यउत्त ! पिअं मे ञादिकुलस्स कुसलवुत्तन्तं सोदुं।
आर्यपुत्र ! प्रियं मे ज्ञातिकुलस्य कुशलवृत्तान्तं श्रोतुम्।

मुख्यमिति भावः। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥२॥

"**चिरप्रसुप्त**" इति—**वीणया** घोषवत्या **मे** मम **चिरप्रसुप्तः** चिरकालं हृदि निलीय स्थितः **कामः** प्रियासम्मिलनेच्छा **प्रतिबोधितः** जागरितः उत्तेजितः। **यस्याः** देव्याः वासवदत्तायाः, इयम्, **घोषवती** एतदाख्या वीणा **प्रिया**

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

दबाना, तथा (बजाते-बजाते) थक जाने पर अपने कुचों के बीच में दबाकर तुम्हारा सुखद आलिङ्गन करना, व मेरे बिछोह के अवसर पर मुझे उद्देश करके विलाप-पूर्वक तुम्हें बजाना और सङ्गीत के विरामों में स्मित-भरे (विरहगीतरूपी) वचनों का कहना—यह सब तनिक भी याद नहीं करती ॥२॥

विदूषक—महाराज । अब बहुत सन्ताप न कीजिए ।

राजा—नहीं, मित्र ! ऐसा नहीं हो सकता ।

—घोषवती वीणा ने चिर-काल से सोई हुई विरहाग्नि को जगा दिया है । पर वह देवी तो दिखाई नहीं देती, जिसे यह घोषवती इतनी प्यारी थी ॥३॥

वसन्तक ! कारीगरों से इस घोषवती की मरम्मत करा और (पालिश आदि से) नई कर शीघ्र लाओ ।

विदूषक—जो आप की आज्ञा ।

[वीणा लेकर जाता है]

[प्रतीहारी का प्रवेश]

प्रतीहारी—जय हो महाराज की । महाराज ! महासेन के यहां से रैभ्य गोत्र वाले कंचुकी और महारानी अङ्गारवती की भेजी हुई वासवदत्ता की धात्री आर्या वसुन्धरा द्वार पर उपस्थित हैं ।

राजा—तो पद्मावती को बुला लाओ ।

प्रतीहारी—जो महाराज की आज्ञा । [जाती है]

राजा—क्या महाराज महासेन ने इतने शीघ्र यह वृत्तान्त जान लिया ?

[पद्मावती और प्रतीहारी का प्रवेश]

प्रतीहारी—आइए, राजकुमारी, आइए ।

पद्मावती—जय हो आर्यपुत्र की ।

राजा—पद्मावति ! क्या तुमने सुना है कि महाराज महासेन के यहां से रैभ्य गोत्र वाले कंचुकी आये हुए हैं और महारानी अङ्गारवती की भेजी हुई वासवदत्ता की धात्री आर्या वसुन्धरा भी आई हुई हैं । दोनों द्वार पर खड़े हैं ।

पद्मावती—आर्यपुत्र ! अपने बन्धु-बान्धवों का कुशल-समाचार सुनने की मुझे बड़ी इच्छा है ।

अभीष्टा, **तां देवीं** वासवदत्ताम्, तु, **न पश्यामि** नैव द्रष्टुं लभे ॥३॥

शिल्पिजनेति—शिल्पिजनानां वीणानिर्माणकलाकोविदानां पुरुषाणां

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

राजा—अनुरूपमेतद् भवत्याभिहितम्—वासवदत्तास्वजनो मे स्वजन इति। पद्मावति! आस्यताम्। किमिदानीं नास्यते।

पद्मावती—अय्यउत्त! किं मए सह उवविट्ठो एदं जणं पेक्खिस्सदि।
आर्यपुत्र! किं मया सहोपविष्ट एतं जनं द्रक्ष्यति।

राजा--कोऽत्र दोषः।

पद्मावती—अय्यउत्तस्स अवरो परिग्गहो त्ति उदासीणं विअ होदि।
आर्यपुत्रस्यापरः परिग्रह इत्युदासीनमिव भवति।

राजा—कलत्रदर्शनार्हं जनं कलत्रदर्शनात् परिहरतीति बहुदोषमुत्पादयति। तस्मादास्यताम्।

पद्मावती—जं अय्यउत्तो आणवेदि। [उपविश्य] अय्यउत्त! तादो वा अम्बा वा किं णु खु भणिस्सदि त्ति आविग्गा विअ संवुत्ता।
यदार्यपुत्र आज्ञापयति। आर्यपुत्र! तातो वाम्बा वा किं नु खलु भणिष्यतीत्याविग्नेव संवृत्ता।

राजा—पद्मावति। एवमेतत्।

किं वक्ष्यतीति हृदयं परिशङ्कितं मे
कन्या मयाप्यपहृता न च रक्षिता सा।
भाग्यैश्चलैर्महदवाप्तगुणोपघातः
पुत्रः पितुर्जनितरोष इवास्मि भीतः॥४॥

पद्मावती—णं किं सक्कं रक्खिदुं पत्तकाले।
ननु किं शक्यं रक्षितुं प्राप्तकाले।

प्रतीहारी—एसो कंचुईओ धत्ती अ पडिहारं उवट्ठिदा।
एष काञ्चुकीयो धात्री च प्रतिहारमुपस्थितौ।

सकाशात् समीपात्। **नवयोगाम्** नवः नूतनः योगः दूषितभागापनयनेन नवीकरणोपायो यस्यास्ताम्। **प्रतिहारम्** द्वारदेशम्। **ज्ञातिकुलस्य** स्वजनसमुदायस्य। **कुशलवृत्तान्तं** क्षेमवार्ताम्।

परिग्रहः पत्नी। **उदासीनमिव** स्नेहाल्पतेव। **कलत्रदर्शनार्हम्** कलत्रदर्शनम् अर्हतीति तथोक्तम्, अभेदेन स्त्रीदर्शनोचितमित्यर्थः। **बहुदोषम्** भेदभावजन्यां निन्दामित्यर्थः। **आविग्ना** शङ्कापर्याकुला।

"किं वक्ष्यति" इति—तातः अम्बा वा, **किम् वक्ष्यति** किं कथयिष्यति प्रेषितजनद्वारेत्यर्थः, **इति** एवम् **मे** मम मदीयम् **हृदयं** चेतः **परिशङ्कितम्** शङ्कापर्याकुलम्, वर्तते, सापराधत्वादिति भावः। **कन्या अपि** असञ्जातपरिणया कुमारी सती अपि **सा** प्रद्योतपुत्री वासवदत्ता **मया अपहृता** अपहृत्यानीता

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

राजा—तुमने यह अनुरूप ही बात कही कि वासवदत्ता के स्वजन मेरे भी स्वजन हैं। पद्मावति ! बैठो। इस समय बैठ क्यों न रही हो ?

पद्मावती—आर्यपुत्र ! क्या आप मेरे साथ बैठकर उन लोगों से मिलेंगे ?

राजा—इसमें दोष ही क्या है ?

पद्मावती—आर्यपुत्र ने दूसरा विवाह कर लिया है, यह बात उन्हें कहीं बुरी न लगे ?

राजा—परन्तु 'स्त्री-दर्शन के योग्य जन को स्त्री-दर्शन से रोकता है'—इस प्रकार मेरी बड़ी निन्दा होगी। इसलिए बैठो।

पद्मावती—आर्यपुत्र की जो आज्ञा। [बैठकर] आर्यपुत्र ! माता और पिता जी ने, न जाने, क्या कहा होगा, इस बात से मैं बड़ी बेचैन सी हो रही हूँ।

राजा—पद्मावति ! यह बात ऐसी ही है।

—वे न जाने क्या कहें—इसी बात से मेरा भी चित्त उद्विग्न है। मैं उनकी कन्या को भगा लाया किन्तु उसकी रक्षा न कर सका। मैं तो उनसे ठीक उसी तरह डर रहा हूँ, जिस तरह कि दुर्भाग्यवश अपने सद्गुणों पर बड़ा भारी आघात पहुँचने से अपने ऊपर कुपित हुए पिता से सच्चरित्र पुत्र डरता है ॥४॥

पद्मावती—जिसका विनाश-काल आ गया, उसकी रक्षा कौन कर सकता है ?

प्रतीहारी—महाराज ! कंचुकी और धात्री द्वार पर खड़े हैं।

प्रद्योतस्यानुमतिमन्तरेणैव बलाद् गृहीता **न च नैव रक्षिता** सुपरिपालिता, वह्निदाहदग्धत्वादित्यर्थः। प्रथमं कन्याया अपहरणमेव तावद् गुरुतरापराधतयाक्षम्यं भवति, अपहृताया अपि पुनररक्षणं तु अपराधद्वययोगादतीवाक्षम्यमिति भावः। **चलैः** चञ्चलैः अस्थिरैः **भाग्यैः** भागधेयैः, तादृशविपर्ययावस्थाहेतुभूतैर्मम दुरदृष्टैरित्यर्थः, **महदवाप्तगुणोपघातः** महद् यथा स्यात् तथा अवाप्तः प्राप्तः गुणानां सदाचारादिरूपाणां सद्गुणानाम् उपघातः भ्रंशः येन स तथाभूतः, अहम्, **पितुः** जनकसकाशात् **जनितरोषः** जनितः उत्पादितः रोषः कोपः येन स तथोक्तः **पुत्रः** सुतः, **इव, भीतोऽस्मि** शङ्कितचित्तोऽस्मि। महदित्यस्य क्रियाविशेषणतया 'भीतः' इत्यनेन वा सम्बन्धः। पुत्र इवेत्युपमा। तया चात्मनः पुत्रस्थानीयत्वेन प्रद्योते प्रगाढा भक्तिर्ध्वनिता इत्यलङ्कारेण वस्तुध्वनिः। वसन्ततिलकम् ॥४॥

ननु इति प्रश्ने। **प्राप्तकाले** विनाशकाले प्राप्ते **किं रक्षितुं शक्यम्** किं त्रातुं शक्यम्। यस्य जीवनावधिः पूर्णः न स जीवतीति भावः। प्रकृते तु 'मम रक्षाप्रमादादेव वासवदत्तोपरता' इत्यनुशोचनेन न मनसि खेदनीयमिति

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

राजा—शीघ्रं प्रवेश्यताम्।

प्रतीहारी—जं भट्टा आणवेदि। [निष्क्रान्ता]

यद् भर्ताज्ञापयति।

[ततः प्रविशति काञ्चुकीयो धात्री प्रतीहारी च]

काञ्चुकीयः—भोः!

सम्बन्धिराज्यमिदमेत्य महान् प्रहर्षः
स्मृत्वा पुनर्नृपसुतानिधनं विषादः।
किं नाम दैव! भवता न कृतं यदि स्यात्
राज्यं परैरपहृतं कुशलं च देव्याः ॥५॥

प्रतीहारी—एसो भट्टा। उवसप्पदु अय्यो।

एष भर्ता। उपसर्पत्वार्यः।

काञ्चुकीयः—[उपेत्य] जयत्वार्यपुत्रः।

धात्री—जेदु भट्टा। —जयतु भर्ता।

राजा—[सबहुमानम्] आर्य!

पृथिव्यां राजवंश्यानामुदयास्तमयप्रभुः।
अपि राजा स कुशली मया काङ्क्षितबान्धवः ॥६॥

काञ्चुकीयः—अथ किम्। कुशली महासेनः। इहापि सर्वगतं कुशलं पृच्छति।

राजा—[आसनादुत्थाय] किमाज्ञापयति महासेनः।

काञ्चुकीयः—सदृशमेतद् वैदेहीपुत्रस्य। नन्वासनस्थेनैव भवता श्रोतव्यो महासेनस्य सन्देशः।

पद्मावत्या आशयः।

भोः! इति श्लोकेन सह सम्बध्यते।

"सम्बन्धिराज्यमि"ति —**इदम्** एतत् **सम्बन्धिराज्यम्** सम्बन्धिनः वासवदत्तासम्बन्धेन सम्बन्धवतः आप्तमित्रस्य उदयनस्य राज्यम् **एत्य** आगत्य प्राप्य **महान्** अत्यधिकः **प्रहर्षः** प्रमोदः आनन्दो भवति। **नृपसुतानिधनं** नृपस्य महाराजप्रद्योतस्य सुतायाः कन्यायाः वासवदत्ताया इत्यर्थः, **निधनं** मरणम् **स्मृत्वा पुनः** सञ्चिन्त्य तु **महान्** समधिकः **विषादः** दुःखं भवति। **भोः दैव!** हे विधे! **यदि** चेत् **परैः** शत्रुभिः **अपहृतम्** बलाद् आक्रम्य स्वायत्तीकृतम्, **राज्यम्, स्यात्** सिद्धं भवेत्, तथा **देव्याः** वासवदत्तायाः **कुशलं च** क्षेमं च स्यात्, सम्प्रति विधिघटितराज्यलाभहर्षेण सह वासवदत्तानिधनजन्यविषादो न स्याच्चेदित्यर्थः, यदि देव्याः कुशलं च स्यादित्यनेन वासवदत्ताया भाविकुशलं सूचितम्, तदा

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

राजा—शीघ्र अन्दर ले आओ।

प्रतीहारी—जो महाराज की आज्ञा। [जाती है]

[कंचुकी, धात्री और प्रतीहारी का प्रवेश]

कंचुकी—एक ओर तो इस अपने सम्बन्धी के राज्य में आकर मुझे अपार हर्ष, और दूसरी ओर राज-कन्या की मृत्यु का स्मरण कर महान् शोक हो रहा है। शत्रुओं द्वारा छीने हुए राज्य की प्राप्ति और देवी वासवदत्ता की कुशल—यदि ये दोनों बातें हो जातीं तो, दैव! तूने क्या न किया होता? ॥५॥

प्रतीहारी—महाराज ये हैं। आप समीप जायँ।

कंचुकी—[समीप जाकर] जय हो आर्यपुत्र की।

धात्री—जय हो महाराज की।

राजा—[बड़े सम्मान से] आर्य कहिए!

—पृथिवी में स्थित राजाओं को उन्नत और अवनत बनाने में समर्थ मेरे प्रिय-बन्धु महाराज मगधराज सकुशल तो हैं? ॥६॥

कंचुकी—हां, महाराज महासेन सकुशल हैं और यहां आप सब लोगों की कुशल पूछते हैं!

राजा—[आसन से उठकर] महाराज महासेन की क्या आज्ञा है?

कंचुकी—यह शिष्टाचार वैदेही-पुत्र के लिए सर्वथा उचित ही है। किन्तु महाराज आसन पर विराज कर ही महाराज महासेन का सन्देश सुनें।

भवता दैवेन किं नाम किमिव **न कृतं स्यात्** नैवानुष्ठितं भवेत्, अपि तु सर्वमेव कृतं स्यादित्यर्थः।

वासवदत्तानिधनहेतोः प्रद्योतोदयनौ राज्यलाभेऽपि न मुदमावहत इति भावः। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥५॥

"**पृथिव्यामि**"ति—**पृथिव्याम्** भूमण्डले **राजवंश्यानाम्** राजवंशीयानां नरपतीनामित्यर्थः, **उदयास्तमयप्रभुः** उत्कर्षापकर्षकरणसमर्थः सर्वोच्चराजसत्तावानित्यर्थः, **मया** उदयनेन कर्त्रा, मया उदयनेन सह वा **काङ्क्षितबान्धवः** काङ्क्षितम् अभिलषितम् बान्धवं बन्धुभावः यस्य येन वा तथाभूतः **स राजा** प्रद्योतः **अपि कुशली** कुशलपूर्वकः किम्, तस्य कुशलं विद्यते किमु? इत्यर्थः ॥६॥

सर्वगतं कुशलम् सर्वसम्बन्धिकुशलमित्यर्थः। **एतत्** गुरुजनाज्ञाश्रवणे सातिशयसम्मानप्रदर्शनम् **वैदेहीपुत्रस्य** वैदेही विदेहराजतनया वत्सराजमाता तस्याः पुत्रस्य **सदृशम्** अनुरूपम्, योग्यम्। **ननु** इति अनुनये सम्भ्रमे वा।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

राजा—यदाज्ञापयति महासेनः । [उपविशति]

काञ्चुकीयः—दिष्टया परैरपहृतं राज्यं पुनः प्रत्यानीतमिति । कुतः,

कातरा येऽप्यशक्ता वा नोत्साहस्तेषु जायते ।
प्रायेण हि नरेन्द्रश्रीः सोत्साहैरेव भुज्यते ॥७॥

राजा—आर्य ! सर्वमेतन्महासेनस्य प्रभावः । कुतः,

अहमवजितः पूर्वं तावत् सुतैः सह लालितो
दृढमपहृता कन्या भूयो मया न च रक्षिता ।
निधनमपि च श्रुत्वा तस्यास्तथैव मयि स्वता
ननु यदुचितान् वत्सान् प्राप्तुं नृपोऽत्र हि कारणम् ॥८॥

काञ्चुकीयः—एष महासेनस्य सन्देशः । देव्या सन्देशमिहात्रभवती कथयिष्यति ।

राजा—हा अम्ब !

षोडशान्तःपुरज्येष्ठा पुण्या नगरदेवता ।
मम प्रवासदुःखार्ता माता कुशलिनी ननु ॥९॥

"**कातरा**" इति—**ये** ये नृपाः **कातराः** अधीराः भीरवः **अपि वा** अथवा **ये अशक्ताः** शक्तिरहिताः बलरहिताः, भवन्तीत्यर्थः, **तेषु** कातरेषु अशक्तेषु च नृपेषु **उत्साहः** अध्यवसायः साहसम् **न जायते** नैव उत्पद्यते । हि निश्चितमेतद्, **प्रायेण** बहुधा **नरेन्द्रश्रीः** राजलक्ष्मीः **सोत्साहैः** उत्साहसम्पन्नैः अध्यवसायिभिः, **एव भुज्यते** अनुभूयते । ['नरेन्द्रश्रीः' इत्यत्र 'नरेन्द्र ! हे राजन् ! श्रीः राजलक्ष्मीः' इति वा पदच्छेदेन व्याख्येयम्]।

सर्वथा वीरभोग्या वसुन्धरेति, वीरानुरागिणी हि राजलक्ष्मीरिति च भावः । धैर्यशक्तिसाहसावलम्बनेनैव भवता परैरपहृतं राज्यं पुनः प्रत्यानीय सम्प्रति सानन्दमुपभुज्यते इति प्रकृते विशेषे कथनीये सामान्यस्य कथनादप्रस्तुतप्रशंसालङ्कारः ॥७॥

"**अहम्**" इति—**पूर्वं तावत्** पुरा गजमृगयाकाले **अवजितः** पराजित्य स्वहस्तगतः कृतः **अहम्** उदयनः **सुतैः** पुत्रैः महासेनेन स्वतनयैः **सह** समम् **लालितः** सुतनिर्विशेषं वात्सल्येन पालितः, न तु पराजित्य गृहीतोऽयं शत्रुरिति कृत्वा व्यापादितः, वा किञ्चित् विसदृशमाचरितमिति भावः । **मया** तथा सुतनिर्विशेषं वात्सल्यपूर्वकपालितेनापि **कन्या** अजातोपयमा अकृतपरिणया कन्यात्वे वर्तमाना प्रद्योतसुता वासवदत्ता **दृढम्** अत्यन्तानौचित्येनेत्यर्थः, **अपहृता** बलाद् गृहीत्वा तत आनीता, **भूयः** पुनः **न च** नैव **रक्षिता** पालिता । उपकारिणि मया—कन्यायाः अपहरणं ततोऽपि तदरक्षणं च उभयमपि विरुद्धमाचरितमिति भावः । **तस्याः** [illegible], **निधनम्** मरणम् **श्रुत्वा अपि** आकर्ण्य अपि

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

राजा—जैसी महाराज महासेन की आज्ञा। [बैठता है]

कंचुकी—बड़े हर्ष की बात है कि आपने शत्रुओं से छीना गया राज्य फिर प्राप्त कर लिया है। क्योंकि,

—जो पुरुष अधीर और असमर्थ होते हैं, उनमें उत्साह नहीं पैदा होता। प्रायः उत्साही पुरुष ही राजलक्ष्मी को भोगा करते हैं ॥७॥

राजा—आर्य! यह सब महाराज महासेन का ही प्रभाव है। क्योंकि,

—उन्होंने मुझे पराजित करके पहले अपने पुत्रों के समान तो मेरा लालन किया और मैं उनकी कन्या को बलपूर्वक हर ले आया परन्तु उसकी रक्षा न कर सका। अपनी कन्या उस वासवदत्ता का मृत्यु-समाचार सुनकर भी उनका मेरे ऊपर पूर्ववत् वही स्नेह है। मेरे इन वत्सदेश के राज्यों को प्राप्त करने में भी वही महाराज मगधराज कारण हैं ॥८॥

कंचुकी—यह महाराज महासेन का सन्देश है। महारानी का सन्देश आर्या वसुन्धरा कहेंगी।

राजा—हा माता!

—सोलह रानियों में सबसे बड़ी, नगर की पवित्र देवतास्वरूप, मेरी बिदाई से दुःखी हुई माता जी सकुशल तो हैं? ॥९॥

रोषकारणे सत्यपि **मयि** मद्विषये **तथैव** पूर्ववदेव **स्वता** ममता आत्मीयोचितवात्सल्योद्रेकः अस्ति, वासवदत्तानिधनश्रवणात् प्रागिव सम्प्रत्यपि मयि सस्नेहः वर्तत इत्यर्थः। **ननु** इति अवधारणे। **उचितान्** यथार्थान्, येषु पूर्वं मम शासनमासीत् तान् अकृतन्यूनाधिकसीमापरिवर्तनानित्यर्थः, **वत्सान्** वत्सदेशान् **प्राप्तुं** पुनः प्रत्यानेतुम् **यत्** धैर्यशक्त्युत्साहादि यत् जयोपकरणम् आसीत् **अत्र** अस्मिन् विषये **नृपो हि** महाराजप्रद्योत एव **कारणम्** हेतुः।

महासेनप्रभाव एव मुख्यतो ममात्मसत्तालाभे हेतुरिति भावः। हरिणीवृत्तम्। 'रसयुगहयैर्न्सौ म्रौ स्लौ गो यदा हरिणी तदा' इति लक्षणात् ॥८॥

"**षोडशे**"ति—**षोडशान्तःपुरज्येष्ठा** षोडशानां षोडशसंख्याकानाम् अन्तःपुराणां महासेनस्य अवरोधस्त्रीणां ज्येष्ठा प्रधानमहिषी पट्टराज्ञीति यावत् **पुण्या** पवित्रचरित्रा **नगरदेवता** नगरस्य पुरस्य देवता नगरनिवासिसर्वजनपूज्यत्वाद् देवतावत् स्थिता **मम** मे **प्रवासदुःखार्ता** प्रवासदुःखेन उज्जयिन्याः कौशाम्बीं प्रति प्रस्थाने वियोगवेदनया आर्ता व्यथिता **माता** श्वश्रूः देवी अङ्गारवतीत्यर्थः, **ननु कुशलिनी**? अपि क्षेमयुक्ता? तस्याः कुशलं विद्यते किमु? इत्यर्थः।

पुण्या नगरदेवतेत्यनेन तस्यां प्रगाढा भक्तिः सूचिता, मातृशब्देन सातिशयस्नेहः, मम प्रवासदुःखार्तेति स्वविषयः वात्सल्योद्रेकश्चेति ॥९॥

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

धात्री—अरोआ भट्टिणी भट्टारं सव्वगदं कुसलं पुच्छदि ।

अरोगा भट्टिनी भर्तारं सर्वगतं कुशलं पृच्छति ।

राजा—सर्वगतं कुशलमिति । अम्ब ! ईदृशं कुशलम् ।

धात्री—मा दाणिं भट्टा आदिमत्तं सन्तप्पिदुं ।

मेदानीं भर्तातिमात्रं सन्तप्तुम् ।

काञ्चुकीयः—धारयत्वार्यपुत्रः । उपरताप्यनुपरता महासेनपुत्री एवमनुकम्प्यमानार्यपुत्रेण । अथवा,

कः कं शक्तो रक्षितुं मृत्युकाले
रज्जुच्छेदे के घटं धारयन्ति ।
एवं लोकस्तुल्यधर्मो वनानां
काले काले छिद्यते रुह्यते च ॥१०॥

राजा—आर्य ! मा मैवम् ।

महासेनस्य दुहिता शिष्या देवी च मे प्रिया ।
कथं सा न मया शक्या स्मर्तुं देहान्तरेष्वपि ॥११॥

धात्री—आह भट्टिणी—उवरदा वासवदत्ता । मम वा महासेणस्स वा जादिसा गोवालअपालआ, तादिसो एव्व तुमं पुढमं एव्व अभिप्पेदो जामादुअत्ति । एदण्णिमित्तं उज्जइणिं आणीदो । अणग्गिसक्खिअं वीणाववदेसेण दिण्णा । अत्तणो चवलदाए अणिव्वुत्तविवाहमङ्गलो एव्व गदो । अह अ अह्मेहिं तव अ वासवदत्ताए अ पडिकिदिं चित्तफलआए आलिहिअ विवाहो णिव्वुत्तो । एसा चित्तफलआ तव सआसं पेसिदा । एदं पेक्खिअ णिव्वुदो होहि ।

आह भट्टिनी—उपरता वासवदत्ता । मम वा महासेनस्य वा यादृशौ गोपालकपालकौ, तादृश एव त्वं प्रथममेवाभिप्रेतो जामातेति।

"**कः कमि**"ति—**मृत्युकाले** आयुषः क्षयकाले उपस्थिते **कः** प्रयत्नशतं कुर्वाणोऽपि कः जनः **कं** प्रयत्नशतैः रक्ष्यमाणमपि कं जनम् **रक्षितुं** मृत्योर्मुखात् परित्रातुम् **शक्तः** समर्थः न कोऽपि न कमपीत्यर्थः । क्षीणायुषः मृत्युर्ध्रुव इति भावः । एतदेव दृष्टान्तेनोपपादयति—**रज्जुच्छेदे** रज्जोः कूपाज्जलग्रहणार्थं घटबन्धनगुणस्य छेदे भङ्गे सति **के** जलग्रहीतारः के जनाः **घटं** कलशं कूपादुपरि आकृष्यमाणम् **धारयन्ति** गृह्णन्ति अधःपतनान्निरोद्धुं शक्नुवन्ति न केऽपीत्यर्थः । भग्नरज्जुर्हि घटोऽधः भ्रश्यत एवेत्यर्थः । अविच्छिन्नायां रज्जौ सर्वे घटं धारयन्ति, छिन्नायामेव तु तस्यां न केऽपि धारयितुं प्रभवन्तीति यथा, तथैव जीवस्य **आयुषः** सत्काले रक्षणोपाया अपि फलन्ति, आयुषः समाप्तौ तु न

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

धात्री—हां, महारानी कुशल-पूर्वक हैं और यहां भी आप सब की कुशल पूछती हैं।

राजा—क्या सब की कुशल ? माँ ! यहां तो ऐसी कुशल है !

धात्री—महाराज ! अब अधिक सन्ताप न कीजिए।

कंचुकी—आर्यपुत्र ! धीरज धरिए। जिनको आप इस तरह प्रेम से स्मरण करते हैं, वे महासेन-पुत्री वासवदत्ता मरी हुई भी जीवित ही हैं। अथवा,

—मृत्यु-समय आ जाने पर कौन किसे बचा सकता है। (घड़े में बंधी हुई) रस्सी (डोरी) के टूट जाने पर कौन घड़े को (कुएँ में गिरने से) रोक सकते हैं। मनुष्य तो जंगल के वृक्षों के समान धर्म वाला है। जिस तरह समय आने पर वृक्ष काटे जाते हैं और समय आने पर उगते हैं, उसी तरह मनुष्य भी अपने समय पर मरता है और अपने समय पर पैदा होता है ॥१०॥

राजा—आर्य ! ऐसा न कहिए।

—वासवदत्ता तो उन महाराज महासेन की पुत्री तथा मेरी सङ्गीत-शिष्या और प्यारी महारानी थी। उसे मैं जन्म-जन्मान्तरों में भी कैसे याद न किया करूं ? (अर्थात्—उसे मैं कभी भी भुलाये नहीं भूल सकता) ॥११॥

धात्री—महारानी कहती हैं कि वासवदत्ता तो चल बसी। परन्तु तुम मुझे तथा महाराज महासेन को उसी तरह प्यारे हो, जिस तरह कि गोपालक और

केऽपि रक्षितुं प्रभवन्ति, अतः सर्वमिदं दैवायत्तं विचिन्त्य स्वमनसि नानुशोचनीयमिति भावः। **एवम्** अनेन प्रकारेण **वनानाम्** अरण्यानाम्, तत्रस्थवृक्षादीनाम् इत्यर्थः, **तुल्यधर्मः** तुल्यः समानः धर्मः विनाशोत्पत्तिरूपः न्यायो यस्य तथाभूतः [धर्माः पुण्ययमन्यायस्वभावाचारसोमपाः इत्यमरः] **लोकः** संसारः **काले काले** समये समये **छिद्यते** कर्त्यते नश्यति **रुह्यते च** प्ररोहति उत्पद्यते च। दृष्टान्तालङ्कारः। शालिनीवृत्तम् ॥१०॥

"महासेनस्ये"ति—**महासेनस्य** प्रद्योतस्य **दुहिता** सुता **मे** मम **शिष्या** सङ्गीतविद्याशिक्षणेऽन्तेवासिनी **देवी** कृताभिषेका पट्टराज्ञीत्यर्थः **प्रिया च** प्राणवल्लभा च **सा** वासवदत्ता **देहान्तरेषु अपि** अन्येषु देहेषु जन्मान्तरेषु अपि किमुतैतस्मिन् देहे **मया स्मर्तुम्** चिन्तयितुम् **कथं न शक्या** अपि तु शक्यैवेत्यर्थः।

महासेनदुहितेत्येकोऽपि हेतुर्वासवदत्तासंस्मरणायालं किमुत समुदिता बहव इति भावः। देहान्तरेष्वपीति कैमुतिकन्यायेनार्थापत्तिः ॥११॥

गोपालकपालकाविति द्वौ अङ्गारवत्याः पुत्रौ। **प्रथममेव** वासवदत्तासम्बन्धघटनार्थम् उज्जयिन्याम् आनयनात् पूर्वमेव। **अभिप्रेतः** मनसा वासवदत्तापतित्वेन कामितः।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

एतन्निमित्तमुज्जयिनीमानीतः। अनग्निसाक्षिकं वीणाव्यपदेशेन दत्ता। आत्मनश्चपलतयानिर्वृत्तविवाहमङ्गल एव गतः। अथ चावाभ्यां तव च वासवदत्तायाश्च प्रतिकृतिं चित्रफलकायामालिख्य विवाहो निर्वृत्तः। एषा चित्रफलका तव सकाशं प्रेषिता। एतां दृष्ट्वा निर्वृत्तो भव।

राजा—अहो ! अतिस्निग्धमनुरूपं चाभिहितं तत्रभवत्या।

वाक्यमेतत् प्रियतरं राज्यलाभशतादपि।
अपराद्धेष्वपि स्नेहो यदस्मासु न विस्मृतः ॥१२॥

पद्मावती—अय्यउत्त ! चित्तगदं गुरुअणं पेक्खिअ अभिवादेदुं इच्छामि।

आर्यपुत्र ! चित्रगतं गुरुजनं दृष्ट्वाभिवादयितुमिच्छामि।

धात्री—पेक्खदु पेक्खदु भट्टिदारिआ [चित्रफलकां दर्शयति]

पश्यतु पश्यतु भर्तृदारिका।

पद्मावती—[दृष्ट्वा आत्मगतम्] हं, अदिसदिसी खु इअं अय्याए आवन्तिआए। [प्रकाशम्] अय्यउत्त ! सदिसी खु इअं अय्याए।

हम्, अतिसदृशी खल्वियमार्याया आवन्तिकायाः। आर्यपुत्र ! सदृशी खल्वियमार्यायाः।

राजा—न सदृशी। सैवेति मन्ये। भोः ! कष्टम्,

अस्य स्निग्धस्य वर्णस्य विपत्तिर्दारुणा कथम्।
इदं च मुखमाधुर्यं कथं दूषितमग्निना ॥१३॥

अनग्निसाक्षिकम् अग्निः वैवाहिकोऽग्निः साक्षी वरकन्ययोः पाणिग्रहणसम्बन्धस्य साक्षाद् द्रष्टा यस्मिन् कर्मणि तन्न भवतीति तथा, यथोक्तविधानेन विवाहसंस्कारमकृत्वेत्यर्थः। **वीणाव्यपदेशेन** वीणायाः वीणावादनकलाशिक्षणस्य यो व्यपदेशः छलम्, तेन, 'अस्माकं वासवदत्ता वीणायां शिक्षणीया' इति भवति प्रकाश्येत्यर्थः। **दत्ता** तुभ्यं समर्पिता। **आत्मनः** तव। **चपलतया** चाञ्चल्येन अधीरतया। **अनिर्वृत्तेति**—न निर्वृत्तं सञ्जातं विवाहस्य पाणिग्रहणस्य मङ्गलं मङ्गलसंस्कारो यस्य स तथोक्तः। **गतः** वासवदत्तामपहृत्य पलायितः। **प्रतिकृतिम्** चित्रम्। **चित्रफलकायाम्** चित्रफलके चित्रपटे। **आलिख्य** विनिर्माय। **निर्वृतः** उभयोरेकत्राङ्कितं विवाहमङ्गलरूपसुखदसमयोचितं चित्रं दर्शं दर्शं शान्तचित्तः।

अहो इत्यानन्दे। **तत्रभवत्या** अङ्गारवत्या। **अतिस्निग्धम्** अतिस्नेहसुन्दरम्। **अनुरूपम्** स्वसदृशम्। **अभिहितम्** उक्तम्।

"वाक्यम्"इति—**एतत्, वाक्यम्** धात्रीमुखेनोक्तं श्वश्रूवाक्यम् **राज्यलाभशतात् अपि** राज्यानां लाभः प्राप्तिः, तेषां शताद् अपि **प्रियतरम्** अतिहृद्यम्। **यत्** यस्मात् कारणात् **अपराद्धेषु अपि अस्मासु** सापराधेऽपि

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

पालक, (क्योंकि) हमने पहले से ही तुम्हें अपना जामाता पसन्द किया था। इसी कारण तुम्हें उज्जयिनी ले आये थे। और अग्नि-साक्षी किये बिना ही वीणा सिखाने के बहाने वासवदत्ता को तुम्हारे हाथ सौंपा था। किन्तु तुम अपनी चञ्चलता के कारण विवाह-मङ्गल हुए बिना ही (वासवदत्ता को लेकर) भाग चले। तब हमने तुम्हारी और वासवदत्ता की प्रतिकृति चित्रपट में अंकित कराकर विवाह-कार्य सम्पन्न किया। यह वही चित्रपट तुम्हारे पास भेजती हूँ। इसे देखकर शान्ति-लाभ करो (अपने चित्त को धीरज दो)।

राजा—अहा ! महारानी ने क्या ही स्नेह-भरी और अनुरूप बातें कहीं हैं !

—ये बातें तो मुझे सैकड़ों राज्य-लाभों से भी अत्यन्त प्रिय हैं, जोकि उन्होंने मुझ अपराधी पर भी अपना स्नेह नहीं भुलाया ॥१२॥

पद्मावती—आर्यपुत्र ! मैं चित्र में अङ्कित की हुई पूज्या बहन (वासवदत्ता) का दर्शन कर अभिवादन करना चाहती हूँ।

धात्री—देखिए, देखिए, राजकुमारी ! [चित्रपट दिखलाती है]

पद्मावती—[देखकर स्वगत] अरे ! यह प्रतिकृति (चित्र) तो आर्या आवन्तिका से अत्यधिक मिलती-जुलती है। [प्रकट] आर्यपुत्र ! क्या यह प्रतिकृति आर्या की आकृति के बिलकुल सदृश बनी है ?

राजा—केवल सदृश ही नहीं, मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि साक्षात् वही है। हा शोक !

—ऐसे सुन्दर रूप पर उस तरह की भीषण विपत्ति कैसे आ पड़ी ! अग्निज्वाला ने इस मुख-लावण्य (सुन्दर सलोने मुखड़े) को कैसे बिगाड़ दिया ! ॥१३॥

मयीत्यर्थः **स्नेहः** जामातृवात्सल्यम् **न विस्मृतः**। पूर्वार्द्धवाक्यार्थं प्रति उत्तरार्द्ध-वाक्यार्थो हेतुरिति वाक्यार्थहेतुकं काव्यलिङ्गम्। अर्थापत्तिः॥१२॥

चित्रगतम् आलेख्यलिखितम्। **गुरुजनम्** ज्यैष्ठ्यात् पूजनीयं जनम्, वासवदत्तामित्यर्थः। **अतिसदृशी** अत्यन्तं समाना। **सदृशीति**—**इयं** चित्रफलके आलिखिता प्रतिकृतिः **आर्यायाः** पूज्यायाः वासवदत्तायाः **सदृशी खलु** यथार्थतः समाना किमिति प्रश्नः।

"**अस्ये**"ति—**अस्य, स्निग्धस्य** स्नेहपूर्णस्य नयनाभिरामस्य **वर्णस्य** रूपस्य **दारुणा** अग्निदाहनिमित्तत्वात् क्रूरा **विपत्तिः** नाशः **कथं** कथमिव सञ्जाता इति शेषः। **इदम्** एतत् आलेख्यात् प्रतीयमानम् **मुखमाधुर्यं च** मुखस्य आननस्य माधुर्यं मधुरता सौन्दर्यं च **अग्निना** वह्निना **कथं दूषितम्** कथं विनाशितम् ॥१३॥

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

पद्मावती—अय्यउत्तस्स पडिकिदिं पेक्खिअ जाणामि इअं अय्याए सदिसी ण वेत्ति ।

आर्यपुत्रस्य प्रतिकृतिं दृष्ट्वा जानामीयमार्यया सदृशी न वेति ।

धात्री—पेक्खदु पेक्खदु भट्टिदारिआ ।

पश्यतु पश्यतु भर्तृदारिका ।

पद्मावती—[दृष्ट्वा] अय्यउत्तस्स पडिकिदीए सदिसदाए जाणामि इअं अय्याए सदिसि त्ति ।

आर्यपुत्रस्य प्रतिकृत्याः सदृशतया जानामीयमार्यया सदृशीति ।

राजा—देवि ! चित्रदर्शनात् प्रभृति प्रहृष्टोद्विग्नामिव त्वां पश्यामि । किमिदम् ।

पद्मावती—अय्यउत्त ! इमाए पडिकिदीए सदिसी इह एव्व पडिवसदि ।

आर्यपुत्र ! अस्याः प्रतिकृत्याः सदृशीहैव प्रतिवसति ।

राजा—किं वासवदत्तायाः ।

पद्मावती—आम् । —आम् ।

राजा—तेन हि शीघ्रमानीयताम् ।

पद्मावती—अय्यउत्त ! मम कण्णाभावे केणवि बह्मणेण—मम भइणिअत्ति णासो णिक्खित्तो । पोसिदभत्तुआ परपुरुसदंसणं परिहरदि । ता अय्या* पेक्खदु सदिसी ण वेत्ति ।

आर्यपुत्र ! मम कन्याभावे केनापि ब्राह्मणेन—मम भगिनिकेति न्यासो निक्षिप्तः । प्रोषितभर्तृका परपुरुषदर्शनं परिहरति । तदार्या पश्यतु सदृशी न वेति ।

राजा—

यदि विप्रस्य भगिनी व्यक्तमन्या भविष्यति ।
परस्परगता लोके दृश्यते रूपतुल्यता ॥१४॥

प्रहृष्टोद्विग्नामिव प्रहृष्टा प्रकर्षेण हृष्टा प्रमुदिता च उद्विग्ना विषण्णा च तां तथोक्तामिव । स्वस्निग्धसहचारिणी आवन्तिकैव वासवदत्ता, सा च स्वान्तिक एव जीवतीति प्रहर्षः, पूज्यायामपि वासवदत्तायामजानत्या सखी-

---

* अय्यं मए सह आअदं पेक्खिअ जाणादु अय्यउत्तो
(आर्यां मया सहागतां दृष्ट्वा जानात्वार्यपुत्रः).

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

पद्मावती—आर्यपुत्र की प्रतिकृति को भी देखकर मालूम करूँ कि यह आर्या से ठीक मिलती है या नहीं ?

धात्री—देखिए, देखिए, राजकुमारी ।

पद्मावती—[देखकर] आर्यपुत्र के रूप को प्रतिकृति के समान देखकर निश्चित जान पड़ता है कि यह भी ठीक आर्या का चित्र है ।

राजा—देवि ! चित्र देखने के समय से ही मैं तुम्हें कुछ हर्ष और विषाद से घिरी हुई-सी देख रहा हूँ । यह क्या बात है ?

पद्मावती—आर्यपुत्र ! ठीक इसी प्रतिकृति के समान रूप वाली एक युवती यहीं रहती है ।

राजा—क्या वासवदत्ता के ?

पद्मावती—हां !

राजा—तो उसे शीघ्र यहां लिवा लाओ ।

पद्मावती—आर्यपुत्र ! मेरे विवाह के पहले किसी ब्राह्मण ने 'यह मेरी बहन है' यह कहकर उसे मेरे पास धरोहर रक्खा था । वह प्रोषितपतिका पर-पुरुष का दर्शन नहीं करती । इसलिए आर्या वसुन्धरा देखें कि वह युवती वासवदत्ता ही है या कोई और ?

राजा—

—यदि वह ब्राह्मण की बहन है, तब तो निश्चय ही कोई और होगी। संसार में एक दूसरे की अनुहार भी कभी-कभी आपस में मिलती-जुलती देखने में आती है ।।१४।।

तुल्याचरितेनोद्वेगः । **प्रोषितभर्तृका** प्रोषितः देशान्तरं गतः भर्ता पतिर्यस्याः सा तथाभूता । **आर्या** धात्री ।

"यदि" इति—**यदि** चेत् **सा** त्वया वासवदत्तात्वेन शङ्क्यमाना **विप्रस्य** ब्राह्मणस्य न्यासत्वेन तां त्वयि निक्षेप्तुः **भगिनी** स्वसा, **तर्हि** तस्माद्धेतोः **व्यक्तम्** स्फुटं निश्चयेन **अन्या** वासवदत्ताव्यतिरिक्ता काचिद् अपरा **भविष्यति** न तु वासवदत्तेत्यर्थः। यतो हि **लोके** जगति **परस्परगता** अन्योन्यसंसक्ता **रूपतुल्यता** अनुरूपता आकृतिसादृश्यम् **दृश्यते** अवलोक्यते । तुल्यरूपा अपि लोके बहव इति भावः ।

सामान्येन विशेषसमर्थनरूपोऽर्थान्तरन्यासः । अन्यात्वं प्रति 'विप्रस्य भगिनी' इति पदयोरर्थो हेतुरिति पदार्थहेतुकं काव्यलिङ्गम् ।।१४।।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

[प्रविश्य]

प्रतीहारी—जेदु भट्टा । एसो उज्जइणीओ बह्मणो, भट्टिणीए हत्थे मम भइणिअत्ति णासो णिक्खित्तो, तं पडिग्गहिदुं पडिहारं उवट्ठिदो ।

जयतु भर्ता । एष उज्जयिनीयो ब्राह्मणः, भट्टिन्या हस्ते मम भगिनिकेति न्यासो निक्षिप्तः, तं प्रतिग्रहीतुं प्रतिहारमुपस्थितः ।

राजा—पद्मावति ! किं नु स ब्राह्मणः ।

पद्मावती—होदव्वं । —भवितव्यम् ।

राजा—शीघ्रं प्रवेश्यतामभ्यन्तरसमुदाचारेण स ब्राह्मणः ।

प्रतीहारी—जं भट्टा आणवेदि ! [निष्क्रान्ता]

यद् भर्ताज्ञापयति ।

राजा—पद्मावति ! त्वमपि तामानय ।

पद्मावती—जं अय्यउत्तो आणवेदि । [निष्क्रान्ता]

यदार्यपुत्र आज्ञापयति ।

[ततः प्रविशति यौगन्धरायणः प्रतीहारी च]

यौगन्धरायणः—[आत्मगतम्] भोः !

प्रच्छाद्य राजमहिषीं नृपतेर्हितार्थं
कामं मया कृतमिदं हितमित्यवेक्ष्य ।
सिद्धेऽपि नाम मम कर्मणि पार्थिवोऽसौ
किं वक्ष्यतीति हृदयं परिशङ्कितं मे ॥१५॥

प्रतीहारी—एसो भट्टा । उपसप्पदु अय्यो ।

एष भर्ता । उपसर्पत्वार्यः ।

यौगन्धरायणः—[उपसृत्य] जयतु भवान् जयतु ।

राजा—श्रुतपूर्व इव स्वरः । भो ब्राह्मण ! किं भवतः स्वसा पद्मावत्या हस्ते न्यास इति निक्षिप्ता ।

यौगन्धरायणः—अथ किम् !

राजा—तेन हि त्वर्यतां त्वर्यतामस्य भगिनिका ।

अभ्यन्तरसमुदाचारेण अभ्यन्तरम् अन्तर्गृहम्, तत्र करणीयः यः समुदाचारः अर्घ्यपाद्यादिदानेन सत्कारस्तेन । **भोः !** इति दुःखे । दुःखम् वक्ष्यमाणशङ्काजन्यम् ।

"प्रच्छाद्य" इति—**मया** यौगन्धरायणेन **नृपतेः** राज्ञः उदयनस्य **हितार्थं** हिताय, पद्मावतीपरिणयसौकर्यरूपं परैरपहृतराज्यस्य पुनःप्रत्यानयनरूपं च हितमुद्दिश्येत्यर्थः; **राजमहिषीं** राज्ञः महिषीं पट्टराज्ञीं वासवदत्ताम् **प्रच्छाद्य**

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

[प्रतिहारी का प्रवेश]

प्रतीहारी—जय हो महाराज की ! उज्जयिनी का रहने वाला एक ब्राह्मण द्वार पर खड़ा है। वह कहता है कि मैंने राजकुमारी के पास अपनी बहन को धरोहर रख छोड़ा था। उसे लेने आया हूँ।

राजा—पद्मावति ! क्या वही ब्राह्मण तो नहीं है ?

पद्मावती—सम्भव है, वही हो।

राजा—अन्तःपुरोचित शिष्टाचार से उस ब्राह्मण को शीघ्र यहां लिवा लाओ।

प्रतीहारी—जो महाराज की आज्ञा। [जाती है]

राजा—पद्मावति ! तुम भी उन्हें लिवा लाओ।

पद्मावती—जो आर्यपुत्र की आज्ञा। [प्रस्थान]

[प्रीतहारी के साथ यौगन्धरायण का प्रवेश]

यौगन्धरायण—[स्वगत] ओह !

—महाराज के हित के लिए ही मैंने महारानी को छिपाकर स्वामी और पद्मावती का विवाह-आयोजन हितकर समझकर स्वच्छन्दतापूर्वक कर दिया। मेरे प्रयत्नों के सफल होने पर भी मेरा मन इस शङ्का से व्याकुल है कि न जाने महाराज क्या कहें ? ॥१५॥

प्रतीहारी—महाराज ये हैं। आप समीप जायें।

यौगन्धरायण—[समीप जाकर] जय हो, महाराज ! जय हो।

राजा—अरे ! यह स्वर तो पहले का सुना हुआ-सा जान पड़ता है। हे ब्राह्मण ! क्या आपने ही अपनी बहन को पद्मावती के पास धरोहर के रूप में रख छोड़ा था ?

यौगन्धरायण—हाँ।

राजा—तो इनकी बहन को बहुत शीघ्र लिवा लाओ।

वासवदत्ता लावाणके ग्रामदाहेन दग्धेति मिथ्याप्रवादं सर्वत्र संचार्य तां च छन्नं स्थापयित्वा **इदं** स्वामिनः पद्मावत्या सह परिणयरूपं कार्यम् **हितम्** पद्मावती-भ्रातृसाहाय्यलाभेन अपहृतराज्यस्य पुनः प्रत्यानयनसाधकम् **इति** एवम् **प्रवेक्ष्य** सम्यग् विचार्य **कामं** स्वामिहितैकपरतया स्वच्छन्दम् **कृतम्** अनुष्ठितम्। **मम मे कर्मणि** स्वामिपद्मावतीपरिणयघटनरूपे तेनैव च राज्यलाभरूपे कार्ये **सिद्धेऽपि** सफले जातेऽपि, **नाम, असौ पार्थिवः** राजा उदयनः **किं वक्ष्यति** उचितमनुचितं वा किं कथयिष्यति **इति** एवं विचार्य **मे** मदीयम् **हृदयम्** चेतः **परिशङ्कितं** स्वेच्छाकारितया भयशङ्कासमाकुलं वर्तते। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥१५॥

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

प्रतीहारी—जं भट्टा आणवेदि ! [निष्क्रान्ता]

यद् भर्ताज्ञापयति ।

[ततः प्रविशति पद्मावती आवन्तिका प्रतीहारी च]

पद्मावती—एदु एदु अय्या । पिअं दे णिवेदेमि ।

एतु एतु आर्या । प्रियं ते निवेदयामि ।

आवन्तिका—किं किं । —किं किम् ।

पद्मावती—भादा दे आअदो ।

भ्राता ते आगतः ।

आवन्तिका—दिट्ठिआ इदाणिं पि सुमरदि ।

दिष्टयेदानीमपि स्मरति ।

पद्मावती—[उपसृत्य] जेदु अय्यउत्तो । एसो णासु ।

जयत्वार्यपुत्रः । एष न्यासः ।

राजा—निर्यातय पद्मावति ! अथवा साक्षिमन्न्यासो निर्यातयितव्यः । इहात्रभवान् रैभ्यः, अत्रभवती चाधिकरणं भविष्यतः ।

पद्मावती—अय्य ! णीअदां दाणिं अय्या ।

आर्य ! नीयतामिदानीमार्या ।

धात्री—[आवन्तिकां निर्वर्ण्य] अम्मो ! भट्टिदारिआ वासवदत्ता ।

अम्मो ! भर्तृदारिका वासवदत्ता ।

राजा—कथं महासेनपुत्री । देवि ! प्रविश त्वमभ्यन्तरं पद्मावत्या सह ।

यौगन्धरायणः—न खलु न खलु प्रवेष्टव्यम् । मम भगिनी खल्वेषा ।

राजा—किं भवानाह । महासेनपुत्री खल्वेषा ।

यौगन्धरायणः—भो राजन् !

भारतानां कुले जातो विनीतो ज्ञानवाञ्छुचिः ।
तन्नार्हसि बलाद्धर्तुं राजधर्मस्य देशिकः ॥१६॥

दिष्टया इति हर्षे । **इदानीमपि** इयति कालव्यवधाने सति पूर्वमिवाधुनापि । **निर्यातय** न्यासं प्रत्यर्पयेत्यर्थः । **साक्षिमत्** ससाक्षिकं साक्षियुक्तं यथा स्यात् तथा **न्यासः** निक्षेपः **निर्यातयितव्यः** प्रत्यर्पणीयः । **रैभ्यः** उज्जयिन्या आगतः रैभ्यकुलोत्पन्नः काञ्चुकीय इत्यर्थः । **अत्रभवती** धात्री । **अधिकरणम्** न्यायपरिषत् । **अम्मो !** इत्याश्चर्यहर्षयोरनुभावः । **भो राजन् !** इति पदद्वयं श्लोकेन सम्बध्यते ।

"भारतानामि"ति—**भो राजन् !** भवान् **भारतानाम्** भरतवंशीयानां नृपाणाम् **कुले** वंशे **जातः** समुत्पन्नः **विनीतः** विद्याध्ययनेन विनयोपेतः **ज्ञानवान्**

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

प्रतीहारी—जो महाराज की आज्ञा। [प्रस्थान]

[पद्मावती, आवन्तिका और प्रतीहारी का प्रवेश]

पद्मावती—आओ, आर्या आओ। मैं तुम्हें एक प्रिय बात सुनाऊं।

आवन्तिका—क्या ? क्या ?

पद्मावती—तुम्हारे भाई आये हुए हैं।

आवन्तिका—धन्य भाग्य ! अब भी मेरी सुध तो ली।

पद्मावती—[समीप जाकर] जय हो आर्यपुत्र की। यही वह धरोहर है।

राजा—इसे सौंप दो पद्मावति ! अथवा साक्षियों के सामने धरोहर को सौंपना चाहिए। इसमें आर्य रैभ्य और आर्या वसुन्धरा साक्षी होंगे।

पद्मावती—आर्य ! अब आप आर्या को ले जाइए।

धात्री—[आवन्तिका को ध्यान से देखकर] अरे ! यह तो राजकुमारी वासवदत्ता हैं।

राजा—क्या महासेन-पुत्री ?—मेरी रानी ! तो तुम पद्मावती के साथ भीतर जाओ।

यौगन्धरायण—नहीं, नहीं। अन्दर नहीं भेजी जा सकती। यह तो मेरी बहन है।

राजा—आप क्या कह रहे हैं ? यह तो महासेन की पुत्री हैं।

यौगन्धरायण—हे राजन् !

—आप तो भारत-वंशी राजाओं के कुल में उत्पन्न, विनयशील, ज्ञानी, पवित्रात्मा तथा राज-धर्म के प्रदर्शक हैं। अतः बलपूर्वक इन्हें मुझसे छीन लेना आपको उचित नहीं ॥१६॥

सदसद्विवेकवान्, **शुचिः** शुद्धान्तःकरणः **राजधर्मस्य** राज्ञां नृपाणां धर्मस्य सम्यक्प्रजापरिपालनरूपस्य **देशिकः** उपदेष्टा अस्ति। **तत्** तस्मात् कारणात् **बलात्** प्रसह्य **हर्तुम्** ग्रहीतुम्, इमामित्यर्थः, **न अर्हसि**, बलादस्या हरणं न तव शोभत इत्यर्थः।

भरतवंशसंभूतत्वादिकमेकैकमपि अस्या अहरणे पर्याप्तं किमुत समुदितमिति भावः। बलाद्धरणप्रतिषेधं प्रति 'विनीत' इत्यादयः पदार्थगत्या हेतव उक्ता इति पदार्थहेतुकं काव्यलिङ्गम् ॥१६॥

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

राजा—भवतु, पश्यामस्तावद् रूपसादृश्यम् । संक्षिप्यतां यवनिका ।

यौगन्धरायणः—जयतु स्वामी ।

वासवदत्ता—जेदु अय्यउत्तो । —जयत्वार्यपुत्रः ।

राजा--अये ! असौ यौगन्धरायणः । इयं महासेनपुत्री ।

किन्नु सत्यमिदं स्वप्नः सा भूयो दृश्यते मया ।
अनयाप्येवमेवाहं दृष्टया वञ्चितस्तदा ॥१७॥

यौगन्धरायणः—स्वामिन् ! देव्यपनयेन कृतापराधः खल्वहम् । तत् क्षन्तुमर्हति स्वामी । [इति पादयोः पतति]

राजा—[उत्थाप्य] यौगन्धरायणो भवान् ननु ।

मिथ्योन्मादैश्च युद्धैश्च शास्त्रदृष्टैश्च मन्त्रितैः ।
भवद्यत्नैः खलु वयं मज्जमानाः समुद्धृताः ॥१८॥

यौगन्धरायणः—स्वामिभाग्यानामनुगन्तारो वयम् !

पद्मावती—अम्महे ! अय्या खु इअं । अय्ये ! सहीजणसमुदाआरेण अजाणन्तीए अदिक्कन्दो समुदाआरो । ता सीसेण पसादेमि ।
अहो ! आर्या खल्वियम् । आर्ये ! सखीजनसमुदाचारेणाजानत्या-तिक्रान्तः समुदाचारः तच्छीर्षेण प्रसादयामि ।

वासवदत्ता—[पद्मावतीमुत्थाप्य] उट्ठेहि उट्ठेहि अविहवे ! उट्ठेहि । अत्थिसअं णाम सरीरं अवरद्धइ ।
उत्तिष्ठ उत्तिष्ठ अविधवे ! उत्तिष्ठ । अर्थिस्वं नाम शरीरमपराध्यति ।

रूपसादृश्यम् आकृतिसाम्यम् । **यवनिका** परपुरुषदर्शनपरिहारार्थं कृतमवगुण्ठनम् । यद्वा—यवनिका तां स्त्रियमन्तरयितुं प्रसारिता जवनिका तिरस्करिणी ['प्रतिसीरा जवनिका स्यात् तिरस्करिणी च सा' इत्यमरः] । **संक्षिप्यताम्** किञ्चिदपनीयताम्, सङ्कोच्यताम् ।

"किन्नु" इति—**इदम्** एतद् अनुभूयमानम्, युगपद् द्वयोर्दर्शनम् **किन्नु सत्यम्** किन्नु तथ्यम्, किमहं यथार्थत एव वासवदत्तां यौगन्धरायणं च पश्यामि इत्यर्थः । वा **स्वप्नः** स्वप्नविज्ञानवद् अयथार्थम् । **मया** उदयनेन **सा** वासवदत्ता **भूयः** पुनरपि **दृश्यते** प्रत्यक्षमवलोक्यते, एवं प्रत्यक्षदर्शनविषयीभूताया मत्पुरतस्तिष्ठन्त्या अस्या विषये कुतोऽसत्यस्वाप्निकशङ्कात आह—**अनयापि** या मद्वञ्चनानर्हा तथाविधया सम्प्रति मत्पुरतस्तिष्ठन्त्या एतयापि **एवमेव** अनेन प्रकारेणैव **दृष्टया** दर्शनविषयं गतया **तदा** समुद्रगृहप्रस्वापकाले **अहम् वञ्चितः** विप्रलब्धः ['विप्रलब्धस्तु वञ्चितः' इत्यमरः] ॥१७॥

"मिथ्योन्मादैः" इति—**मिथ्योन्मादैः** मिथ्या अवास्तविका ये उन्मादाः

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

राजा—अच्छा, देखूं तो सही--इनका रूप कहां तक मिलता-जुलता है ? जरा घूंघट तो हटाइए !

यौगन्धरायण—जय हो महाराज की।

वासवदत्ता—जय हो आर्यपुत्र की।

राजा—अहो ! यह तो यौगन्धरायण हैं ! और यह महासेन-पुत्री हैं !

— क्या यह वास्तविक घटना है ? अथवा, क्या यह स्वप्न है ? जो मैं इसे फिर देख रहा हूँ। ओह ! उस बार इसी भांति साक्षात् देखने पर इसने भी तो मुझे धोखा ही दिया था ॥१७॥

यौगन्धरायण—महाराज ! देवी को छिपाकर ले जाने से मैं अपराधी हूँ। अतः आप मुझे क्षमा कीजिए। [पैरों पर गिरता है]

राजा—[उसे उठाकर] अहो ! सचमुच, आप तो यौगन्धरायण ही हैं।

—झूठी उन्माद-चेष्टाओं, युद्धों, शास्त्रोक्त राज-नीतियों और अपने निज उपायों से आपने विपत्सागर में डूबते हुए हमें उबार लिया है ॥१८॥

यौगन्धरायण—हम लोग तो महाराज के भाग्यों के अनुगामी हैं।

पद्मावती—अरे ! यह तो आर्या वासवदत्ता हैं। आर्ये ! मैंने अनजान में आपसे सखी जैसा व्यवहार करने से शिष्टाचार का उल्लंघन किया है। इसलिए मैं सिर झुकाकर आपसे क्षमा मांगती हूँ।

वासवदत्ता—[पद्मावती को उठाकर] उठो, उठो, सौभाग्यवती ! उठो। इसमें मेरा अपना शरीर ही अपराधी है, जिसको अर्थी की धरोहर बताते हुए धोखे से आपके पास सौंपा था।

चित्तविभ्रमास्तैः, अलीकोन्मादचेष्टितैरित्यर्थः, **च, युद्धैः** समरप्रवर्तनैः रणे शत्रुविध्वंसकरणैः, **च, शास्त्रदृष्टैः** शास्त्रेषु नीतिशास्त्रेषु दृष्टैः सम्यग् विचारितैः **मन्त्रितैश्च** शत्रुजयोपयोगिमन्त्रणाभिश्च **भवद्यत्नैः** राज्योद्धरणोचितैः भवत्प्रयासैः **मज्जमानाः** विपत्सागरे निमज्जन्तः, **वयम्, समुद्धृताः** समुत्तारिताः **खलु** ॥१८॥

स्वामिभाग्येति—वयं मद्विधाः भवद्भृत्याः **स्वामिभाग्यानाम्** स्वामिनः भवतः भाग्यानां राज्यलाभादिफलानां शुभादृष्टानाम् **अनुगन्तारः** अनुगामिनः। भवद्भागधेयप्राबल्येनैव एतत् कृतम्, अस्माभिस्तु केवलं तदनुसरणमेव कृतम्, अतो न तथा श्लाघार्हा वयमिति भावः। **अविधवे !** हे सौभाग्यवति ! हे सधवे ! यथा **अनेन** भर्त्राहं भर्तृमती तथैव त्वमपीति, यथा भर्तरि मम स्वत्वं तथा तवापीति च भावः। अविधवे इति अभावेन सह भावस्यापि प्रतीतेरमङ्गलव्यञ्जकत्वेन कवेः प्रयोगानौचित्यमावहतीति हृदयम्। **अर्थिस्वम्** अर्थिरूपयौगन्धरायणस्य स्वं धनं न्यासलक्षणम् **शरीरम्** अर्थिभगिनी-

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

राजा—भवतु, पश्यामस्तावद् रूपसादृश्यम् । संक्षिप्यतां यवनिका ।

यौगन्धरायणः—जयतु स्वामी ।

वासवदत्ता—जेदु अय्यउत्तो । —जयत्वार्यपुत्रः ।

राजा--अये ! असौ यौगन्धरायणः । इयं महासेनपुत्री ।

किन्नु सत्यमिदं स्वप्नः सा भूयो दृश्यते मया ।
अनयाप्येवमेवाहं दृष्टया वञ्चितस्तदा ॥१७॥

यौगन्धरायणः—स्वामिन् ! देव्यपनयेन कृतापराधः खल्वहम् । तत् क्षन्तुमर्हति स्वामी । [इति पादयोः पतति]

राजा—[उत्थाप्य] यौगन्धरायणो भवान् ननु ।

मिथ्योन्मादैश्च युद्धैश्च शास्त्रदृष्टैश्च मन्त्रितैः ।
भवद्यत्नैः खलु वयं मज्जमानाः समुद्धृताः ॥१८॥

यौगन्धरायणः—स्वामिभाग्यानामनुगन्तारो वयम् !

पद्मावती—अम्महे ! अय्या खु इअं । अय्ये ! सहीजणसमुदाआरेण अजाणन्तीए अदिक्कन्दो समुदाआरो । ता सीसेण पसादेमि ।
अहो ! आर्या खल्वियम् । आर्ये ! सखीजनसमुदाचारेणाजानत्या-तिक्रान्तः समुदाचारः तच्छीर्षेण प्रसादयामि ।

वासवदत्ता—[पद्मावतीमुत्थाप्य] उट्ठेहि उट्ठेहि अविहवे ! उट्ठेहि । अत्थिसअं णाम सरीरं अवरद्धइ ।
उत्तिष्ठ उत्तिष्ठ अविधवे ! उत्तिष्ठ । अर्थिस्वं नाम शरीरमपराध्यति ।

रूपसादृश्यम् आकृतिसाम्यम् । **यवनिका** परपुरुषदर्शनपरिहारार्थं कृतमवगुण्ठनम् । यद्वा—यवनिका तां स्त्रियमन्तरयितुं प्रसारिता जवनिका तिरस्करिणी ['प्रतिसीरा जवनिका स्यात् तिरस्करिणी च सा' इत्यमरः] । **संक्षिप्यताम्** किञ्चिदपनीयताम्, सङ्कोच्यताम् ।

"**किन्नु**" इति—**इदम्** एतद् अनुभूयमानम्, युगपद् द्वयोर्दर्शनम् **किन्नु सत्यम्** किन्नु तथ्यम्, किमहं यथार्थत एव वासवदत्तां यौगन्धरायणं च पश्यामि इत्यर्थः । वा **स्वप्नः** स्वप्नविज्ञानवद् अयथार्थम् । **मया** उदयनेन **सा** वासवदत्ता **भूयः** पुनरपि **दृश्यते** प्रत्यक्षमवलोक्यते, एवं प्रत्यक्षदर्शनविषयीभूताया मत्पुरतस्तिष्ठन्त्या अस्या विषये कुतोऽसत्यस्वाप्निकशङ्कात आह—**अनयापि** या मद्वञ्चनानर्हा तथाविधया सम्प्रति मत्पुरतस्तिष्ठन्त्या एतयापि **एवमेव** अनेन प्रकारेणैव **दृष्टया** दर्शनविषयं गतया **तदा** समुद्रगृहप्रस्वापकाले **अहम् वञ्चितः** विप्रलब्धः ['विप्रलब्धस्तु वञ्चितः' इत्यमरः] ॥१७॥

"**मिथ्योन्मादैः**" इति—**मिथ्योन्मादैः** मिथ्या अवास्तविका ये उन्मादाः

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

राजा—अच्छा, देखूं तो सही—इनका रूप कहां तक मिलता-जुलता है? जरा घूंघट तो हटाइए।

यौगन्धरायण—जय हो महाराज की।

वासवदत्ता—जय हो आर्यपुत्र की।

राजा—अहो! यह तो यौगन्धरायण हैं! और यह महासेन-पुत्री हैं!

— क्या यह वास्तविक घटना है? अथवा, क्या यह स्वप्न है? जो मैं इसे फिर देख रहा हूँ। ओह! उस बार इसी भांति साक्षात् देखने पर इसने भी तो मुझे धोखा ही दिया था॥१७॥

यौगन्धरायण—महाराज! देवी को छिपाकर ले जाने से मैं अपराधी हूँ। अतः आप मुझे क्षमा कीजिए। [पैरों पर गिरता है]

राजा—[उसे उठाकर] अहो! सचमुच, आप तो यौगन्धरायण ही हैं।

—झूठी उन्माद-चेष्टाओं, युद्धों, शास्त्रोक्त राज-नीतियों और अपने निज उपायों से आपने विपत्सागर में डूबते हुए हमें उबार लिया है॥१८॥

यौगन्धरायण—हम लोग तो महाराज के भाग्यों के अनुगामी हैं।

पद्मावती—अरे! यह तो आर्या वासवदत्ता हैं। आर्ये! मैंने अनजान में आपसे सखी जैसा व्यवहार करने से शिष्टाचार का उल्लंघन किया है। इसलिए मैं सिर झुकाकर आपसे क्षमा मांगती हूँ।

वासवदत्ता—[पद्मावती को उठाकर] उठो, उठो, सौभाग्यवती! उठो। इसमें मेरा अपना शरीर ही अपराधी है, जिसको अर्थी की धरोहर बताते हुए धोखे से आपके पास सौंपा था।

चित्तविभ्रमास्तैः, अलीकोन्मादचेष्टितैरित्यर्थः, च, **युद्धैः** समरप्रवर्तनैः रणे शत्रुविध्वंसकरणैः, **च, शास्त्रदृष्टैः** शास्त्रेषु नीतिशास्त्रेषु दृष्टैः सम्यग् विचारितैः **मन्त्रितैश्च** शत्रुजयोपयोगिमन्त्रणाभिश्च **भवद्यत्नैः** राज्योद्धरणोचितैः भवत्प्रयासैः **मज्जमानाः** विपत्सागरे निमज्जन्तः, **वयम्, समुद्धृताः** समुत्तारिताः **खलु**॥१८॥

स्वामिभाग्येति—वयं मद्विधाः भवद्भृत्याः **स्वामिभाग्यानाम्** स्वामिनः भवतः भाग्यानां राज्यलाभादिफलानां शुभादृष्टानाम् **अनुगन्तारः** अनुगामिनः। भवद्भागधेयप्राबल्येनैव एतत् कृतम्, अस्माभिस्तु केवलं तदनुसरणमेव कृतम्, अतो न तथा श्लाघार्हा वयमिति भावः। **अविधवे!** हे सौभाग्यवति! हे सधवे! यथा **अनेन** भर्त्राहं भर्तृमती तथैव त्वमपीति, यथा भर्तरि मम स्वत्वं तथा तवापीति च भावः। अविधवे इति अभावेन सह भावस्यापि प्रतीतेरमङ्गलव्यञ्जकत्वेन कवेः प्रयोगानौचित्यमावहतीति हृदयम्। **अर्थिस्वम्** अर्थिरूपयौगन्धरायणस्य स्वं धनं न्यासलक्षणम् **शरीरम्** अर्थिभगिनी-

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

पद्मावती—अणुग्गहिदिह्मि । —अनुगृहीतास्मि ।

राजा—वयस्य यौगन्धरायण ! देव्यपनये का कृता ते बुद्धिः ।

यौगन्धरायणः—कौशाम्बीमात्रं परिपालयामीति ।

राजा—अथ पद्मावत्या हस्ते किं न्यासकारणम् ।

यौगन्धरायणः—पुष्पकभद्रादिभिरादेशिकैरादिष्टा स्वामिनो देवी भविष्यतीति ।

राजा—इदमपि रुमण्वता ज्ञातम् ।

यौगन्धरायणः—स्वामिन् ! सर्वैरेव ज्ञातम् ।

राजा—अहो ! शठः खलु रुमण्वान् ।

यौगन्धरायणः—स्वामिन् ! देव्याः कुशलनिवेदनार्थमद्यैव प्रतिनिवर्ततामत्रभवान् रैभ्योऽत्रभवती च ।

राजा—न, न । सर्व एव वयं यास्यामो देव्या पद्मावत्या सह ।

यौगन्धरायणः—यदाज्ञापयति स्वामी ।

भरतवाक्यम्—

इमां सागरपर्यन्तां हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम् ।
महीमेकातपत्राङ्कां राजसिंहः प्रशास्तु नः ॥१६॥

[निष्क्रान्ताः सर्वे]

इति षष्ठोऽङ्कः ।

इति स्वप्नवासवदत्तमवसितम् ।

त्वेन व्यपदिष्टं मामकीनं शरीरम् **अपराध्यति** सापराधं भवति । **नामे**त्यभ्युपगमे । अहमत्रापराध्यामि, ममोपकारिणी भवती तु लेशतोऽपि नापराध्यतीत्यर्थः ।

देव्यपनये देव्याः वासवदत्ताया अपनये लावाणके वह्निदाहमिथ्याप्रवादं सञ्चार्य प्रच्छाद्यनयने ते त्वयेत्यर्थः, **का बुद्धिः** का मतिः **कृता** विहिता । देव्यपनये कस्तवाभिप्राय आसीदित्यर्थः । **कौशाम्बीमात्रं परिपालयामीति** केवलं कौशाम्बीनगरीमेव प्रशास्मि न तु समग्रं वत्सराज्यमित्यर्थः । देव्यपनयेन पद्मावत्या सह भवतो विवाहः, तेन पद्मावतीभ्रातृसाहाय्यलाभः, ततः शत्रुविध्वंसेन पुनः वत्सप्राप्तिः, ततः प्रधानामात्यत्वेन समग्रान् वत्सान् परिपालयिष्यामीति भावः । **अहो !** इत्याश्चर्ये । **रुमण्वान्, शठः खलु** धूर्त एव । वासवदत्ताविषयकतादृशशोकसमाकुले मयि वस्तुरहस्यमप्रकाश्यं सततपरिचरणादित्यर्थः । रुमण्वतः प्रच्छन्नोपकारकारित्वं व्यङ्ग्यम् ।

भरतवाक्यम् भरतस्य परित्यक्तानुकार्यभावस्य नर्तकस्य वाक्यं श्लोकाशीरित्यर्थः । ... ...र्थः, तस्य भरतस्य सम्मानार्थं

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

पद्मावती—मैं आपकी बड़ी अनुगृहीत हुई।

राजा—सखे यौगन्धरायण ! देवी को छिपाकर रखने में आपका क्या अभिप्राय था ?

यौगन्धरायण—यह कि केवल कौशाम्बी ही अधिकार में रह गई थी (न कि सारा वत्सराज्य)।

राजा—और पद्मावती के हाथ इसे रखने का क्या कारण था ?

यौगन्धरायण—यह कि पुष्पकभद्रादि ज्योतिषियों ने कह रखा था कि राजकुमारी पद्मावती आपकी महारानी होंगी।

राजा—तो यह भी रुमण्वान् को मालूम था ?

यौगन्धरायण—महाराज ! सभी को मालूम था।

राजा—ओह ! तब तो रुमण्वान् भी, सचमुच, बड़ा धूर्त निकला !

यौगन्धरायण—महाराज। देवी का कुशल-समाचार सुनाने के लिए आर्य रैभ्य और आर्या वसुन्धरा को आज ही बिदा कीजिए।

राजा—नहीं, नहीं। देवी पद्मावती के साथ हम सभी चलेंगे।

यौगन्धरायण—जो महाराज की आज्ञा।

भरत-वाक्य—

हमारे राजसिंह (शौर्य आदि में सिंह के सदृश, राजाओं में सबसे श्रेष्ठ महाराज वत्सराज—अथवा महाकवि भास का आश्रयदाता राजसिंह नाम का कोई ऐतिहासिक राजा) सागर-पर्यन्त विस्तृत तथा हिमालय और विन्ध्याचल रूपी दो कर्ण-कुण्डलों से अलंकृत हुई राज्यच्छत्र से चिह्नित इस विशाल वसुधा का चिरशासन करें॥१६॥

[सब का प्रस्थान]

छठा अङ्क समाप्त

स्वप्नवासवदत्तम् समाप्त

प्रयुक्तं वाक्यं भरतवाक्यम्।

"इमाम्" इति—**नः** अस्माकम् **राजसिंहः** राजा उदयनः सिंह इव शौर्यादिगुणेषु सिंहसमो राजा **सागरपर्यन्तां** सागराः समुद्राः पर्यन्ताः परितः सीमानो यस्याः सा ताम् **हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम्** हिमवांश्च विन्ध्यश्च इति हिमवद्विन्ध्यौ हिमाचलविन्ध्याचलौ तावेव कुण्डले शोभाधायकत्वात् कर्णकुण्डल-स्थानापन्नौ यस्याः सा ताम् **एकातपत्राङ्काम्** एकम् अद्वितीयम् आतपत्रम् श्वेतच्छत्रम् अङ्कश्चिह्नं यस्यास्ताम्, **इमाम्, महीं** पृथ्वीम् कान्तामिति च व्यज्यते, **प्रशास्तु** शासनविषयीकरोतु।

अस्माकं राजा समग्राया भारतभुवोऽप्रतिमो भर्ता स्यादिति भावः॥१६॥

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

पद्मावती—अणुग्गहिदम्हि । —अनुगृहीतास्मि ।

राजा—वयस्य यौगन्धरायण ! देव्यपनये का कृता ते बुद्धिः ।

यौगन्धरायणः—कौशाम्बीमात्रं परिपालयामीति ।

राजा—अथ पद्मावत्या हस्ते किं न्यासकारणम् ।

यौगन्धरायणः—पुष्पकभद्रादिभिरादेशिकैरादिष्टा स्वामिनो देवी भविष्यतीति ।

राजा—इदमपि रुमण्वता ज्ञातम् ।

यौगन्धरायणः—स्वामिन् ! सर्वैरेव ज्ञातम् ।

राजा—अहो ! शठः खलु रुमण्वान् ।

यौगन्धरायणः—स्वामिन् ! देव्याः कुशलनिवेदनार्थमद्यैव प्रतिनिवर्तंतामत्रभवान् रैभ्योऽत्रभवती च ।

राजा—न, न । सर्व एव वयं यास्यामो देव्या पद्मावत्या सह ।

यौगन्धरायणः—यदाज्ञापयति स्वामी ।

भरतवाक्यम्—

इमां सागरपर्यन्तां हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम् ।
महीमेकातपत्राङ्कां राजसिंहः प्रशास्तु नः ॥१९॥

[निष्क्रान्ताः सर्वे]

इति षष्ठोऽङ्कः ।

इति स्वप्नवासवदत्तमवसितम् ।

त्वेन व्यपदिष्टं मामकीनं शरीरम् **अपराध्यति** सापराधं भवति । **नामे**त्यभ्युपगमे । अहमत्रापराध्यामि, ममोपकारिणी भवती तु लेशतोऽपि नापराध्यतीत्यर्थः ।

देव्यपनये देव्याः वासवदत्ताया अपनये लावाणके वह्निदाहमिथ्याप्रवादं सञ्चार्य प्रच्छाद्यनयने **ते** त्वयेत्यर्थः, **का बुद्धिः** का मतिः **कृता** विहिता । देव्यपनये कस्तवाभिप्राय आसीदित्यर्थः । **कौशाम्बीमात्रं परिपालयामीति** केवलं कौशाम्बीनगरीमेव प्रशास्मि न तु समग्रं वत्सराज्यमित्यर्थः । देव्यपनयेन पद्मावत्या सह भवतो विवाहः, तेन पद्मावतीभ्रातृसाहाय्यलाभः, ततः शत्रुविध्वंसेन पुनः वत्सप्राप्तिः, ततः प्रधानामात्यत्वेन समग्रान् वत्सान् परिपालयिष्यामीति भावः । **अहो** ! इत्याश्चर्ये । **रुमण्वान्, शठः खलु** धूर्त एव । वासवदत्ताविषयकतादृशशोकसमाकुले मयि वस्तुरहस्यमप्रकाश्यं सततपरिचरणादित्यर्थः । रुमण्वतः प्रच्छन्नोपकारकारित्वं व्यङ्ग्यम् ।

भरतवाक्यम् भरतस्य परित्यक्तानुकार्यभावस्य नर्तकस्य वाक्यं श्लोकाशीरित्यर्थः । भरतो नाम नाट्यशास्त्रप्रणेता मुनिः, तस्य भरतस्य सम्मानार्थं

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

पद्मावती—मैं आपकी बड़ी अनुगृहीत हुई।

राजा—सखे यौगन्धरायण! देवी को छिपाकर रखने में आपका क्या अभिप्राय था ?

यौगन्धरायण—यह कि केवल कौशाम्बी ही अधिकार में रह गई थी (न कि सारा वत्सराज्य)।

राजा—और पद्मावती के हाथ इसे रखने का क्या कारण था ?

यौगन्धरायण—यह कि पुष्पकभद्रादि ज्योतिषियों ने कह रक्खा था कि राजकुमारी पद्मावती आपकी महारानी होंगी।

राजा—तो यह भी रुमण्वान् को मालूम था ?

यौगन्धरायण—महाराज ! सभी को मालूम था।

राजा—ओह ! तब तो रुमण्वान् भी, सचमुच, बड़ा धूर्त निकला !

यौगन्धरायण—महाराज। देवी का कुशल-समाचार सुनाने के लिए आर्य रैभ्य और आर्या वसुन्धरा को आज ही बिदा कीजिए।

राजा—नहीं, नहीं। देवी पद्मावती के साथ हम सभी चलेंगे।

यौगन्धरायण—जो महाराज की आज्ञा।

भरत-वाक्य—

हमारे राजसिंह (शौर्य आदि में सिंह के सदृश, राजाओं में सबसे श्रेष्ठ महाराज वत्सराज—अथवा महाकवि भास का आश्रयदाता राजसिंह नाम का कोई ऐतिहासिक राजा) सागर-पर्यन्त विस्तृत तथा हिमालय और विन्ध्याचल रूपी दो कर्ण-कुण्डलों से अलंकृत हुई राज्यच्छत्र से चिह्नित इस विशाल वसुधा का चिरशासन करें॥१६॥

[सब का प्रस्थान]

छठा अङ्क समाप्त

स्वप्नवासवदत्तम् समाप्त

प्रयुक्तं वाक्यं भरतवाक्यम्।

"इमाम्" इति—**नः** अस्माकम् **राजसिंहः** राजा उदयनः सिंह इव शौर्यादिगुणेषु सिंहसमो राजा **सागरपर्यन्तां** सागराः समुद्राः पर्यन्ताः परितः सीमानो यस्याः सा ताम् **हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम्** हिमवांश्च विन्ध्यश्च इति हिमवद्विन्ध्यौ हिमाचलविन्ध्याचलौ तावेव कुण्डले शोभाधायकत्वात् कर्णकुण्डल-स्थानापन्नौ यस्याः सा ताम् **एकातपत्राङ्काम्** एकम् अद्वितीयम् आतपत्रम् श्वेतच्छत्रम् अङ्कश्चिह्नं यस्यास्ताम्, **इमाम्, महीं** पृथ्वीम् कान्तामिति च व्यज्यते, **प्रशास्तु** शासनविषयीकरोतु।

अस्माकं राजा समग्राया भारतभुवोऽप्रतिमो भर्ता स्यादिति भावः॥१६॥

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

टिप्पणियाँ

स्थापना

पृष्ठ २

व्याकरण : स्वप्नवासवदत्तम्—यह प्रयोग, सामान्यतः, पाणिनि के किसी नियम से सिद्ध नहीं होता; यहाँ('अधिकृत्य कृते ग्रन्थे', पा० ४.३.८७से) अण्>अ अथवा ('शिशुक्रन्दयमसभद्वन्द्वेन्द्रजननादिभ्यश्छः', पा० ४.३.८८ से) छ>ईय प्रत्यय नहीं लगा है। हाँ, बहुव्रीहि समास मानकर इसे इस प्रकार सिद्ध किया जा सकता है : स्वप्ने दृष्टा स्वप्नदृष्टा, तादृशी वासवदत्ता यस्मिन् तद् नाटकम्; 'अनेक-मन्यपदार्थे' (२.२.२४) सूत्र के अन्तर्गत पठित 'सप्तम्युपमानपूर्वपदस्योत्तरपद-लोपश्च वक्तव्यम्' वार्त्तिक से सप्तम्यन्त 'स्वप्न' पूर्वपद वाले 'स्वप्नदृष्टा' पद का 'वास-वदत्ता' पद से समास एवं समस्त पद रूप पूर्वपद अर्थात् 'स्वप्नदृष्टा' के उत्तरपद (अर्थात् दृष्टा) का लोप करके उक्त रूप की सिद्धि की जा सकती है। **उदयनवेन्दु-सवर्णौ**—उदयकालिकः नवेन्दुः उदयनवेन्दुः ('शाकपार्थिवादीनां सिद्धय उत्तर-पदलोपस्योपसंख्यानम्' वार्त्तिक से पूर्वपद के अन्तर्गत उत्तरपद का लोप), तेन सवर्णौ उदयनवेन्दुसवर्णौ (तृ० तत्पु०); =उदीयमान नूतन चन्द्रमा के समान शोभा वाली (बलराम की दोनों भुजाएँ)। **आसवदत्ताबलौ**—आसवेन दत्तम् आ समन्ताद् बलं याभ्यां तौ आसवदत्ताबलौ (बहुव्रीहि); =मदिरा द्वारा प्रदत्त बल से युक्त, अर्थात् मदिरापान से विशेष बलसंपन्न। इसकी व्याख्या निम्नलिखित प्रकारों से भी की जा सकती है : (१) आसवेन दत्तम् अबलं बलाभावः अलसता वा याभ्यां तौ (बहुव्रीहि); =मदिरापान करने से विशेष आलस्ययुक्त; (२) दत्तम् आसवं यस्यै सा आसवदत्ता (बहुव्रीहि, 'वाहिताग्न्यादिषु', २.२.३७, से दत्त शब्द का परनिपात) अबला स्त्री रेवतीनाम्नी याभ्यां तौ (बहुव्रीहि);=अपनी पत्नी रेवती को मदिरा समर्पित करने वाली (भुजाएँ)। **पद्मावतीर्णपूर्णौ**—पद्मां लक्ष्मीम् अवतीर्णौ उपगतौ (द्वि० तत्पु०), तादृशौ च तौ पूर्णौ च पद्मावतीर्णपूर्णौ; 'मयूरव्यंसकादयश्च', २.१.७२, से तत्पु०। इसकी व्याख्या इस प्रकार भी की जा सकती है : पद्मायाः लक्ष्म्याः अवतीर्णम् अवतारः आविर्भावः पद्मावतीर्णम् (ष० तत्पु०), तेन पूर्णौ ऋद्धिमन्तौ (तृ०तत्पु०);=शोभा अथवा सौन्दर्य के आवि-र्भाव से परिपूर्ण या ऋद्धिसंपन्न। अवतीर्णम् में अव √तॄ से 'नपुंसके भावे क्तः', ३.३.११४, से भाव अर्थ में क्त होगा। **वसन्तकम्रौ**—वसन्तः इव कम्रः वसन्तकम्रः तादृशौ; 'उपमानानि सामान्यवचनैः', २.१.५५, से कर्मधा० तत्पु०। **पाताम्**—√पा 'रक्षा करना' (अदादि० पर०), लोट् प्र० पु० द्वि०। **आर्यमिश्रान्**—आर्याः (सभ्याः) च ते मिश्राः (पूज्याः) च (कर्मधा० तत्पु०) तान्; =गौरवसंपन्न अथवा

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

आदरणीय सामाजिकों को। तु० विक्रमोर्वशीय, प्रस्तावना : 'यावदिदानीम् आर्यमिश्रान् विज्ञापयामि'। उक्त नाटककार के टीकाकार रङ्गनाथ के अनुसार, मिश्र शब्द उत्तरपद के रूप में 'पूज्य' अर्थ में प्रयुक्त होता है तथा यह नित्य बहुवचनान्त होता है। **विज्ञापयामि**—वि √ज्ञा, णिच्, लट् उ० पु० एक०;=सादर निवेदन करता हूँ। **विज्ञापनव्यग्रे**—विज्ञापने व्यग्रः (स० तत्पु०) तस्मिन् (सति) ; यहाँ 'यस्य च भावेन भावलक्षणम्', २.३.३७, से भाव-लक्षणा सप्तमी है। **श्रूयते**—√श्रु, कर्मवाच्य, लट् प्र० पु० एक०। **अङ्ग**—'अच्छा', 'ठीक' अर्थ में अथवा संबोधन के रूप में प्रयुक्त निपात। **उत्सरत**—उद्√सृ (भ्वा० पर०), लोट् म० बहु०;=परे हट जाओ। तु० उत्सार्यते (पृ० ४), उत्सारयति (पृ० ६) आदि पर टि०।

अन्वय (१.१) : बलस्य उदय-नवेन्दु-सवर्णौ आसव-दत्ताबलौ पद्मावतीर्णपूर्णौ वसन्तकम्रौ भुजौ त्वां पाताम्।

विशेष : स्वप्नवासवदत्तम्— इस नाम का आधार नाटक के पञ्चम अङ्क की एक विशेष घटना है। समुद्रगृह में रानी पद्मावती की प्रतीक्षा करते-करते राजा उदयन को नींद आ जाती है। कुछ देर बाद वहाँ वासवदत्ता, जो आवन्तिका के रूप में राजकुल में रह रही है, आती है और वहीं, उदयन की शय्या पर, चादर ओढ़े सोए उदयन को पद्मावती समझकर लेट जाती है। राजा सपने में वासवदत्ता को देखता है और उसे संबोधित करता है। साथ लेटी हुई वासवदत्ता उत्सुकतावश स्वप्न में बोल रहे राजा की बातों का उत्तर देने लग जाती है। स्वप्नावस्था में स्थित प्रिय और जागरित दशा में विद्यमान प्रेयसी के बीच वार्तालाप एवं उनके मिलन का यह दृश्य नाटक का एक मार्मिक प्रसङ्ग है; द्र० नाटक, पृ० ६२-६८, तथा भूमिका, कथासार। साद० (६.१४२) के अनुसार नाटक का नाम गर्भसंधि द्वारा सूचित अर्थ की अभिव्यञ्जना करने वाला होना चाहिए : 'नाम कार्यं नाटकस्य गर्भितार्थप्रकाशकम्'। गर्भसंधि नाटक में फलागम के मुख्य उपाय के समुद्भेद अथवा आविर्भाव को कहते हैं (तु० साद० ६.७८-७९)। प्रस्तुत नाटक में उदयन द्वारा वासवदत्ता की पुनःप्राप्ति फलागम है; उसका मुख्य उपाय यहाँ स्वप्नमिलन के रूप में वर्णित है। नाटक के स्वप्नदृश्य में इस उपाय का समुद्भेद हुआ है, अतः उसके आधार पर नाटक का उक्त नामकरण उपयुक्त ही है।

प्रस्तुत नाटक के अन्य प्रचलित नाम हैं 'स्वप्नवासवदत्ता' तथा 'स्वप्ननाटक'। इनमें प्रथम नाम की व्याख्या इस प्रकार होगी : स्वप्नदृष्टा वासवदत्ता स्वप्नवासवदत्ता, तस्याः तत्प्रतिपादके नाटके अभेदेनोपचारः, अर्थात् स्वप्न में दृष्ट वासवदत्ता के लिए 'स्वप्नवासवदत्ता' शब्द का प्रयोग होगा तथा उसका

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

उसकी कथा के प्रतिपादक नाटक में अभेदोपचार होने से उस नाटक को भी 'स्वप्नवासवदत्ता' कहा जाएगा। स्वप्ननाटक नाम की व्याख्या 'स्वप्नप्रधानं नाटकं स्वप्ननाटकम्' इस प्रकार होगी।

नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः —यह नाट्य-निर्देश महत्त्वपूर्ण है। यह इस बात का संकेत करता है कि नाटक का आरम्भ नान्दी-पाठ के अनन्तर हो रहा है। इससे यह भी सूचित होता है कि नान्द्यन्त अर्थात् नान्दी के अन्त में आने वाला नाटक का प्रथम पद्य, उदयनवेन्दु० इत्यादि, नान्दी नहीं है। इस प्रकार इस नाटक का (एवं त्रिवेन्द्रम से प्राप्त अन्य बारह नाटकों का) आरम्भ नान्दी-पाठ से न होकर सूत्रधार-कृत मङ्गलाचरण से हुआ है। इस तथ्य की ओर बाण-भट्ट ने यह कहकर संकेत किया है : 'सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः। सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव ॥' (हर्षचरित, प्रस्तावना-श्लोक १५)

नान्दी पूर्वरङ्ग का एक भाग है। नाटकीय वस्तु की अवतारणा से पूर्व, नाट्यशाला में अभिनय के दौरान संभावित विघ्नों के उपशमन के लिए नटों द्वारा जो प्रारम्भिक कर्म (preliminaries) किए जाते हैं उन्हें पूर्वरङ्ग का नाम दिया जाता है। इसकी परिभाषा यह है : 'यन्नाट्यवस्तुनः पूर्वं रङ्गविघ्नोपशान्तये। कुशीलवाः प्रकुर्वन्ति पूर्वरङ्गः स उच्यते ॥' (साद० ६.२२)। इस पूर्वरङ्ग के बाईस अङ्ग बताए गए हैं। इन अङ्गों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अङ्ग नान्दी है। नान्दी की परिभाषा इस प्रकार है :

आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात् प्रयुज्यते।
देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता ॥
मङ्गल्यशङ्खचन्द्राब्जकोककैरवशंसिनी।
पदैर्युक्ता द्वादशभिरष्टाभिर्वा पदैरुत ॥ (साद० ६.२४-२५)

अर्थात् 'किसी देवता, ब्राह्मण अथवा राजा आदि की स्तुति में कहे गए आशीर्वादात्मक वचन को नान्दी कहते हैं। इसमें आठ या बारह पदों में शंख, चन्द्रमा, कमल, चक्रवाक, कुमुद आदि मांगलिक वस्तुओं का वर्णन होता है।' यहाँ पदों की संख्या के संबन्ध में विभिन्न नाट्यशास्त्रियों में मतभेद है। वस्तुतः इस संबन्ध में निश्चित नियम निर्धारित नहीं किया जा सकता। पद के स्वरूप के बारे में भी विभिन्न मत प्राप्त होते हैं; एक मत के अनुसार श्लोक का एक पाद या चरण पद है तो अन्य मत में यहाँ सुबन्त और तिङन्त रूप पद अभिप्रेत हैं। नान्दी के इस नाम का कारण यह विश्वास है कि यह देवताओं को आनन्दित करती है। मालतीमाधव के टीकाकार जगद्धर के अनुसार इसकी व्युत्पत्ति है : 'नन्दयति इति नन्दः। पचाद्यच्। नन्द एव नान्दः। प्रज्ञादित्वाद् अण् प्रत्ययः। टिड्ढाणञ् इति ङीप्। नान्दी।'

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

प्रस्तुत नाटक के, सूत्रधार द्वारा पठित, मंगलाचरणात्मक श्लोक (उदयनवेन्दु०) को नाटकीय परिभाषा में रङ्गद्वार कहा जा सकता है। रङ्गद्वार भी, नान्दी की भाँति, पूर्वरङ्ग का एक अङ्ग है। इसकी परिभाषा है : 'यस्मादभिनयो ह्यत्र प्राथम्यादवतार्यते। रङ्गद्वारमतो ज्ञेयं वागङ्गाभिनयात्मकम् ॥' (साद० ६.२४-२५ वृत्ति), अर्थात् चूंकि रङ्गशाला में सर्वप्रथम अभिनय की अवतारणा की जाती है, इसलिए वाचिक और आङ्गिक अभिनय रूप मंगलाचरण को रङ्गद्वार ही समझना चाहिए।

सूत्रधारः—भरत के नाट्यशास्त्र के अनुसार, बीज समेत नाट्य के अनुष्ठान अथवा प्रयोग (performance) को सूत्र कहते हैं तथा उसको धारण करने वाले अर्थात् उसके प्रबन्धक को, जो रङ्गशाला के देवता की पूजा करता है, सूत्रधार (stage manager) कहते हैं :

नाट्यस्य यदनुष्ठानं तत् सूत्रं स्यात् सबीजकम्।
रङ्गदैवतपूजाकृत् सूत्रधार उदीरितः ॥

संगीतसर्वस्व के अनुसार, रङ्गभूमि में प्रवेश करके जो नट सर्वप्रथम प्रयोज्य कथावस्तु के सूत्र की सूचना देता है उसे सूत्रधार कहते हैं : 'वर्तनीयतया सूत्रं प्रथमं येन सूच्यते। रङ्गभूमिं समाक्रम्य सूत्रधारः स उच्यते ॥' प्रस्तुत नाटक का सूत्रधार, इस परिभाषा के अनुरूप, प्रयोज्य कथावस्तु के सूत्र की प्रथम सूचना देता है। साद० (६.२६) के अनुसार, यह कार्य सूत्रधार का न होकर स्थापक का है। पूर्वरङ्ग का विधान करके सूत्रधार के चले जाने के अनन्तर उसके तुल्य गुणों और आकार वाला स्थापक नाटक की स्थापना (introduction) करता है तथा उसकी कथावस्तु, बीज, मुख अथवा पात्र की सूचना देता है : 'पूर्वरङ्गं विधायैव सूत्रधारो निवर्तते। प्रविश्य स्थापकस्तद्वत् काव्यमास्थापयेत् ततः ॥ सूचयेद् वस्तु बीजं वा मुखं पात्रमथापि वा।' उक्त मत के अनुसार, प्रस्तुत नाटक का सूत्रधार वस्तुतः स्थापक का कार्य करता है। नाटक की प्रस्तावना के लिए भास-नाटकों में स्थापना शब्द का प्रयोग किया गया है; यह तथ्य भी सूत्रधार द्वारा यहाँ वस्तुतः स्थापक का कार्य किये जाने की सूचना देता है। बाण ने, संभवतः इसी बात को ध्यान में रखकर, भास-नाटकों को 'सूत्रधार-कृतारम्भ' कहा है। एक अन्य परिभाषा के अनुसार, नाटक के उपकरणों का नाम सूत्र है, और उन्हें धारण करने वाला सूत्रधार कहलाता है : 'नाट्योपकरणादीनि सूत्रमित्यभिधीयते। सूत्रं धारयतीत्यर्थे सूत्रधारो निगद्यते ॥'

उदयनवेन्दु०—रङ्गद्वार रूप इस मंगलाचरण-पद्य में कृष्ण के अग्रज बलराम की भुजाओं की स्तुति एवं तद्द्वारा आशीर्वादात्मक कथन किया गया है। बलराम के प्रति भास का भक्तिभाव उसके पाञ्चरात्र संप्रदाय का अनुयायी होने की

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

सूचना देता है। पाञ्चरात्र संप्रदाय कृष्ण, संकर्षण (बलराम), प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—इन चार व्यूहों की पूजा में आस्था रखता है। इस नाटक में अन्यत्र (पृ० ६० में) भी बलराम की गौरवर्ण भुजाओं का सादर उल्लेख है। प्रस्तुत पद्य में बलराम के गौर वर्ण का एवं उसके मदिरा-प्रेम का वर्णन महत्त्वपूर्ण है। बलराम का मदिरा-प्रेम प्रसिद्ध है; तु० मेघदूत १.५२ : 'हित्वा हालामभिमतरसां रेवतीलोचनाङ्काम्।' द्र० शिशुपालवध २.१६,२०; काव्यादर्श ३.६४ भी। देव-स्तुति तथा आशीर्वचन के साथ-साथ प्रस्तुत पद्य में नाटक के प्रमुख पात्रों—उदयन, वासवदत्ता, पद्मावती और वसन्तक—के नामों का निर्देश भी है। इस प्रकार, मंगलाचरण रूप प्रकृत अर्थ के कथन के साथ-साथ इसमें नाटकीय पात्रों के संकेत के रूप में सूच्य अर्थ की व्यञ्जना भी होने से यहाँ मुद्रा नामक अलंकार की सुन्दर स्थिति है। इस अलंकार का लक्षण है : 'सूच्यार्थसूचनं मुद्रा प्रकृतार्थपरैः पदैः' (अप्पय दीक्षित : कुवलया० १२६)।

नेपथ्ये—नेपथ्य का मूल अर्थ 'प्रसाधन' या 'शृङ्गार-सज्जा' है; तु० 'आकल्पवेषौ नेपथ्यं प्रतिकर्म प्रसाधनम्' (अमरकोश)। लक्षणा से, रङ्गमञ्च पर परदे के पीछे उस स्थान को भी नेपथ्य कह दिया जाता है जहाँ नट या अभिनेता नेपथ्य-ग्रहण करते हैं, अर्थात् अभिनयोचित वेषभूषा धारण करते हैं एवं अपने आपको सजाते हैं। इसकी परिभाषा इस प्रकार है : 'कुशीलवकुटुम्बस्य स्थलं नेपथ्यमुच्यते'। नेपथ्य शब्द जवनिका या परदे के लिए भी प्रयुक्त होता है।

उत्सरत उत्सरत—राजा, रानी जैसे संभ्रान्त वर्ग के पात्रों के आगमन को सूचित करने के लिए इस प्रकार की युक्ति (device) अन्य भास-नाटकों में भी बरती गई है। इस प्रकार के उत्सारण का प्रयोजन मूलतः भीड़ को परे हटाकर संभ्रान्त जन का मार्ग प्रशस्त करना था।

पृष्ठ ४

व्याकरण : मगधराजस्य—मगधानां राजा मगधराजः तस्य (ष० तत्पु०); 'राजाहस्सखिभ्यष्टच्', ५.४.९१, से समासान्त टच् > अ। **धृष्टम्**—धृष्टम् उद्धतं यथा स्यात् तथा (क्रियावि०)। **उत्सार्यते**—उद्√सृ, णिच् (प्रेरणार्थक), कर्मवाच्य, लट् प्र० पु० एक०; =हटाया जाता है, हटाया जा रहा है।

अन्वय (१.२) : मगधराजस्य स्निग्धैः कन्यानुगामिभिः भृत्यैः तपोवनगतः सर्वः जनः धृष्टम् उत्सार्यते।

विशेष : स्थापना—नाटकीय वस्तु की अवतारणा को नाट्यशास्त्रीय भाषा में आमुख या प्रस्तावना कहते हैं जिसे भास ने अपने नाटकों में स्थापना कहा है। विश्वनाथ (साद० ६.३१-३२) के अनुसार, इसकी परिभाषा इस प्रकार है :

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

नटी विदूषको वापि पारिपार्श्वक एव वा ।
सूत्रधारेण सहिताः संलापं यत्र कुर्वते ॥
चित्रैर्वाक्यैः स्वकार्योत्थैः प्रस्तुताक्षेपिभिर्मिथः ।
आमुखं तत् तु विज्ञेयं नाम्ना प्रस्तावनापि सा ॥

इस परिभाषा के अनुसार, सूत्रधार के साथ नट आदि अन्य पात्र भी प्रस्तावना में आते हैं। वे अपने कार्यों से संबन्धित परस्पर वार्तालाप द्वारा प्रकृत नाटक से संबद्ध विषय की सूचना देते हैं। प्रस्तुत नाटक में उक्त अन्य पात्रों की अवतारणा नहीं है। स्वयं सूत्रधार ही नेपथ्य से मगधराज के भृत्यों के उत्सारण-आदेश को सुनने का अभिनय करके तद्द्वारा प्रकृत नाटकीय वस्तु की उत्थापना करता है। जैसा कि कहा गया है, भास के नाटकों में 'प्रस्तावना' के स्थान पर 'स्थापना' शब्द का प्रयोग हुआ है। प्रतीत होता है कि मूलतः स्थापक द्वारा इसकी अवतारणा होने के कारण इसे पहले स्थापना कहा जाता था, और बाद के संस्कृत नाटकों में, स्थापक का कार्य सूत्रधार द्वारा किए जाने पर तथा इस प्रकार स्थापना शब्द के प्रयोग की विशेष सार्थकता न रह जाने पर, इसे प्रस्तावना कहा जाने लगा।

यह प्रस्तावना पाँच प्रकार की होती है : उद्घात्यक, कथोद्घात, प्रयोगातिशय, प्रवर्तक और अवलगित (द्र० साद० ६.३३ प्रभृति)। प्रस्तुत नाटक की प्रस्तावना उक्त भेदों में से प्रयोगातिशय नामक भेद का उदाहरण है। इसका लक्षण है : 'यदि प्रयोग एकस्मिन् प्रयोगोऽन्यः प्रयुज्यते। तेन पात्रप्रवेशश्चेत् प्रयोगातिशयस्तदा ॥' (साद० ६.३६), अर्थात् जहाँ एक प्रयोग का उपक्रम करते-करते किसी अन्य प्रयोग का उपक्रम कर दिया जाए एवं उस दूसरे प्रयोग के उपक्रम के रूप में पात्र-प्रवेश दिखाया जाए वहाँ प्रयोगातिशय होता है; यहाँ दूसरा प्रयोग पहले प्रयोग से अधिक उत्कृष्ट होता है। प्रस्तुत नाटक में सूत्रधार 'एवमार्यमिश्रान् विज्ञापयामि' इन शब्दों से एक नाट्यवस्तु का प्रस्ताव करना चाहता था; यह एक प्रयोग था। इसी बीच नेपथ्य से कुछ शब्द-सा सुनकर वह उसे भलीभाँति सुन-समझकर दर्शकों को उस संबन्ध में अवगत कराता है। इस प्रकार वह एक प्रयोग का उपक्रम करते-करते उसे छोड़कर अन्य प्रयोग का उपक्रम करने लग पड़ता है। इस दूसरे प्रयोग द्वारा वह पात्रों—राजा दर्शक के सैनिकों—के प्रवेश की सूचना देकर स्वयं मञ्च पर से चला जाता है एवं तद्द्वारा नाट्यवस्तु की उत्थापना करता है। यह दूसरा प्रयोग यहाँ निश्चयतः पहले प्रयोग की अपेक्षा अधिक उत्कृष्ट है। अतः यहाँ प्रयोगातिशय नामक प्रस्तावना-प्रकार है।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

प्रथम अङ्क

पृष्ठ ६

व्याकरण : परिव्राजकवेषः —परिव्राजकः (परित्यज्य सर्वं व्रजति इति, परि √व्रज्+ण्वुल्>अक) संन्यासी, तस्य इव वेषः यस्य सः (बहु० स०)। **यौगन्धरायणः**—युगन्धरस्य अपत्यं पुमान्; युगन्धर+फक्>आयन; 'नडादिभ्यः फक्', ४.१.९९, से फक्। **आवन्तिकावेषधारिणी**—अवन्त्यां जाता आवन्तिका (अवन्ति+ठक्>इक; 'तत्र जातः', ४.३.२५, से ठक्; स्त्रीप्रत्यय टाप्>आ), तस्याः वेषं धारयति इति सा (उपपद तत्पु०)। **मानार्हस्य**—मानम् अर्हति इति सः तस्य; मान √अर्ह्+अच्>अ; 'अर्हः', ३.२.१२, से अच्; उपपद तत्पु०। **समुत्पाद्यते**—सम् उद् √पद्, णिच्, कर्मवाच्य, लट् प्र० पु० एक०। **विनयादपेतपुरुषः**— (विनयात्) अपेतः पुरुषः अपेतपुरुषः (कर्मधा०); यहाँ 'अपेतः' का संबन्ध 'विनयात्' से है जो समास का अङ्ग नहीं है। अतः अपेतपुरुषः में सापेक्ष अथवा असमर्थ समास है, तथापि चूंकि वह 'विनयात्' से इष्ट संबन्ध का गमक अर्थात् बोधक है इसलिए यह 'सापेक्षत्वेऽपि गमकत्वात्समासः' का उदाहरण है। ऐसे समास के कुछ अन्य उदाहरण हैं 'गुरुभिः अभिहितनामधेयस्य' (पृ० १०), 'विस्रम्भेण उत्पादितविस्रम्भा' (पृ० १६), 'पुष्पफलैः समृद्धविटपाः' (पृ० २२), 'तयोः वियोगजनितसंतापः' (पृ० २४-२६)। **ग्रामीकरोति**—अग्रामं ग्रामं करोति इति, ग्राम+च्वि √कृ, लट् प्र०पु० एक०; यहाँ 'अभूततद्भावे संपद्यकर्तरि च्विः कृभ्वस्तियोगे', ५.४.५०, से 'जो वैसा नहीं है उसे वैसा करने' के अर्थ में च्वि हुआ है। **उत्सारयति**—उद् √सृ, णिच्, लट् प्र०पु० एक०।

अन्वय (१.३) : धीरस्य आश्रम-संश्रितस्य वन्यैः फलैः तुष्टस्य वसतः मानार्हस्य वल्कलवतः जनस्य त्रासः [कुतः] समुत्पाद्यते ? भोः, कः अयम् उत्सिक्तः विनयाद् अपेतपुरुषः चलैः भाग्यैः विस्मितः इदं निभृतं तपोवनम् आज्ञया ग्रामीकरोति ?

विशेष : अङ्क—नाटक की संपूर्ण वस्तु, मुख्य घटनाओं के आधार पर, जिन भागों या परिच्छेदों में विभाजित की जाती है उन्हें अङ्क कहते हैं। नाटक में पाँच से दस (साधारणतः सात) अङ्क होते हैं। एक अङ्क में कथावस्तु का एक मुख्य कार्य अथवा कार्य का भाग होना चाहिए; इसके अन्तर्गत अनेक अवान्तर घटनाएँ आ सकती हैं, परंतु ये घटनाएँ अनेक दिनों से संबन्धित नहीं होनी चाहिएँ। प्रत्येक अङ्क में नायक की तथा अन्य तीन-चार पात्रों की उपस्थिति होनी चाहिए। अङ्क की समाप्ति सभी पात्रों के निष्क्रमण से होनी चाहिए (विस्तार के लिए, द्र० साद० ६.१२-१६)।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

धीरस्याश्रम०—इस श्लोक में धीरस्य आदि विशेषण त्रास उत्पन्न करने के अनौचित्य को बताने में साभिप्राय हैं; अतः यहाँ परिकर अलंकार है। इस अलंकार का लक्षण है : 'अलंकारः परिकरः साभिप्राये विशेषणे' (कुवलया० ६२)।

ग्रामीकरोति—तपोवन के शान्त वातावरण की तुलना में ग्राम (अथवा नगर) का वातावरण अशान्ति और संत्रास से परिपूर्ण होता है। यहाँ 'ग्रामीकरण' का अभिप्राय तपोवन के शान्त वातावरण को क्षुब्ध बनाना है। आज की दृष्टि से 'ग्रामीकरोति' के स्थान पर 'नगरीकरोति' कहना अधिक उपयुक्त होगा। स्वयं भास के प्रतिमानाटक (७.४) में यह प्रयोग प्राप्त होता है : 'शङ्खध्वनिश्च पटहस्वनधीरनादैः संमूर्च्छितो वनमिदं नगरीकरोति'।

यो धर्माद् आत्मानम् उत्सारयति—यौगन्धरायण के इस कथन में आश्रम-प्रदेश में लोगों को इस प्रकार परे हटाए जाने के प्रति आक्रोश का भाव है। उसकी दृष्टि में ऐसा करना अपने आपको धर्म के मार्ग से हटाना है, अधर्म का आचरण करना है।

पृष्ठ ८

व्याकरण : वक्तुकामा—वक्तुम् (√वच्+तुमुन्>तुम्) कामः यस्याः सा (बहु० स०); पृषोदरादित्व से तुम् के म् का लोप। नाटक में ऐसे कुछ अन्य प्रयोग हैं निक्षेप्तुकामः (पृ० १८), अभ्यवपत्तुकामः (पृ० २४), परित्यक्तुकामः (पृ० २६) आदि। **उत्सारयितव्या**—उद्√सृ, णिच्, तव्य, स्त्री०। **अनिर्ज्ञातानि**—निश्चयेन ज्ञातानि निर्ज्ञातानि, न निर्ज्ञातानि इति अनिर्ज्ञातानि (नञ् तत्पु०)। **दैवतानि**—देवाः एव देवताः; 'देवात्तल्', ५.२.२७, से स्वार्थ अर्थात् अपने मूल अर्थ में तल्>ता; देवताः एव दैवतानि; 'प्रज्ञादिभ्यश्च', ५.४.३८, से पुनः स्वार्थ में अण्>अ। **अवधूयन्ते**—अव √धू, कर्मवाच्य, लट् प्र० पु० बहु०;= तिरस्कृत या अपमानित हो जाते हैं। **उत्पादयति**—उद् √पद्, णिच्, लट् प्र० पु० एक०। **भुक्तोज्झितः**—पूर्वं भुक्तः पश्चात् (स्वामिकार्यानुरोधेन) उज्झितः (कर्मधा०)। **श्लाघ्यम्**—√श्लाघ्+ण्यत्, श्लाघ्यं यथा स्यात् तथा (क्रियावि०)। **चक्रारपङ्क्तिः**—चक्रस्य अराणि चक्राराणि (ष० तत्पु०), तेषां पङ्क्तिः (ष० तत्पु०)। **उत्सारणा**—उद् √सृ, णिच्+युच्>अन+टाप्>आ; 'ण्यासश्रन्थो युच्', ३.३.१०७, से युच्।

अन्वय (१.४) : पूर्वं त्वया अपि एवम् अभिमतं गतम् आसीत्। भर्तुः विजयेन पुनः श्लाघ्यं गमिष्यसि। कालक्रमेण परिवर्तमाना जगतः भाग्यपङ्क्तिः चक्रारपङ्क्तिः इव गच्छति।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

विशेष : पूर्वं त्वया०—प्रथम दो पङ्क्तियों का अर्थ इस प्रकार भी किया जा

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

सकता है : 'पहले तुम भी इस प्रकार अपनी इच्छा के अनुसार (अभिमतं यथा स्यात् तथा, क्रियावि०) जाया करती थीं। अपने पति की विजय होने पर तुम पुनः प्रशंसनीय रूप से (श्लाघ्यं यथा स्यात् तथा) जाया करोगी।' पहली पङ्क्ति का अन्वय इस प्रकार भी किया जा सकता है : 'एवं गतं पूर्वं त्वया अपि अभिमतम् आसीत्' = इस प्रकार (शान के साथ) जाना पहले तुम्हें भी अभिमत अथवा अभीष्ट था।

कालक्रमेण जगतः०—मेघदूत (२.४६) में कालिदास ने इसी भाव को इन शब्दों में व्यक्त किया है : 'कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण।' भास के पद्य में, पूर्वार्ध में कथित वासवदत्ता की भाग्यदशा से संबद्ध विशेष बात का उत्तरार्ध में भाग्य की परिवर्तनशीलता रूप सामान्य बात से समर्थन हुआ है; अतः यहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार है। इस अलंकार का लक्षण है : 'सामान्यं वा विशेषो वा तदन्येन समर्थ्यते। यत् तु सोऽर्थान्तरन्यासः साधर्म्येणेतरेण वा ॥' (काव्यप्रकाश १०.१०६)

काञ्चुकीय—इस शब्द का अधिक प्रचलित रूप 'कञ्चुकी' है। यह अन्तःपुर के प्रधान सेवकों में से एक होता था। कञ्चुक (लम्बा चोगा) धारण करने के कारण इसे काञ्चुकीय कहा जाता था। इसका लक्षण इस प्रकार किया गया है :

अन्तःपुरचरो वृद्धो विप्रो गुणगणान्वितः।
सर्वकार्यार्थकुशलः कञ्चुकीत्यभिधीयते ॥

इसके अनुसार, कञ्चुकी वृद्ध, ब्राह्मण, गुणी और कुशल अन्तःपुर-सेवक होता था। मातृगुप्त ने इसका यह लक्षण किया है : 'ये नित्यं सत्त्वसंपन्नाः कामदोषविवर्जिताः। ज्ञानविज्ञानकुशलाः काञ्चुकीयास्तु ते स्मृताः ॥'

पृष्ठ १०

व्याकरण : विमोक्तुम्—वि √मुच् + तुमुन् > तुम्। **मनस्विनः**—मनस् + विनि > विन्; 'अस्मायामेधास्रजो विनिः', ५.२.१२१, से मतुप् अर्थ में विनि;=प्रशस्त मन वाले। **हन्त**—हर्ष-सूचक निपात (तु० पृ० १६ भी)। इसका प्रयोग शोक-सूचक निपात के रूप में भी होता है। **सविज्ञानम्**—विज्ञानेन सहितम् (बहु० स०);=विशेष ज्ञान से युक्त, विवेकशील। **दर्शनम्**— दृश्यते ज्ञायते वस्तुतत्त्वम् अनेन इति; √दृश् + ल्युट् > अन; =बुद्धि। तु० मेदिनीकोश :'दर्शनं नयनस्वप्नबुद्धिधर्मोपलब्धिषु'। **श्लिष्यते**— √श्लिष् 'जुड़ना', दिवा०, लट्। यह परस्मै० धातु है, परंतु यहाँ इसका प्रयोग आत्मने० में हुआ है। **अभिहितनामधेयस्य**—(गुरुभिः) अभिहितं कथितं नामधेयं यस्य सः तस्य (बहु० स०); तु० विनयाद् अपेतपुरुषः (पृ० ९) पर टि०। **अस्याः अभिप्रेतः**— (अभि प्र √इ + क्त > त);

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

वर्तमान में मति (इच्छा) अर्थ में 'मतिबुद्धिपूजार्थेभ्यश्च', ३.२.१८८, से क्त तथा 'क्तस्य च वर्तमाने', २.३.६७, से उसके योग में (अस्याः में) षष्ठी।

अन्वय (१.५) : भवान् नृपापवादं परिहरतु। आश्रमवासिषु परुषं न प्रयोज्यम्। एते मनस्विनः नगर-परिभवान् विमोक्तुं वनम् अभिगम्य वसन्ति।

विशेष : परुषम्—इसका प्रयोग यहाँ संज्ञा के रूप में 'परुष (कठोर) वचन अथवा व्यवहार' के अर्थ में हुआ है।

आत्मगतम्—अभिनेता जब किसी पात्र की उक्ति का इस अभिप्राय से वाचिक अभिनय करता है कि वह पात्र अपने मन में अमुक बात कह या सोच रहा है तब उसका नाट्यगत निर्देश 'आत्मगतम्' या 'स्वगतम्' (=मन ही मन) इस पारिभाषिक शब्द से किया जाता है। इसके अनन्तर जब वह अन्य पात्रों द्वारा सुने जाने योग्य बात का वाचिक अभिनय करता है तब उसका निर्देश 'प्रकाशम्' (=प्रकट) शब्द द्वारा किया जाता है; उदाहरण पृ० १६ पर देखें। इनकी शास्त्रीय परिभाषा इस प्रकार है : 'अश्राव्यं खलु यद् वस्तु तदिह स्वगतं मतम्॥ सर्वश्राव्यं प्रकाशं स्यात्......।' (साद० ६.१३७-३८)

गुरुभिः अभिहितनामधेयस्य—काञ्चुकीय अपने स्वामी का नाम लेना अनुचित समझता है, परंतु ऐसा करना उसके लिए आवश्यक है। अतः वह कहता है : 'यह हमारे महाराजकी, जिनका नाम गुरुजनों ने दर्शक रखा है, बहिन पद्मावती है।'

राजगृहम् —राजभवन। मगध की प्राचीन राजधानी (वर्तमान राजगीर, ज़िला पटना) के नाम के रूप में भी इसका ग्रहण किया जा सकता है।

पृष्ठ १२

व्याकरण : तपोधनानि—तपसः धनानि (साधनतया धनरूपाणि) ; ष० तत्पु०। **स्वैरम्**—स्वेन छन्देन ईरः गतिः यस्य तत् (बहु०स०); 'स्वादीरेरिणोः' (वार्त्तिक) से वृद्धि; स्वैरं स्वच्छन्दं यथा स्यात्तथा (क्रियावि०)। **धर्मप्रिया**—धर्मः प्रियः यस्याः सा (बहु०स०)। **धर्मपीडाम्**—धर्मे पीडा ताम् (स०तत्पु०)। **तपस्विषु**—यहाँ विषय-रूप अधिकरण में सप्तमी है। **इच्छेत्**—वर्तमान काल के अर्थ में 'इच्छार्थेभ्यो विभाषा वर्तमाने', ३.३.१६०, से विधिलिङ्। **आदेशिक**—आदेशेन भविष्यकथनेन जीवति इति 'वेतनादिभ्यो जीवति', ४.४.१२, से ठक्>इक; =ज्योतिषी। **भर्तृदाराभिलाषित्वात्**— भर्तुः दाराः इति भर्तृदाराः, भर्तृदारत्वेन अभिलाषः भर्तृदाराभिलाषः, सः अस्यास्ति इति भर्तृदाराभिलाषी, तस्य भावः भर्तृदाराभिलाषित्वं, तस्मात्;=यह मेरे स्वामी की पत्नी बने, ऐसी मेरी इच्छा होने के कारण।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

अन्वय (१.६) : (भवन्तः) वनात् तपोधनानि तीर्थोदकानि समिधः कुसु-

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

मानि दर्भान् (च) स्वैरम् उपनयन्तु। धर्मप्रिया नृपसुता तपस्विषु धर्मपीडां न हि इच्छेत्। एतद् अस्याः कुलव्रतम्।

(१.७) : प्रद्वेषः बहुमानः वा संकल्पाद् उपजायते। भर्तृदाराभिलाषित्वाद् मे अस्यां महती स्वता (वर्तते)।

विशेष : धर्मप्रिया नृपसुता—पद्मावती अपने-अपने धर्म अथवा कर्त्तव्य के पालन को विशेष महत्त्व देती है, अतश्च वह तपस्वियों के स्वधर्म-पालन में विघ्न नहीं देखना चाहती; वह चाहती है कि वे वन-प्रदेश से तीर्थजल आदि लाने के रूप में अपने आश्रमधर्म का पालन बेरोकटोक करते रहें। **प्रद्वेषो बहुमानो वा**—भाव यह है कि जिसके लिए हमारे मन में अपनत्व या परायेपन की भावना रूप संकल्प उत्पन्न हो जाता है उसके प्रति हमारा आदर या द्वेष (अथवा उदासीनता) का भाव स्वतः जाग जाता है। यौगन्धरायण के हृदय में पद्मावती के प्रति अपनत्व की भावना के उदय का कारण यह है कि वह उसे अपनी स्वामी की पत्नी के रूप में देखना चाहता है। इस पद्य में पूर्वार्ध में कथित सामान्य का उत्तरार्ध में कथित विशेष द्वारा समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलंकार है (लक्षण १.४ की व्याख्या में देखें)।

ततः प्रविशति उपविष्टा तापसी—यहाँ बैठी हुई तापसी के 'प्रवेश' से अभिप्राय उस रूप में उसके मञ्च पर 'दिखाए जाने' से है। परदे के पीछे बैठी हुई तापसी परदे के हटने से मञ्च पर बैठी हुई दीख पड़ती है; उसे इस रूप में मञ्च पर दिखाना उसका 'प्रवेश' कराना है। पात्र-प्रवेश की यह युक्ति संस्कृत-नाटकों में आम अपनाई गई है।

पृष्ठ १४

व्याकरण : भद्रमुखस्य—भद्रं मुखं यस्य सः तस्य। यह आदरपूर्ण उल्लेख अथवा संबोधन का एक प्रकार है ; तु० शाकुन्तल, ७ (पृ० २७०) : 'भद्रमुख, एहि तावत्'। **बहुमानस्य अर्हा**—'कर्तृकर्मणोः कृति', २.३.६५, से बहुमान में कर्म अर्थ में षष्ठी हुई है। **अभिप्रेतप्रदानेन**— अभिप्रेतस्य अभीष्टस्य प्रदानेन; यहाँ 'हेतौ', २.३.२३, से हेतु में तृतीया है। **उपनिमन्त्र्यताम्**—उप नि √मन्त्र् (चुरा० आत्म०), कर्मवाच्य, लोट् प्र०पु० एक०।

विशेष : आत्मीया इदानीं संवृत्ता—वासवदत्ता के 'यह तो अब अपनी हो गई' इस कथन का भाव है : 'अब यह मेरी भाभी लगेगी'। उसे क्या पता था कि वह उसकी सपत्नी के रूप में 'उसकी अपनी' होगी। आगे चलकर उसे यौगन्धरायण की धरोहर के रूप में पाकर पद्मावती भी कहती है : 'आर्या आत्मीया इदानीं संवृत्ता' (पृ० २०)। भाग्य की विडम्बना का यह नाटकीय वर्णन है।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

पृष्ठ १६

व्याकरण : विस्रम्भेण उत्पादितविस्रम्भा—द्र० विनयाद् अपेतपुरुष: (पृ० ६) पर टि० । **अर्थेन**—=अभिप्रेतार्थप्रदानेन;=अभीष्ट वस्तु के प्रदान के लिए; यहाँ हेतु में तृतीया है । **यथानिश्चितम्**—निश्चितं मनोगतम् अनतिक्रम्य इति यथानिश्चितम् अभीष्टं यथा स्यात् तथा (अव्य० स०, क्रियावि०)। **गुरोः देयम्**—संबन्ध मात्र में षष्ठी; तु० 'कस्य दीयताम्' भी । **धर्माभिरामप्रिया**—धर्मः अभिरामः शोभनः प्रियश्च यस्याः सा (बहु० स०); अथवा धर्मेण अभिरामाः शोभनाः ते धर्माभिरामाः (तृ० तत्पु०) तपस्विनः, ते प्रियाः यस्याः सा (बहु० स०)। **समीप्सितम्**—सम् √आप् सन्+क्त; 'आप्ज्ञप्यृधामीत्', ७.४.५५, से आप् के आ को ई । **प्रोषितभर्तृकाम्**—प्रोषितः प्रवासं गतः भर्ता यस्याः सा (बहु० स०) ताम् । यहाँ 'नद्यृतश्च', ५.४.१५३, से ऋकारान्त भर्तृ से कप् हुआ है । **परिपाल्यमानाम्**—परि√पा, णिच्, कर्मवाच्य, शानच्, स्त्री० । **काषायम्**—कषायेण रक्तं वस्त्रं, कषाय+अण्; 'तेन रक्तं रागात्', ४.२.१, से अण् । काषाय का अर्थ लक्षणा से काषाय वस्त्रों से संलक्षित संन्यास-धर्म है । **दृष्टधर्मप्रचारा**—दृष्टः धर्मप्रचारः यया यस्याः वा सा(बहु०स०)। **चारित्रम्**—चरित्र से स्वार्थ में अण् ।

अन्वय (१.८) : कस्य कलशेन अर्थः ? कः वासः यथानिश्चितं मृगयते ? दीक्षां पारितवान् (कः) पुनः किम् इच्छति, यद् गुरोः देयं भवेत् ? धर्माभिरामप्रिया नृपजा इह आत्मानुग्रहम् इच्छति । यद् यस्य समीप्सितम् अस्ति तत् (सः) वदतु —अद्य कस्य किं दीयताम् ?

(१.९) : (मम) कार्यम् अर्थैः न एव, न अपि भोगैः, न वस्त्रैः । अहं वृत्तिहेतोः काषायं न प्रपन्नः । दृष्टधर्मप्रचारा इयं धीरा कन्या मे भगिन्याः चारित्रं रक्षितुं शक्ता ।

विशेष : प्रोषितभर्तृका—'जिसका पति विदेश गया है ऐसी स्त्री' इस सामान्य अर्थ में प्रयुक्त । नायिका-विशेष के लिए भी इस शब्द का प्रयोग होता है; इसकी परिभाषा है : 'नानाकार्यवशाद् यस्या दूरदेशं गतः पतिः । सा मनोभवदुःखार्ता भवेत् प्रोषितभर्तृका ॥' (साद० ३.८४)

कार्यं नैवार्थैः०—बहिन के चरित्र की रक्षा करने में पद्मावती के समर्थ होने में 'धीरा' और 'दृष्टधर्मप्रचारा' इन पदों का अर्थ हेतु अथवा कारण है, अतः यहाँ पदार्थ-हेतुक काव्यलिङ्ग अलंकार है । इसका लक्षण है : 'हेतोर्वाक्यपदार्थत्वे काव्यलिङ्गं निगद्यते' (साद० १०.६२) ।

पृष्ठ १८

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

व्याकरण : व्यपाश्रयणा—वि अप आ √श्रि (बाहुलकाद् भावे) युच्>

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

अन+टाप्>आ;=(वह्नि के) आश्रय के लिए याचना। **प्रतिजानीमः**—'संप्रतिभ्यामनाध्याने', १.३.४६, से यहाँ आत्म० रूप (प्रतिजानीमहे) अपेक्षित था। **सुखम्**—सुखं सुकरं यथा स्यात् तथा (क्रियावि०)। श्लोक के उत्तरार्ध में सुखम् (तथा दुःखम् भी) विशेषण है। **दातुं भवेत्**—यहाँ 'शकधृषज्ञा०', ३.४.६५, से अस्ति के अर्थ में √भू के साथ √दा से तुमुन् हुआ है। यहाँ शक्यः का अध्याहार भी किया जा सकता है : 'अर्थः सुखं दातुं (शक्यः) भवेत्'। तु० 'दुःखं त्यक्तुं बद्धमूलोऽनुरागः' (पृ० ७२)।

अन्वय (१.१०): अर्थः सुखं दातुं भवेत्, प्राणाः सुखं, तपः सुखम्। अन्यत् सर्वं सुखं (दातुम्) भवेत्। न्यासस्य रक्षणं दुःखम्।

विशेष : सुखमर्थो भवेद्०—धन, प्राण तथा तपस्या का फल प्रदान करने से भी कठिन कार्य धरोहर की रक्षा करना है—यह इस श्लोक का भाव है।

पृष्ठ २०

व्याकरण : समर्थितम्—सम्√अर्थ्+क्त;=चिन्तितम्। **भवित्री**—√भू+तृच्, स्त्री०;=होने वाली, अर्थात् होगी। **तत्प्रत्ययात्**—तेषु प्रत्ययात् विश्वासात् (स० तत्पु०)। यहाँ समास नहीं किया जाना चाहिए था; समास करने से यहाँ अविमृष्टविधेयांश दोष आगया है। **सुपरीक्षितानि**—सु परि √ईक्ष्+क्त। **मध्याह्नः**—मध्यम् अह्नः इति। 'पूर्वापराधरोत्तर०', २.२.१, से तत्पु० समास, 'राजाहस्सखिभ्यष्टच्', ५.४.९१, से समासान्त टच्>अ, तथा 'अह्नोऽह्न एतेभ्यः', ५.४.८८, से अहन् के स्थान पर अह्न आदेश। **विश्रमयिष्ये**—वि√श्रम्, णिच्, लृट् उ०पु० एक०; यहाँ णिच् को स्वार्थ में मानना होगा। वस्तुतः यहाँ 'विश्रमिष्यामि' रूप अपेक्षित था।

अन्वय (१.११) : पद्मावती नरपतेः भवित्री महिषी। यैः प्रथमं प्रदिष्टा विपत्तिः अथ (अस्माभिः) दृष्टा तत्प्रत्ययात् इदं कृतम्। विधिः सुपरीक्षितानि सिद्धवाक्यानि उत्क्रम्य न हि गच्छति।

विशेष : आर्या आत्मीया इदानीं संवृत्ता—तु० वासवदत्ता की पद्मावती के संबन्ध में यह उक्ति : 'एषा चात्मीयेदानीं संवृत्ता' (पृ० १४); द्र० उक्त पर टि०। **या ईदृश्यस्या आकृतिः**—आकृतिविशेष के पक्ष में इस प्रकार का पूर्वाग्रह संस्कृत साहित्य में अनेकत्र अभिव्यक्त है; तु० शाकु० पृ० १२०; दशकुमारचरित पृ० १६१। **विश्वासस्थानं भविष्यति**—यौगन्धरायण इस बात से आश्वस्त होता है कि पद्मावती वासवदत्ता के अज्ञातवास के काल में उसके चरित्र की शुद्धि के संबन्ध में उदयन के विश्वास का कारण बनेगी। 'शक्ता चारित्रं रक्षितुं मे भगिन्याः' कहकर वह पहले भी इस संबन्ध में अपनी निश्चिन्तता प्रकट कर चुका है।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

पद्मावती नरपतेः०—पूर्वार्ध में कथित विशेष का उत्तरार्ध में 'न हि सिद्ध०' आदि से अभिव्यक्त सामान्य द्वारा समर्थन होने से यहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार है। लक्षण के लिए द्र० १.४ (पृ० ८) पर टि०। 'न हि सिद्ध०' से भावसाम्य के लिए तु० कुमारसंभव ३.६३ : 'न हीश्वरव्याहृतयः कदाचित्पुष्णन्ति लोके विपरीतमर्थम्'।

पृष्ठ २२

व्याकरण : विस्रब्धम्—वि √स्रम्भ्+क्त; विस्रब्धं विश्वस्तं निःशङ्कं यथा स्यात् तथा (क्रियावि०)। **देशागतप्रत्ययाः**—देशात् परिचितप्रदेशाद् आगतः देशागतः (प० तत्पु०), तादृशः प्रत्ययः येषां ते (बहु० स०)। **पुष्पफलैः समृद्धविटपाः**—द्र० विनयाद् अपेतपुरुषः (पृ० ६) पर टि०। **गोकुलधनानि**—गवां धेनूनां कुलानि वृन्दानि गोकुलानि (ष० तत्पु०), तानि धनानि इव ('उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याप्रयोगे', २.१.५६, से कर्मधा०)। **अक्षेत्रवत्यः**—क्षेत्र+मतुप्, ङीप्; न क्षेत्रवत्यः इति नञ् तत्पु०। **यावत् प्रविशामि**—आसन्नभविष्यत् के अर्थ में 'यावत्पुरानिपातयोर्लट्', ३.३.४, से लट्।

अन्वय (१.१२) : देशागतप्रत्ययाः अचकिताः हरिणाः विस्रब्धं चरन्ति। सर्वे वृक्षाः दयारक्षिताः (अतः च) पुष्पफलैः समृद्धविटपाः। गोकुलधनानि भूयिष्ठं कपिलानि। दिशः अक्षेत्रवत्यः। अयं हि धूमः बह्वाश्रयः। निःसन्दिग्धम् इदं तपोवनम्।

विशेष : विस्रब्धं०—इस पद्य में पूर्वोक्त अनेक वाक्यों के उस प्रदेश के तपोवन होने में हेतु होने से काव्यलिङ्ग अलंकार है (लक्षण के लिए, द्र० १.६ पर टि०)। यहाँ स्वभावोक्ति अलंकार की भी सुन्दर स्थिति है, क्योंकि यहाँ तपोवन के स्वरूप का स्वाभाविक वर्णन है। इस अलंकार का लक्षण है : 'स्वभावोक्तिर्दुरूहार्थस्वक्रियारूपवर्णनम्' (साद० १०.९२)। पद्य की प्रथम पंक्ति से भावसाम्य के लिए तु० शाकु० १.१४ : 'विश्वासोपगमादभिन्नगतयः शब्दं सहन्ते मृगाः।'

सुपरिपालनीयः खलु न्यासः—इसे दो प्रकार से समझा जा सकता है : (१) इस धरोहर की मुझे भलीभांति रक्षा करनी होगी, (२) इस धरोहर की रक्षा करना सरल कार्य है। **पूर्वं प्रविष्टाः स्मः**—अर्थात् आतिथ्यकृत् रूप में अतिथि-सत्कार करना हमारा धर्म है।

पृष्ठ २४

व्याकरण : निवृत्तपरिश्रमः—निवृत्तः परिश्रमः श्रान्तिः यस्य सः (बहु० स०)। **राजगृहतः**—राजगृह+तसिल्>तस्;=राजगृह (मगध की राजधानी) से।
CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

श्रुतिविशेषणार्थम्—श्रुतेः वेदस्य विशेषणम् (specialisation); ष० तत्पु०; तस्मै इदम् इति श्रुतिविशेषणार्थं (च० तत्पु०), तद् यथा स्यात् तथा (क्रियावि०)। वाक्यरचना की दृष्टि से इसे 'तत्र' के बाद रखा जाना चाहिए था। **उषितवान्**—√वस्+ क्तवत्, पुं० प्र० एक०। **अनवसिता**—न अवसिता (अव√सो+क्त, स्त्री०) इति, नञ् तत्पु०; तु० अवसितम् (पृ० २०)। **अभ्यवपत्तुकामः**—अभि अव √पद् तुमुन्, अभ्यवपत्तुं कामः यस्य सः (तु० वक्तुकामा, पृ० ८, पर टि०)।

विशेष : लावाणकम्—वत्सदेश में, संभवतः कौशाम्बी के पास, एक गाँव का नाम, जो उस काल में वेदों के विशेष अध्ययन का केन्द्र रहा होगा।

पृष्ठ २६

व्याकरण : तयोः वियोगजनितसंतापः—(तयोः) वियोगेन जनितः वियोगजनितः (तृ० तत्पु०), तादृशः संतापः यस्य सः (बहु० स०)। तु० विनयाद् अपेतपुरुषः (पृ० ६) पर टि०। **दग्धशेषाणि**—दग्धानि एव शेषाणि (कर्मधा०)। **ध्रियते**—√धृ (तुदा० आत्म०), जीना, लट् प्र०पु० एक०। **महीतलपरिसर्पण-पांसुपाटलशरीरः**—इसका विग्रह इस प्रकार भी किया जा सकता है : महीतले परिसर्पणं महीतलपरिसर्पणं (स० तत्पु०), तेन पांसुपाटलं (पांसुभिः पाटलं, तृ० तत्पु०) शरीरं यस्य सः (बहु० स०)।

अन्वय (१.१३) : इदानीं चक्रवाकाः तादृशाः न एव। स्त्रीविशेषैः वियुक्ताः अन्ये अपि (तादृशाः) न एव। यां भर्ता तथा वेत्ति सा स्त्री धन्या। सा हि दग्धा अपि भर्तृस्नेहात् अदग्धा।

विशेष : आर्यपुत्रस्य मयि सानुक्रोशत्वम्—उदयन के अनुकम्पा भाव अथवा कोमल हृदय की चर्चा आगे, पृ० ३६ पर, भी हुई है। **सकाम इदानीम् आर्ययौगन्धरायणो भवतु**—वासवदत्ता के इन शब्दों को व्यंग्यात्मक अर्थ में भी ग्रहण किया जा सकता है : 'अब देखें यौगन्धरायण अपनी योजना में कैसे सफल होते हैं, क्योंकि अब तो उदयन का (जिनके लिए वे यह सब कर रहे हैं) अपना जीवन संशयापन्न हो गया है'। 'सकामः' के 'सफलमनोरथ' के अर्थ में प्रयोग के लिए, द्र० शाकु० पृ० १३० : काम इदानीं सकामो भवतु। **अथ किम् अथ किम्**—वासवदत्ता के रो पड़ने से रहस्य खुल जाने के डर से यौगन्धरायण उसके रोने का कारण उसकी परदुःख से द्रवित हो जाने की प्रकृति को बताता है। 'अथ किम्' की द्विरुक्ति उसकी यह बात बताने की व्यग्रता को सूचित करती है। **हा प्रिये हा प्रियशिष्ये**—पाँचवें अङ्क (पृ० ९४) में राजा सपने में वासवदत्ता को इन्हीं शब्दों में संबोधित करता है। **चक्रवाक**—चकवा पक्षी आदर्श दाम्पत्य-प्रेम के प्रतीक माने गए हैं। कविसमय के अनुसार, ये दिन में इकट्ठे रहते हैं

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

तथा सूर्यास्त होने पर बिछुड़ जाते हैं और सारी रात विरह में तड़पते रहते हैं। प्रस्तुत पद्य में 'दग्धा अपि अदग्धा' में विरोधाभास अलंकार है। इसका लक्षण है : विरोधः सोऽविरोधेऽपि विरुद्धत्वेन यद् वचः (काव्यप्रकाश १०.११०)।

पृष्ठ २८

व्याकरण : पर्यवस्थापयितुम्—परि अव √स्था, णिच्+तुमुन्। **नृपतिसमदुःखम्**—नृपतिदुःखेन समं दुःखं कष्टं यस्मिन् कर्मणि तत् (बहु० स०), तद् यथा स्यात् तथा (क्रियावि०)। महद्भारम्—यहाँ महाभारम् पाठ अपेक्षित है; महांश्चासौ भारः महाभारः तं महाभारम् (कर्मधा०)। 'आन्महतः समानाधिकरणजातीययोः', ६.३.४६, से यहाँ आकार आदेश अपेक्षित है।

अन्वय (१.१४) : (सः हि) अनाहारे तुल्यः, सततरुदितक्षामवदनः, शरीरे संस्कारं नृपतिसमदुःखं परिवहन्, दिवा वा रात्रौ वा यत्नैः नरपतिं परिचरति। यदि नृपः सद्यः प्राणान् त्यजति, (तत्) तस्य अपि उपरमः (स्यात्)।

(१.१५) : अयं हि (मम) भारः सविश्रमः, तस्य तु श्रमः प्रसक्तः। यत्र नराधिपः अधीनः तस्मिन् हि सर्वम् अधीनम्।

विशेष : भर्तृस्नेहात्सा हि दग्धाप्यदग्धा—छठे अङ्क (पृ० ११४) में काञ्चुकीय का यह कथन इससे तुलनीय है : 'उपरताप्यनुपरता महासेनपुत्री एवमनुकम्प्यमानार्यपुत्रेण'। भावसाम्य के लिए तु० मालतीमाधव, अङ्क ५, पृ० १११ : 'न खलु स उपरतो यस्य वल्लभो जनः स्मरति'। ब्रह्मचारी द्वारा प्रदत्त इस सूचना का नाटकीय प्रयोजन वासवदत्ता को उदयन के संबन्ध में आश्वस्त करना है; तभी वह अपने मन में सोचती है : 'दिष्टया सुनिक्षिप्त इदानीमार्यपुत्रः'। **सविश्रमो ह्ययं भारः**—यौगन्धरायण का भार वासवदत्ता को धरोहर के रूप में सौंपकर हल्का हो गया, परंतु रुमण्वान् को उदयन द्वारा वासवदत्ता की पुनःप्राप्ति तक सयत्न तथा सावधान रहना है, और इस प्रकार अब सब-कुछ उसके यत्न और सावधानी पर ही निर्भर है।

पृष्ठ ३०

व्याकरण : प्रोषितनक्षत्रचन्द्रम्—बहु० स०, विग्रह संस्कृत टीका में देखें। **आपृच्छामि**—'आङि नुप्रच्छ्योः' (वार्त्तिक) से आत्म० अपेक्षित था। **उत्कण्ठिष्यति**—यहाँ उत्कण्ठिष्यते (उद् √कण्ठ्, आत्म०, लृट्) अपेक्षित था। **प्रवेष्टुं समयः**—'कालसमयवेलासु तुमुन्', ३.३.१६७, से समय उपपद के साथ तुमुन्।

विशेष : प्रोषित०—यहाँ मन्त्रिजन तथा राजा क्रमशः नक्षत्र और चन्द्र के उपमेय के रूप में हैं। भास की यह प्रिय उपमा उसके अन्य नाटकों में भी

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

प्रयुक्त है। विशेषतः तु० प्रतिमानाटक ७.१४। **भर्तृदारिके०**—चेटी का यह कथन जनान्तिक उक्ति के रूप में अभिप्रेत है, अतः यहां 'जनान्तिकम्' यह नाट्यनिर्देश अपेक्षित है। इसकी परिभाषा इस प्रकार है : 'त्रिपताककरेणान्यानपवार्यान्तरा कथाम्। अन्योन्यामन्त्रणं यत्स्यात् तज्जनान्ते जनान्तिकम् ॥' अर्थात् अन्य पात्रों के संवाद के बीच में किसी पात्र द्वारा अपनी तीन अंगुलियाँ ऊपर उठाए अपने हाथ से दूसरों की नज़र बचाकर निकटवर्ती किसी पात्र से संभाषण करना जनान्तिक उक्ति है। **मम हृदयेनैव सह मन्त्रितम्**—अर्थात् मेरे मन में भी यही प्रश्न उत्पन्न हो रहा है। **गच्छतु भवान् पुनर्दर्शनाय**—किसी अतिथि या प्रियजन को विदा करते समय सामान्यतः कही जाने वाली उक्ति। इसका प्रयोग भास के अन्य नाटकों में भी अनेकत्र प्राप्त होता है।

पृष्ठ ३२

व्याकरण : **अवगाढः**—अव √ गाह् + क्तः = अवतीर्णः। **संक्षिप्तकिरणः**—संक्षिप्ताः उपसंहृताः किरणाः येन सः (बहु० स०)। **व्यावर्त्य**—वि आ √ वृत्, णिच्, क्त्वा > ल्यप्।

विशेष : **सदृशं भर्तारं लभस्व**—पद्मावती के प्रति तापसी की यह अर्थगर्भित उक्ति नाटकीय महत्त्व रखती है; तु० वासवदत्ता के प्रति उसकी उक्ति : 'त्वमप्यचिरेण भर्तारं समासादय'। **खगा वासोपेताः०**—इस पद्य में सूर्यास्त का सुन्दर वर्णन है। यहां स्वभावोक्ति अलंकार है (लक्षण के लिए द्र० १.१२ पर टि०)। **निष्क्रान्ताः सर्वे**—सभी मञ्च पर से चले जाते हैं। सभी पात्रों के निष्क्रमण से अङ्क की समाप्ति होती है; द्र० अङ्क (पृ० ६) पर टि०।

द्वितीय अङ्क

पृष्ठ ३४

व्याकरण : **अम्मो**—आश्चर्यसूचक निपात। **सपरिवारा**—परिवारेण परिजनेन सहिता।

विशेष : **किं भणसि**—यह आकाशभाषित नामक नाट्योक्ति है। नाटक में मञ्च पर किसी अन्य पात्र की उपस्थिति न होने पर भी, 'तुम क्या कहते हो?' इन शब्दों द्वारा किसी अनुक्त बात को सुनने का अभिनय करने के लिए आकाशभाषित की योजना की जाती है। इसकी परिभाषा इस प्रकार है : 'किं ब्रवीषीति यन्नाट्ये विना पात्रं प्रयुज्यते। श्रुत्वेवानुक्तमप्यर्थं तत्स्यादाकाशभाषितम् ॥' (साद० ६.१४०)

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

कन्दुकेन क्रीडन्ती—कन्दुक-क्रीडा प्राचीन काल में मनोविनोद का एक लोकप्रिय साधन थी। संस्कृत साहित्य में इसका अनेकत्र उल्लेख हुआ है; तु० कुमारसंभव १.२९,५.११,१९, रघुवंश १६.८३, दशकुमारचरित पृ० १५१-५३।

प्रवेशकः—नाटक में अभिनय के अयोग्य घटनाओं को सूचित करने के लिए अपनाए गए युक्ति-विशेष (devices) अर्थोपक्षेपक कहलाते हैं। ये पाँच हैं: विष्कम्भक, प्रवेशक, चूलिका, अङ्कावतार और अङ्कमुख; तु० साद० ६.५४: 'अर्थोपक्षेपकाः पञ्च विष्कम्भकप्रवेशकौ। चूलिकाङ्कावतारोऽथ स्यादङ्कमुखमित्यपि॥' इनमें अङ्क के आदि में आने वाले, भूत एवं भविष्य के कथाभागों को सूचित करने वाले अर्थोपक्षेपक को विष्कम्भक तथा दो अङ्कों के मध्य आने वाले एवं निम्नवर्ग के पात्रों द्वारा संस्कृतेतर (प्राकृत आदि) भाषा में प्रयोजित उक्त प्रकार के अर्थोपक्षेपक को प्रवेशक कहते हैं। प्रवेशक की परिभाषा निम्नलिखित है:

प्रवेशकोऽनुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः।
अङ्कद्वयान्तर्विज्ञेयः शेषं विष्कम्भके यथा॥ (साद० ६.५७)

यहाँ, प्रस्तुत संदर्भ में, कन्दुक-क्रीडा के अनभिनेय होने से उसे सूचित किया गया है। यह सूचना नीच पात्र, चेटी (दासी), द्वारा प्राकृत भाषा में दी गई है, एवं यह दो अङ्कों (प्रथम और द्वितीय) के मध्य में नियोजित की गई है; अतः यह प्रवेशक नामक अर्थोपक्षेपक है।

परकीयौ इव ते हस्तौ संवृत्तौ—अर्थात् (१) तुम्हारे हाथ, अपनी स्वाभाविक अवस्था से भिन्न हो जाने के कारण, मानो पराये-से हो गए हैं, (२) तुम्हारे हाथ अधिक लाल हो जाने से (यहाँ विवाह के अवसर पर मेंहदी से हाथों के रँगे जाने की ओर संकेत है) मानो अब पराये (पति के) हो गए हैं, (३) अनुराग की लाली से रँगे तुम्हारे हाथ अब तुम्हारे अपने नहीं वरन् पराये हो गए हैं।

पृष्ठ ३६

व्याकरण : निर्वर्त्यताम्—निर् √वृत् णिच्, कर्मवाच्य, लोट् प्र०पु० एक०। **बलपरिमाणनिर्वृत्तम्**—बलस्य सैन्यस्य परिमाणेन (महत्या) संख्यया निर्वृत्तं कृतम्। **निध्यायसि**—नि √ध्यै (भ्वा० पर०), लट्;=एकटक देख रही हो।

विशेष : कन्याभावरमणीयः कालः—विवाह-पूर्व स्वच्छन्द बाल्य-जीवन अथवा किशोरावस्था; प्रस्तुत भाव को भास ने प्रतिज्ञायौगन्धरायण (द्वितीय अङ्क) में इस प्रकार व्यक्त किया है: 'क्रीडतु क्रीडतु। नैतत् सुलभं श्वशुरकुले'। **वरमुखम्**—(१) वरं सुन्दरं मुखम्, (२) वरस्य वरयितुः मुखम्;=तुम्हारा वरण करने वाले (पति) का मुख, अथवा (३) वरस्य वरणस्य विवाहस्य मुखम् आरम्भः तम्। **भविष्यन्महासेनवधु**—पद्मावती के प्रति इस संबोधन में चेटी द्वारा पहले

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

प्रदत्त इस सूचना की ओर संकेत है : 'अस्ति राजा प्रद्योतो नामोज्जयिन्याः । स दारकस्य कारणाद् दूतसंपातं करोति' (पृ० १४)। **सानुक्रोश इति**—हृदय की कोमलता के गुण पर ही वासवदत्ता भी मोहित हुई थी। उसके पिता ने भी उदयन में इस मृदु गुण को अंकित किया था : 'ततः सानुक्रोशं मृदुरपि गुणो ह्येष बलवान्' (प्रतिज्ञा० २.४)। द्र० आर्यपुत्रस्य मयि सानुक्रोशत्वम् (पृ० २६) पर टि० भी।

पृष्ठ ३८

व्याकरण : उन्मादितः—उद् √मद् णिच्+क्त। **सौभाग्यम्**—सुभगस्य सुन्दरस्य भावः; सुभग+ष्यञ्। **तस्य प्रतीष्टा**—यहाँ प्रतीष्टा (प्रति √इष्+क्त, स्त्री०) में वर्तमान में, पूजा अर्थ में, क्त तथा उसके योग में 'तस्य' में षष्ठी हुई है; तु० अस्याः अभिप्रेतः (पृ० १०) पर टि०।=अभिनन्दिता अर्थात् स्वीकृता। **उदासीनः**—उद् √आस्+शानच् >आनः 'ईदासः', ७.२.८३, से 'आन' के आ को ई।

विशेष : नहि नहि, दर्शनीय एव—उदयन के प्रति अत्यधिक प्रेम के कारण वासवदत्ता उसके संबन्ध में कोई अशोभन बात नहीं सुन सकती, और अधीरतावश कई बार रहस्य-गोपन रूप अपने कर्तव्य में असावधान हो जाती है। परंतु वह हर बार बड़ी चतुराई से असावधानी में कही गई बात का विश्वासोत्पादक स्पष्टीकरण प्रस्तुत करती है। इसी पृष्ठ पर आगे, धात्री के 'तस्य भर्तृदारिका प्रतीष्टा च' कहने पर उसके मुंह से बरबस 'अत्याहितम्' निकल जाता है, जिसका प्रतिसमाधान करती हुई वह कहती है : 'तथा नाम संतप्योदासीनो भवति इति (अत्याहितम्)'। इसी प्रकार, चतुर्थ अङ्क (पृ० ५६) में पद्मावती के यह पूछने पर कि क्या वासवदत्ता को भी राजा उदयन वैसे ही प्रिय थे जैसे वह मुझे हैं, उसके मुंह से निकल जाता है : 'इससे भी अधिक', और तब वह यह कहकर अपनी बात का प्रतिसमाधान करती है कि यदि वह उसे कम प्रिय होते तो वह उनके लिए अपने बन्धुजनों को न छोड़ती।

समुदाचारः—=शिष्टाचार, उचित मर्यादा (तु० पृ० ५६ भी)। अन्यत्र (पृ० १२४ में) यह उचित व्यवहार के अर्थ में भी प्रयुक्त है। **दत्ता असि**—वाचा दत्ता असि,=तुम्हारा वाग्दान हो गया। **अथ कुशली स राजा ?**—राजा उदयन ने पद्मावती से विवाह करना स्वीकार कर लिया है : यह समाचार वासवदत्ता के लिए एकदम अप्रत्याशित है, क्योंकि कुछ समय पूर्व ही वह अपने वियोग में उसकी चिन्तनीय अवस्था के बारे में सुन चुकी है। दूसरी बात यह है कि आर्यपुत्र का 'पराये' हो जाना उसके लिए असह्य है। तीसरे अङ्क (पृ० ४२) में उसके ये शब्द देखिए : 'अत्याहितम्, आर्यपुत्रोऽपि नाम परकीयः संवृत्तः'।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

पृष्ठ ४०

व्याकरण : सुलभपर्यवस्थानानि—सुलभं सुकरं पर्यवस्थानं विकारपरिहारेण स्वास्थ्यलाभः येषां तानि (बहु० स०); तु० पर्यवस्थापयितुम्, पृ० २८। **अनपराद्धः**—न अपराद्धः (अप√राध् + क्त, कर्ता अर्थ में) इति (नञ् तत्पु०); अथवा न अपराद्धं (भावे क्तः, =अपराधः) यस्य सः (बहु० स०)। **अन्धीकरोति**—अन्ध + च्वि √कृ, लट्; द्र० ग्रामीकरोति (पृ० ६) पर टि०।

विशेष : आगमप्रधानानि०—शास्त्रज्ञान अथवा शास्त्रोपदेश का महापुरुषों के हृदय पर स्वास्थ्यकर प्रभाव पड़ता है, अतः वे सुगमता से अपनी प्राकृत (स्वस्थ) अवस्था को प्राप्त हो जाते हैं। **अभिजनविज्ञानवयोरूपम्**—कुल, विद्या, (विवाहोचित) वय तथा रूप-सौन्दर्य। वरों में अभिवाञ्छित गुणों के लिए द्र० : 'कुलं च शीलं च सनाथता च विद्या च वित्तं च वपुर्वयश्च। एतान् गुणान् सप्त विचिन्त्य देया कन्या बुधैः शेषमचिन्तनीयम् ॥' **शोभनं नक्षत्रम्**—विवाह के लिए शुभ नक्षत्र। ऐसे नक्षत्र ग्यारह हैं (द्र० संस्कृत टीका)। **कौतुकमङ्गलम्**—विवाह-सूत्र बाँधने की मङ्गल क्रिया। इसके अनुष्ठान के अन्तर्गत दूब, यवांकुर, हलदी, कंगन और आम की कोंपल आदि माङ्गलिक द्रव्यों का प्रयोग होता है। कौतुक शब्द, लक्षणा से, विवाह के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है; तु० कौतुकमालिका (पृ० ४४) पर टि०। **हृदयम् अन्धीकरोति**—अर्थात् हृदय को विचारशून्य बना रही है; कोई प्रतिसमाधान नहीं सूझता। 'अन्धीकरोति' लाक्षणिक प्रयोग है।

तृतीय अङ्क

पृष्ठ ४२

व्याकरण : यावद् उपविशामि—आसन्न भविष्यत् के अर्थ में लट्। तु० यावद् उपसर्पामि (इसी पृ० पर)। द्र० यावत् प्रविशामि (पृ० २२) पर टि०। **भागधेयनिर्वृत्तं दुःखम्**—तु० बलपरिमाणनिर्वृतं नामधेयम्, पृ० ३६। **चिन्ताशून्यहृदया**—चिन्तया शून्यं (तु० अन्धीकरोति, पृ० ४०) चिन्ताशून्यं (तृ० तत्पु०), तादृशं हृदयं यस्याः सा (बहु० स०)।

विशेष : आर्यपुत्रोऽपि नाम परकीयः संवृत्तः—यही बात उसे तब साल रही थी जब धात्री के द्वारा 'उन्होंने राजकुमारी का संबन्ध भी स्वीकार कर लिया है' कहे जाने पर एकाएक उसके मुँह से 'अत्याहितम्' यह शब्द निकलता है। यहाँ भी वह 'अत्याहितम्' कहकर 'आर्यपुत्र भी पराये हो गए' कहती है (तु० पृ० ४८ भी)। **धन्या खलु चक्रवाकवधूः**—चक्रवाक के संबन्ध में द्र० १.१३ पर

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

टि० । **आर्यपुत्रं पश्यामीति०**—पुनर्मिलन की आशा विरही हृदय को मरने से रोकती है—इस भाव को मेघदूत (१.९) में इस प्रकार व्यक्त किया गया है : 'आशा-बन्धः कुसुमसदृशं प्रायशो ह्यङ्गनानां सद्यःपाति प्रणयि हृदयं विप्रयोगे रुणद्धि ।।'

पृष्ठ ४४

व्याकरण : महाकुलप्रसूता—महत् कुलं महाकुलं (कर्मधा०); 'आन्महतः समानाधिकरणजातीययोः', ६.३.४६, से आत्व; महाकुले प्रसूता सा (स० तत्पु०)। **मा इदानीम् अन्यद् चिन्तयित्वा**—यहाँ मा के योग में क्त्वा का प्रयोग अपाणि-नीय है । ऐसे प्रयोग भास में अन्यत्र भी हैं; द्र० मा मा भूयोऽवचिन्त्य (पृ० ५४), मेदानीं भवाननर्थं चिन्तयित्वा (पृ० ६८) । **स्नायति**—√स्नै (भ्वा० पर०) 'वस्त्र अथवा प्रसाधन धारण करना', लट्; √स्ना (अदा० पर०) से स्नाति रूप बनता है । **भर्तृदारिकायाः स्नेहेन**— =राजकुमारी के हम पर ('अस्मासु' का अध्याहार करें) स्नेह के कारण ।

विशेष : महाकुलप्रसूता०—वासवदत्ता से माला गुंथवाने के तीन कारण निर्दिष्ट किए गए हैं : उसका उच्च कुल में जन्म, पद्मावती से उसका स्नेह तथा इस प्रकार के गृह-कार्यों में उसकी निपुणता । **कौतुकमालिका**—विवाह के अव-सर पर जयमाला । यहाँ कौतुक विवाह के विस्तारित (extended) अर्थ में है । **अस्माकं भर्तृदारिकायै**—अर्थात् हमारी राजकुमारी द्वारा वर को पहनाने के प्रयो-जन के लिए । **एतदपि मया कर्तव्यमासीत्**—यहाँ भाग्य की विडम्बना का नाट-कीय अंकन है : उसे वह कौतुक-माला तैयार करनी है जो उसके पति को पहनाई जाएगी, परंतु उसकी सपत्नी द्वारा ! उसके इन शब्दों में कितनी विवशता है : 'अहो अकरुणाः खल्वीश्वराः !' **न शक्नोम्यन्यच्चिन्तयितुम्**—चेटी के 'इस समय कोई और बात न सोचें' इस कथन के उत्तर में 'इस समय मैं कोई और बात नहीं सोच सकती'—वासवदत्ता के ये शब्द मार्मिकता से परिपूर्ण हैं । **शर-चापहीनः कामदेवः**—कामदेव प्रेम का देवता होने के साथ-साथ सौन्दर्य की मूर्ति भी है । कामदेव के बाणों के लिए द्र० ४.१ पर टि० ।

पृष्ठ ४६

व्याकरण : परपुरुषसंकीर्तनम्—परः पुरुषः परपुरुषः (कर्मधा०), तस्य संकीर्तनम् (ष० तत्पु०) । **प्रवेश्यते**—प्र √विश् , णिच् , कर्मवाच्य, लट् । **श्रोतुम् अयुक्तम्**—यहाँ युक्त शब्द को अर्ह के अर्थ में मानकर अयुक्त के योग में 'शकधृषज्ञाग्ला०', ३.४.६५, से श्रोतुम् में तुमुन् होगा; तु० 'विषवृक्षोऽपि संवर्ध्य स्वयं छेत्तुमसांप्रतम्' (कुमारसम्भव २.५५) ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

विशेष : अयुक्तं परपुरुष०—वासवदत्ता उदयन के संबन्ध में सुनना तो चाहती है, परंतु उसके गुणों का अधिक श्रवण उसकी विरह-पीड़ा को बढ़ा देता है; अतः वह 'पराये पुरुष की चर्चा सुनना उचित नहीं' कहकर चेटी को उसके बारे में अधिक कहने से रोक देती है। उसके अन्तर्मन में 'आर्यपुत्रोऽपि नाम परकीयः संवृत्तः' यह बात भी गूंज रही है : उदयन अब उसके लिए पराया पुरुष है; अतः उसके बारे में अधिक जिज्ञासा ठीक नहीं है। **उपरता तस्य भार्या**—भाग्य की विडम्बना का यहाँ सुन्दर नाटकीय वर्णन है : वासवदत्ता स्वयं अपने मृत होने की घोषणा कर रही है ! **अविधवाभिः प्रवेश्यते**—सुहागिनी स्त्रियों के ही विवाह जैसे शुभ अवसरों पर वर-वधू के साथ रहने का वर्णन हमें साहित्य में मिलता है; तु० कुमारसंभव ७.६ : 'तस्याः शरीरे प्रतिकर्म चक्रुर्बन्धुस्त्रियो याः पतिपुत्रवत्यः', तथा ७.१२ : 'पतिव्रताभिः परिगृह्य निन्ये क्लृप्तासनं कौतुक-वेदिमध्यम्'।

पृष्ठ ४८

व्याकरण : अविदा—दुःख-सूचक प्राकृत शब्द; =हाय।

चतुर्थ अङ्क

पृष्ठ ५०

व्याकरण : को नाम एतज्जानाति—यहाँ जानाति में लट् का प्रयोग भूत-काल के अर्थ में है। **उन्मङ्क्ष्यामः**—उद् √मज्ज् लृट् उ०पु० बहु०। **उष्यते**— √वस् भाववाच्य, लट्; तु० स्नायते भी। **आमयपरिभूतम्**—आमयेन रोगेण परिभूतं व्याप्तम् (तृ० तत्पु०)। **अकल्यवर्तम्**—न कल्यवर्तः प्रातराशः अशनं वा यस्मिन् तत् (बहु० स०)। कल्ये प्रातःकाले वर्तते इति कल्यवर्तः प्रातराशः। इसके इस अर्थ में प्रयोग के लिए द्र० मृच्छकटिक, अङ्क २।

विशेष : विदूषकः—राजा का नर्मसचिव अथवा परिहासप्रिय मित्र। नाट्य-शास्त्रियों के अनुसार यह नाटक में नायक के प्रेम-संबन्धी मामलों में सलाहकार के रूप में आता है : 'शृङ्गारेऽस्य सहाया विटचेटविदूषकाद्याः स्युः। भक्ता नर्मसु निपुणाः कुपितवधूमानभञ्जनाः शुद्धाः ॥' (साद० ३.४०)। उक्त विट, चेट और विदूषक में से प्रस्तुत नाटक में केवल विदूषक की योजना है। विदूषक की परिभाषा यह है : 'कुसुमवसन्ताद्यभिधः कर्मवपुर्वेषभाषाद्यैः। हास्यकरः कलहरतिर्विदूषकः स्यात् स्वकर्मज्ञः ॥' (साद० ३.४२)। प्रस्तुत नाटक में विदूषक का नाम वसन्तक है। वह अपने कार्यों से तथा अपने (विकृत) शरीर, वेषभूषा और वचन से हास्य उत्पन्न करता है। अपने इस विशिष्ट कर्म को वह भलीभाँति समझता है,

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

यद्यपि वह कलहप्रिय नहीं है । विदूषक की योजना संस्कृत प्रेम-नाटकों की प्रमुख विशेषता है ।

अनप्सरस्संवासः उत्तरकुरुवासः—जम्बुद्वीप के अन्तर्गत नौ वर्षों में से एक वर्ष कुरु अथवा उत्तरकुरु है जिसकी स्थिति मेरु पर्वत के उत्तर में मानी जाती है । साहित्य में यह शाश्वत स्वर्गिक सुखों की भूमि एवं देवों और अप्सराओं के विलास-क्षेत्र के रूप में प्रसिद्ध है । भास द्वारा उसका उल्लेख इसी रूप में है। उसने इसका उल्लेख अविमारक में भी किया है । **वातशोणितम्**—दोषपूर्ण वात तथा दूषित रक्त, अर्थात् गठिया रोग । चरकसंहिता के अनुसार इसका लक्षण है : 'वायुः प्रवृद्धो वृद्धेन रक्तेनावारितः पथि । क्रुद्धः संदूषयेद् रक्तं तज्ज्ञेयं वातशोणितम् ॥'

सुखं नामय०—विदूषक सुख की संकल्पना इस प्रकार करता है : भोजन-पदार्थ पर्याप्त मात्रा में प्राप्त हों, परंतु (कुछ काम न करने पर भी) अपच या रोग का भय न हो । उसे प्रकृति-मधुर-सुकुमार मोदक-खाद्य तो उपलब्ध है, परंतु उसका खाना भलीभाँति नहीं पचता, और 'मुझे गठिया रोग ने घेर लिया है'—इस भय से वह आक्रान्त है ।

पृष्ठ ५२

व्याकरण : अपि स्नातो जामाता ?—यहाँ अपि प्रश्नसूचक निपात के रूप में प्रयुक्त है; तु० शाकु० १, पृ० २० : 'अपि संनिहितोऽत्र कुलपतिः ?'। **भवति**—भवती (भवत् + ङीप्, स्त्री०), संबोधन एक० । **कुसुमिताः**—कुसुम + इतच्; 'तदस्य संजातं तारकादिभ्य इतच्', ५.२.३६, से इतच् । **आचिताः**—आ √चि + क्तः; =व्याप्ताः ।

विशेष : कोकिलानामक्षिपरिवर्तः—वस्तुतः अक्षिपरिवर्त (एक ही पुतली का दोनों अक्षिगोलकों में घूमना) कौवे का होता है, कोयल का नहीं । विदूषक का यह अज्ञान-पूर्ण वचन हास्योत्पादक है । विदूषक की कुक्षि (पेट) के संदर्भ में परिवर्त का अर्थ विकार या मरोड़ होगा ।

प्रवेशकः— इस नाटकीय अर्थोपक्षेपक की परिभाषा के लिए द्र० पृ० १४६ । जैसा कि वहाँ कहा गया है, प्रवेशक में निम्नवर्ग के पात्र आते हैं और वे संस्कृतेतर भाषा में भूत अथवा भविष्य के किसी कथाभाग की सूचना देते हैं । प्रस्तुत प्रवेशक में चेटी निम्नवर्ग की पात्र है, परंतु विदूषक मध्यवर्ग से संबन्ध रखता है । इस दृष्टि से यह मिश्र विष्कम्भक की संकल्पना के अधिक निकट है । इस अर्थोपक्षेपक में नीच एवं मध्यवर्ग से संबन्धित पात्रों की योजना होती है (तु० साद० ६.५८) । प्रस्तुत प्रवेशक में 'विवाह के अनन्तर उदयन मगध की

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

राजधानी में टिके हुए हैं'—इस कथांश की सूचना दी गई है।

प्रवालान्तरितैरिव०—शेफालिका (हरसिङ्गार) के फूल शिशिर ऋतु में खिलते हैं; ये फूल फैलाव की ओर मोतिया रंग के तथा डंडी की ओर लाल रंग के होते हैं। अत एव इनके गुच्छों को बीच-बीच में लाल मूंगों से गुम्फित मोतियों की झालर के समान बताया गया है। चित्रात्मक उपमान-योजना का यह सुन्दर उदाहरण है। आगे चलकर (पृ० ५४ में) इन फूलों को मैनसिल धातु के टुकड़ों (अर्धमनःशिलापट्टक) के समान बताया गया है।

पृष्ठ ५४

व्याकरण : यावत् कुसुमावचयं करोमि—आसन्न भविष्यत् अर्थ में लट्; तु० यावत् प्रविशामि (पृ० २२) पर टि०। (कुसुम-)अवचय के स्थान पर ('हस्तादाने चेरस्तेये', ३.३.४०, से √चि से घञ् होकर) अवचाय होना चाहिए था। **मा मा भूयोऽवचित्य**—यहाँ मा के योग में क्त्वा>ल्यप् (य) का प्रयोग अपाणिनीय है; तु० मा'''चिन्तयित्वा (पृ० ४४) पर टि०। **आर्यपुत्रेण इहागत्य इमां कुसुमसमृद्धिं दृष्ट्वा संमानिता भवेयम्**—यह वाक्यरचना अटपटी है। यहाँ आने, देखने और (संमानित) होने—इन क्रियाओं में प्रथम दो क्रियाओं का कर्ता समान है, परंतु तीसरी क्रिया का कर्ता भिन्न है, 'अतः समानकर्तृकयोः पूर्वकाले', ३.४.२१, से यहाँ प्रथम दो क्रियाओं से क्त्वा व्याकरण-संमत नहीं है। इस वाक्य की रचना इस प्रकार होनी चाहिए : 'आर्यपुत्रेण इहागतेन इमां कुसुमसमृद्धिं दृष्टवता संमानिता भवेयम्' अथवा 'आर्यपुत्रः इहागत्य इमां कुसुमसमृद्धिं प्रेक्षेत चेत्संमानिता भवेयम्'।

विशेष : आर्ये, न जानामि०—पद्मावती उदयन से अपने प्रेम को ध्वन्यात्मक शैली में व्यक्त करती है : 'मैं नहीं जानती। हाँ, आर्यपुत्र के विरह में व्याकुल हो जाती हूं।' चेटी उसके इस उत्तर को, ठीक ही, उसके उच्च कुल के अनुरूप बताती है : 'अभिजातं खलु भर्तृदारिकया मन्त्रितं प्रियो मे भर्ता इति' (पृ० ५६)। **दुष्करं खल्वहं करोमि**—अर्थात् मैं बड़ा कठिन कार्य कर रही हूं जो आर्यपुत्र के विरह में भी जी रही हूं; द्र० उसके शब्द : 'धन्या खलु चक्रवाकवधूः या विरहिता न जीवति। न खल्वहं प्राणान् परित्यजामि।' (पृ० ४२)

पृष्ठ ५६

व्याकरण : अभिजातम्—कुलीनम् उच्चकुलानुरूपं यथा स्यात् तथा (क्रियावि०)। **उक्तो मम आर्यपुत्रः**—मम के स्थान पर यहाँ मम में संबन्ध मात्र की विवक्षा में षष्ठी है। **दाक्षिण्यतया**—इसे 'दक्षिणतया' पढ़ें।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

विशेष : अतोऽप्यधिकम्—वासवदत्ता रहस्य-गोपन रूप अपने कर्तव्य के प्रति पुनः असावधान हो जाती है; वह भूल जाती है कि उसे उदयन के स्वभाव, प्रकृति, रुचि आदि से उसके निकट परिचय की अभिव्यञ्जना करने वाली कोई बात नहीं कहनी चाहिए। वह अनजाने में कह बैठती है : 'इससे भी अधिक (वे वासवदत्ता को प्रिय थे)'। तुरन्त ही वह अपने को संभालती है, और मुंह से भावुकता-वश निकल गई बात (आर्यपुत्रपक्षपातेनातिक्रान्तः समुदाचारः; तु० पृ० ३८ भी) का प्रकारान्तर से चतुरतापूर्ण स्पष्टीकरण देती है : 'यदि अल्पः स्नेहः सा स्वजनं न परित्यजति'। द्र० नहि नहि, दर्शनीय एव (पृ० ३८) पर टि० भी। **दक्षिणतया**—दाक्षिण्य वश अथवा शिष्टाचार वश। अपनी चेष्टा और वाणी से दूसरे के चित्त के अनुवर्तन को दाक्षिण्य कहते हैं : 'दाक्षिण्यं चेष्टया वाचा परचित्तानुवर्तनम्'। पद्मावती के प्रति राजा का एतत्संबन्धी दाक्षिण्य उसके इन शब्दों से भी व्यक्त है : 'इयं बाला नवोद्वाहा सत्यं श्रुत्वा व्यथां व्रजेत्' (पृ० ७६)।

पृष्ठ ५८

व्याकरण : प्रचितप्रतित०—प्रचितम् एकत्र समुदितं यथा स्यात् तथा पतितैः बन्धुजीवकुसुमैः, विरलेन मन्दं मन्दं प्रवहता च वातेन पवनेन रमणीयम्—इस प्रकार भी इसका विग्रह किया जा सकता है। बन्धुजीवकुसुम=दुपहरिया के फूल, जो दोपहर को खिलते हैं। **अयम् आगच्छामि**—'वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद् वा', ३.३.१३१, से लट्। **मयि उज्जयिनीं गते**—'यस्य च भावेन भावलक्षणम्', २.३.३७, से भावलक्षणा सप्तमी। 'मयि कामप्यवस्थां गते' में अधिकरण में सप्तमी है। **पातिताः**— √पत् णिच्+क्त। **पञ्चेषुः**—पञ्च इषवः यस्य सः (बहु० स०)।

अन्वय (४.१) : मयि उज्जयिनीं गते तदा (च) अवन्तिराजतनयां स्वैरं दृष्ट्वा काम् अपि अवस्थां गते (मयि) कामेन पञ्च इषवः पातिताः। तैः मम हृदयम् अद्य अपि सशल्यम् (अस्ति)। भूयः च वयं विद्धाः। यदा मदनः पञ्चेषुः (तर्हि तेन) अयं षष्ठः शरः कथं पातितः?

विशेष : पञ्च इषवः—अरविन्द (कमल अथवा रक्तकमल), अशोक, आम्र-मञ्जरी, नवमल्लिका और नीलकमल—ये पाँच फूल कामदेव के बाण माने गए हैं। कामदेव को, इसी हेतु, पञ्चबाण अथवा पञ्चेषु कहा जाता है। अन्य दृष्टिकोण से काम के पाँच बाण हैं उन्मादन, तापन, शोषण, स्तम्भन तथा संमोहन; द्र० संस्कृत टीका। **विद्धाः वयम्**—यहाँ वचन का विपर्यास (एकवचन के स्थान पर बहु० का प्रयोग) उक्ति-चमत्कार का कारण है; तु० शाकु० १.२१ : 'वयं तत्त्वा-

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

न्वेषान्मधुकर हतास्त्वं खलु कृती'। षष्ठः शरः—उदयन के कहने का अभिप्राय है कि कामदेव ने अपने सभी (पाँचों) बाण पहले ही, वासवदत्ता के निमित्त, छोड़ दिए थे और वे सभी बाण उसके हृदय में गड़े हुए हैं (तैः हृदयं सशल्यम्)। तब यह छठा बाण, जो उसने मुझपर पद्मावती के निमित्त छोड़ा है, कहाँ से आया ? यहाँ यह ध्वनित होता है कि वासवदत्ता के प्रति उसका प्रेम पूर्ववत् परिपूर्ण तथा अक्षुण्ण है; वह पद्मावती के प्रति उसके नवोदित प्रेम से अप्रभावित है। इसके अतिरिक्त यह भी यहाँ ध्वनित होता है कि वासवदत्ता के प्रति उसका प्रेम, पद्मावती से उसके प्रेम की तुलना में, कहीं अधिक प्रगाढ़ है : वासवदत्ता के निमित्त काम ने उस पर पाँच बाणों से प्रहार किया था, परंतु पद्मावती के निमित्त केवल एक बाण से। इस संबन्ध में वसन्तक के समक्ष उसकी अपनी स्वीकारोक्ति इस प्रकार है : 'पद्मावती बहुमता मम यद्यपि रूपशीलमाधुर्यैः। वासवदत्ताबद्धं न तु तावन्मे मनो हरति ॥' (पृ० ६८)। पद्मावती के पूछने पर कि आर्यपुत्र जैसे मुझे प्रिय हैं वैसे ही क्या वे वासवदत्ता को भी थे, वासवदत्ता का 'इससे भी अधिक' यह उत्तर भी (पृ० ५६) यहाँ द्रष्टव्य है। तु० संस्कृत टीका भी।

व्याघ्रचर्मावगुण्ठितम् इव—असन (विजयसार) के फूलों से आच्छादित शिलापट्ट ऐसा प्रतीत होता है मानो वह बाघम्बर से ढँका हुआ हो। यहाँ उत्प्रेक्षा अलङ्कार है। इस अलंकार का लक्षण है : 'संभावना स्यादुत्प्रेक्षा वस्तुहेतुफलात्मना' (कुवलया० ३२)।

पृष्ठ ६०

व्याकरण : समाहितम्—=संघटितं धीरं वा यथा स्यात् तथा (क्रियावि०); =सटे हुए अथवा अस्खलित रूप में। सम् आ √धा + क्त। **नतोन्नताम्**—नता च उन्नता च (कर्मधा०) ताम्। **सप्तर्षिवंशकुटिलाम्**—सप्त ऋषयः इति सप्तर्षयः ('दिक्संख्ये संज्ञायाम्', २.१.५०, से कर्मधा०), तेषां वंशः (ष० तत्पु०), सः इव कुटिला ('उपमानानि सामान्यवचनैः', २.१.५५, से कर्मधा०), ताम्।

अन्वय (४.२) : ऋज्वायतां च विरलां च नतोन्नतां च, निवर्तनेषु च सप्तर्षिवंशकुटिलाम्, निर्मुच्यमान-भुजगोदर निर्मलस्य अम्बरतलस्य विभज्यमानां सीमाम् इव (च) (एनां पश्यामि)।

विशेष : प्रसारितबलदेवबाहुदर्शनीयाम्—सारसपंक्ति को यहाँ बलराम की फैली हुई बाँहों के समान कहा गया है। यह उपमान-योजना भास की बलराम के प्रति विशेष ... सूचित करती है। नाटक के मङ्गलाचरण-पद्य में भी भास ने बलराम की भुजाओं के प्रति अपनी आस्था व्यक्त की है; तु० उक्त पद्य

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

पर टि० । यहाँ उपमा अलंकार है । उपमा का लक्षण है : 'साम्यं वाच्यमवैधर्म्यं वाक्यैक्य उपमा द्वयोः' (साद० १०.१४) । आगे चलकर सारसपंक्ति की तुलना सप्तर्षिमण्डल (The Ursa Major) से तथा श्वेत कमलों की पंक्ति से की गई है : प्रथम से कुटिलता (टेढ़ेपन) में तथा दूसरे से धवलता में । इन सभी स्थलों पर उपमा के समासगत होने से समासगा उपमा है । **सीमामिव०**—सारसपंक्ति को आकाश की बँटती हुई सीमा-सी प्रतीत होने वाली कहा गया है ; यहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार की स्थिति है । वस्तुतः यहाँ 'अम्बरतलस्य सीमामिव विभाजयमानाम्' अर्थात् 'आकाश की सीमा-सी विभाजित करती प्रतीत होने वाली' होना चाहिए । **निर्मुच्यमान०**—स्वच्छ गगनतल की उपमा केंचुरी छोड़ते हुए साँप के उदर से दी गई है । यह उपमा यथार्थ होती हुई भी अपरूप है । प्रस्तुत श्लोक में उपमा और उत्प्रेक्षा के अतिरिक्त स्वभावोक्ति अलंकार भी है (लक्षण के लिए, द्र० १.१२ पर टि०) ।

पृष्ठ ६२

व्याकरण : तव कारणात्—'निमित्तपर्यायप्रयोगे सर्वासां प्रायदर्शनम्' (वार्त्तिक) से कारण से पञ्चमी विभक्ति हुई है । **प्रतीक्षिष्यावहे**—प्रति √ईक्ष् लृट् उ०पु० द्वि० । **कर्तुकामः**—कर्तुं कामः यस्य सः (बहु० स०); तु० वक्तुकामा (पृ० ८) पर टि० ।

विशेष : तव कारणात्०—अर्थात् चूंकि तुम मेरे साथ हो और तुम पराये पुरुष के दर्शन का परिहार करती हो; तु० पृ० २२ : 'अम्मो, परपुरुषदर्शनं परिहरत्यार्या' । जहाँ तक पद्मावती का संबन्ध है, वह उदयन से मिलने को उत्सुक है, जैसा कि वह स्वयं कहती है : 'आर्यपुत्रेण विरहितोत्कण्ठिता भवामि' (पृ० ५४) । प्रस्तुत प्रसंग में कहे गए उसके शब्दों ('तव कारणात्' आदि) से भी, परोक्षतः, उदयन से मिलने की उसकी उत्सुकता सूचित होती है ।

शरत्कालतीक्ष्णः दुस्सह आतपः—शरद् ऋतु (सितम्बर-अक्तूबर) के सूर्य की धूप की असह्यता का वर्णन साहित्य में अन्यत्र भी मिलता है; तु० प्रियदर्शिका, अङ्क ३, पृ० ४० : 'अधिकं खलु शरदातपेन संतप्तान्यद्यापि न मेऽङ्गानि संतापं मुञ्चन्ति' । नागानन्द, अङ्क २, पृ० २६ : 'शरदातपजनित इव मे संतापोऽधिकतरं बाधते' । **सर्वमाकुलं कर्तुकामः आर्यवसन्तकः**—=वसन्तक (इस समय आर्यपुत्र के दर्शन के परिहार के लिए किए जा रहे) सकल (प्रयत्न) को व्यर्थ करने पर तुला हुआ है ।

पृष्ठ ६४

व्याकरण : अविह अविह—'अविधा अविधा' समीचीन रूप है । 'बचाओ

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

बचाओ' इस भाव को व्यक्त करने के लिए प्रयुक्त निपात। **दास्याःपुत्रैः**—दास्याः पुत्राः तैः (तत्पु०); आक्रोश (गाली देने) के अर्थ में 'पुत्रेऽन्यतरस्याम्', ६.३.२२, से षष्ठी का अलुक्। **विषण्णाः**—वि √सद्+क्त; =दुःखी, व्यथित। **आसिष्यावहे**—√आस् (अदा० आत्म०), 'बैठना', लृट् उ०पु० द्वि०।

अन्वय (४.३) : मधुमदकलाः मदनार्ताभिः प्रियाभिः उपगूढाः मधुकराः पादन्यासविषण्णाः वयम् इव कान्ता-वियुक्ताः स्युः।

विशेष : वयमिव कान्तावियुक्ताः—नवोढा पत्नी से युक्त होते हुए भी उदयन स्वयं को कान्ता से वियुक्त कहता है; स्पष्टतः कान्ता से उसका अभिप्राय प्रेयसी है, पत्नी नहीं। पद्मावती उसकी पत्नी है, प्रेयसी नहीं। उसकी प्रेयसी होने का गौरव वासवदत्ता को ही प्राप्त है; पद्मावती उसका स्थान नहीं ले सकती। स्वयं उदयन कहता है : 'वासवदत्ताबद्धं न तु तावन्मे मनो हरति' (४.५)। भौंरों की व्यथा से उदयन की सहानुभूति उसके अनुक्रोश अथवा परदुःखकारता (तु० पृ० २६, ३६) का अन्यतम प्रमाण है। प्रस्तुत पद्य में उपमा अलंकार है। लक्षण के लिए, द्र० प्रसारितबलदेव० (पृ० ६०) पर टि०।

पृष्ठ ६६

व्याकरण : सोष्म—ऊष्मणा सहितम् (बहु० स०)। **प्रकृतिस्थशरीरः**—प्रकृतिस्थं स्वस्थं शरीरं यस्य सः (बहु० स०)। **बहुमानसंकटे**—बहुमानः (पत्नी-द्वयविषयकः) आदरातिशयः, तस्य तदभिव्यक्तेः तदभिव्यक्तिरूपः वा संकटः तस्मिन्, अथवा बहु मानं परिमाणं यस्य सः बहुमानः (बहु० स०) गुरुपरिमाणः, तादृशः संकटः इति (कर्मधा०) तस्मिन्; अर्थात् (१) दोनों पत्नियों में से किसके प्रति अधिक आदर अथवा स्नेह है, इसका कथन करने रूप संकट में, या (२) बहुत भारी संकट में। **न्यस्यति**—नि √अस् (दिवा० पर०), 'फेंकना', लट्। अगले वाक्य में इसी अर्थ में नि √क्षिप् (निक्षिप्तः) का प्रयोग हुआ है।

अन्वय (४.४) : पुष्पाणि पादाक्रान्तानि, इदं च शिलातलं सोष्म। नूनं काचिद् इह आसीना (आसीद् या) मां दृष्ट्वा सहसा गता।

विशेष : पादाक्रान्तानि०—यह श्लोक नाटक की मूल पाण्डुलिपि में नहीं मिलता। रामचन्द्र-गुणचन्द्र रचित नाट्यदर्पण में यह निम्नलिखित उपोद्घात-वाक्य के साथ उद्धृत है : 'यथा भासकृते स्वप्नवासवदत्ते शेफालिकामण्डपशिला-तलम् अवलोक्य वत्सराजः'—। इस पद्य में शिलातल की ऊष्मा वहाँ किसी के बैठने का तथा फूलों की पादाक्रान्तता वहाँ से उसके जाने का लिङ्ग है एवं उत्तरार्ध में उस पर आधारित अनुमान है, अतः अनुमान अलंकार है। इस अलंकार का लक्षण है : 'अनुमानं तु विच्छित्त्या ज्ञानं साध्यस्य साधनात्' (सा० द० १०.६३)।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

दिष्ट्या प्रकृतिस्थशरीर आर्यपुत्रः—जबसे ब्रह्मचारी से उदयन की करुण दशा का समाचार विदित हुआ था, तब से वासवदत्ता उनके संबन्ध में चिन्तित थी। वह उनका कुशल समाचार जानने को सदा उत्सुक रहती थी; तु० पृ० ३८ : 'अथ कुशली स राजा ?' यहाँ अपने प्रिय को स्वस्थ और कुशल देखकर वह आश्वस्त होती है। आनन्दाश्रु से उसकी आँखें भर जाती हैं, जिसे पास खड़ी चेटी लक्षित करती है : 'साश्रुपाता खलु आर्याया दृष्टिः'। **काशकुसुमरेणुना०**—वासवदत्ता चतुरतापूर्वक अपने आंसुओं के वास्तविक कारण को छिपाती है। वह अपनी आँखों को 'साश्रुपात' न कहकर 'सोदक' (=जलयुक्त) कहती है तथा विश्वासोत्पादक बहाना प्रस्तुत करती है : '(चेटी द्वारा संत्रासित) भौंरों के अविनय से कांस के फूलों की धूल उड़कर मेरी आँखों में पड़ गई है, इस लिए आँख में यह जल भर आया'। आगे चलकर, लगभग ऐसी ही परिस्थिति में उदयन भी अपनी आँखों में अश्रुजल का कारण काशपुष्प की धूलि को बताता है : 'काशपुष्पलवेनेदं साश्रुपातं मुखं मम' (पृ० ७६)। विरह में दोनों की समान मानसिक स्थिति का भास ने सुन्दर तथा मार्मिक चित्रण किया है।

यादृशे संकटे—यहाँ वाक्य स्पष्टतः अधूरा है; पद्मावती संभवतः आगे कहना चाहती है : 'तादृशं पश्य'। यह भी संभव है कि यहाँ शुद्ध पाठ 'कीदृशे संकटे' हो।

पृष्ठ ६८

व्याकरण : सत्येन शपामि—यहाँ सत्य में 'हेतौ', २.३.२३, से तृतीया हुई है। यहां सत्य शपथ का हेतु है; तु० मध्यमव्यायोग, ४१ : 'शपामि सत्येन भयं न जाने'। तु० आगे इसी पृष्ठ पर : 'वयस्यभावेन शापितोऽसि'। **कस्मै अपि न आख्यास्ये**—यहाँ 'क्रियया यमभिप्रैति सोऽपि संप्रदानम्' (वार्त्तिक) से संप्रदान की स्थिति मानकर 'कस्मै' में चतुर्थी हुई है। **आख्यास्ये**—आ √चक्ष् >ख्या लृट् उ०पु० एक०। तु० अनाख्याय (नञ् > अन्, आ √चक्ष् > ख्या + क्त्वा > ल्यप्)। **मम बहुमता**—वर्तमान में बुद्धि (=समझना) अर्थ में क्त और उसके योग में षष्ठी (द्र० अस्याः अभिप्रेतः, (बहु, √मन + क्त, स्त्री०), पृ० १०, पर टि०। **रूपशीलमाधुर्यैः**—रूपं च शीलं च माधुर्यं च (द्वन्द्व स०), तैः। हेतु में तृतीया।

अन्वय (४.५) : यद्यपि पद्मावती रूपशीलमाधुर्यैः मम बहुमता, न तु (सा) तावद् वासवदत्ताबद्धं मे मनः हरति।

विशेष : अहं च मन्दभागा—वासवदत्ता अपने-आपको भी संकट में निक्षिप्त समझती है। इन शब्दों में उसकी मानसिक हलचल का मनोवैज्ञानिक

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

अंकन है। उसके कोमल और दुःखी हृदय की गहरी प्रतिक्रियाएँ उसके स्वगत-भाषणों में यथार्थ अभिव्यक्ति पा सकी हैं। **न खलु न खलु ब्रूयाम्**—उदयन कुछ नहीं कहना चाहता, विशेषतः विदूषक के सामने, क्योंकि वह बातूनी (मुखर) है, उसके पेट में बात नहीं पचती। इससे यह स्पष्ट है कि विदूषक के प्रश्न का वह क्या उत्तर देना चाहता है; उसका उत्तर स्पष्टतः पद्मावती के विपक्ष में है। पद्मावती, जो पास ही माधवी लतामण्डप के अन्दर से सारी बात सुन रही होती है, उदयन के उत्तर को समझ जाती है; वह कहती है : 'आर्यपुत्र ने इतने से अर्थात् अपनी कहने की अनिच्छा व्यक्त करके सब-कुछ कह दिया (एतावता भणितमार्यपुत्रेण)'। परंतु विदूषक की मोटी बुद्धि इस बात को नहीं पकड़ पाती। राजा इस संबन्ध में अपना अभिप्राय विदूषक के सामने पहले भी व्यक्त कर चुका है, परंतु व्यङ्ग्य रूप में ही, वाच्य रूप में नहीं। वह पहले कह चुका है : 'तैरद्यापि सशल्यमेव हृदयम्' (पृ० ५८) तथा 'वयमिव कान्तावियुक्ताः स्युः' (पृ० ६४)। विदूषक वाच्य अर्थ को ही पकड़ सकता है, अतः वह उदयन से बार-बार अपने प्रश्न के उत्तर के लिए आग्रह करता है। **एषा संदष्टा मे जिह्वा**—यह 'लो, मैंने अपनी जबान बन्द कर ली' इस अर्थ में मुहावरा है; यहाँ सम् √दंश् भलीभाँति दबाने या बन्द करने के अर्थ में है। **अस्य पुरोभागिता**—अर्थात् इसका हठ अथवा आग्रह। पुरोभागिता (पुरस् भाग, णिनि>इन्, तल् >ता) का मूल अर्थ है : सबसे पहले अपना भाग ग्रहण करने की चेष्टा, सर्वत्र अपने-आपको महत्त्व देना। गौणवृत्त्या इसके अर्थ हैं : ईर्ष्या, दोषैकदृष्टि, हठ, आग्रह, (बच्चों के समान) मचलना। प्रस्तुत प्रसंग में यह हठ अथवा मचलने के अर्थ में है।

पृष्ठ ७०

व्याकरण : किं मे विप्रलपितेन ?—यहाँ गम्यमान क्रिया (सेत्स्यति,=सिद्ध होगा) के योग में करण में तृतीया है। 'गम्यमानापि क्रिया कारकविभक्तीनां निमित्तम्' (वार्तिक) के अनुसार यहाँ गम्यमान क्रिया कारकविभक्ति का कारण है। **वैधेय**—विधेयस्य विधानस्य (=सेवावृत्तेः) अयम् अधिकारी इति, विधेय+अण् >अ ('तस्येदम्', ४.३.१२०, से); =मूर्ख। **महाब्राह्मणः**—व्यंगपूर्ण अथवा उपहासपूर्ण रूप में 'श्रेष्ठ ब्राह्मण' के अर्थ में प्रयुक्त। उत्तरवर्ती युग में यह निकृष्ट ब्राह्मण के अर्थ में प्रयुक्त है (तु० मृच्छकटिक १.४२–गद्य, मालविकाग्निमित्र २.१०–गद्य आदि)। **अभिधीयताम्**—अभि √धा, कर्म०, लोट् प्र० पु० एक०। **अकोपना**—न कोपना (नञ् तत्पु०); कोपना में √कुप् से 'क्रुधमण्डार्थेभ्यश्च', ३.२.१५१, से युच् हुआ है; कोपन+टाप् (स्त्री०)। **प्रत्युद्-**

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

गच्छति—प्रति उद् √गम्, 'अगवानी करना', लट्।

विशेष : दत्तं वेतनमस्य परिखेदस्य—परिखेद अथवा कष्ट के रूप में यहाँ अभिप्रेत है पति-वियोग, अनिर्ज्ञात होने से यदा-कदा अवमान (तु० पृ० ८), पति का परकीय बन जाना (पृ० ४२,४८) अर्थात् उसका दूसरा विवाह, तथा अपने मन और वाणी पर नियन्त्रण। इस परिखेद का वेतन है पति के मुख से अपने लिए व्यक्त निश्छल प्रेमोद्गार, जिसमें चाटुता का लेश भी नहीं (क्योंकि उदयन की दृष्टि में वह वहाँ अनुपस्थित अथवा वस्तुतः मृत है)। इसीलिए वह कहती है : 'अज्ञातवासोऽप्यत्र बहुगुणः संपद्यते'। आगे (पृ० ७२ पर) वह कहती है : 'प्रियं नाम ईदृशं वचनमप्रत्यक्षं श्रूयते'। **अदाक्षिण्यः खलु भर्ता**—चेटी की दृष्टि में उदयन द्वारा वासवदत्ता के प्रति इस प्रकार प्रेमातिशय की अभिव्यक्ति एवं फलतः पद्मावती के प्रति अनादर-भाव उचित नहीं है, अतः वह उसे दाक्षिण्य-रहित कहती है। पद्मावती की दृष्टि में यह राजा का दाक्षिण्य है कि वह वासवदत्ता के गुणों को नहीं भूला है : 'सदाक्षिण्य एवार्यपुत्रः, य इदानीमप्यार्याया वासवदत्ताया गुणान् स्मरति'। पद्मावती की यह दृष्टि उसके उच्च कुल के अनुरूप है; वासवदत्ता उसके इस गुण को पहचानती है : 'अभिजनस्य सदृशं मन्त्रितम्'। राजा के दाक्षिण्य का दूसरा पहलू है वासवदत्ता के गुणों को स्मरण करते हुए भी पद्मावती के सामने अपने भावोद्वेग पर नियन्त्रण रखना; तु० पद्मावती : 'तर्कयाम्यार्याया वासवदत्ताया गुणान् स्मृत्वा दक्षिणतया ममाग्रतो न रोदितीति' (पृ० ५६)। राजा के दाक्षिण्य का यह पहलू उसके अपने शब्दों में इस प्रकार व्यक्त है : 'इयं बाला नवोद्वाहा सत्यं श्रुत्वा व्यथां व्रजेत्' (पृ० ७६)।

तत्रभवती पद्मावती०—विदूषक अपने चरित्र और प्रकृति के अनुरूप पद्मावती के प्रति अधिक आदरभाव प्रकट करता है; वह उसके तारुण्य, सौन्दर्य, मधुर तथा दाक्षिण्य-पूर्ण व्यवहार, अपने प्रति उसके आतिथेय-भाव एवं उसके चरित्र में क्रोध और अभिमान के अभाव—इन गुणों की चर्चा करता है, जब कि वासवदत्ता के संबन्ध में 'तत्रभवती वासवदत्ता मे बहुमता' इतना ही कहकर रह जाता है।

पृष्ठ ७२

व्याकरण : अविहा—'अविधा' समीचीन रूप है; 'हा' के अर्थ में शोक अथवा विषाद का अभिव्यञ्जक निपात। तु० 'वचाओ' के अर्थ में पृ० ६४। **विसंवादितः**—वि सम् √वद्, णिच् + क्त। =प्रतिहतः, प्रतिरुद्धः। इस अर्थ में इसके प्रयोग के लिए तु० शाकु० ६.१२—गद्य : 'रमणीयः खल्ववधिर्विधिना विसंवादितः'। **धारयतु**—√धृ (चुरा० उभय०), लोट्। **अनतिक्रमणीयः**—न

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

अतिक्रमणीयः (अति √क्रम्+अनीय), नञ् तत्पु० । **अनुरागः दुःखं त्यक्तुम्**—यहाँ 'शक्यः' का अध्याहार करके 'शकधृषज्ञाग्ला०', ३.४.६५, से त्यक्तुम् में तुमुन् करना होगा । दुःखम् (दुष्करं यथा स्यात् तथा) यहाँ क्रियावि० है । **स्मृत्वा स्मृत्वा याति दुःखं नवत्वम्**—यहाँ स्मृत्वा में क्त्वा का प्रयोग व्याकरण-संमत नहीं है । 'समानकर्तृकयोः पूर्वकाले', ३.४.२१, से पूर्वकालिक और उत्तरकालिक क्रियाओं के कर्ता के अभिन्न होने पर ही पूर्वकालिक क्रिया वाली धातु से क्त्वा होता है, परंतु यहाँ 'याद करना' क्रिया का कर्ता मनुष्य है और 'ताज़ा होना' क्रिया का कर्ता दुःख है । यही दोष पद्य के उत्तरार्ध में भी है (तु० उक्त पर टि०)। स्मृत्वा की द्विरुक्ति आभीक्ष्ण्य अर्थ में 'नित्यवीप्सयोः', ८.१.४, से हुई है ।

अन्वय (४.६) : त्वया अनेन परिहासेन मे मनः व्याक्षिप्तम् । ततः पूर्वाभ्यासेन तथा एव इयं (मे) वाणी निस्सृता ।

(४.७) : बद्धमूलः अनुरागः दुःखं त्यक्तुं (शक्यः) । स्मृत्वा स्मृत्वा दुःखं नवत्वं याति । यात्रा तु एषा यद् इह बाष्पं विमुच्य प्राप्तानृण्या बुद्धिः प्रसादं याति ।

विशेष : सर्वमेतत् कथयिष्ये०—विदूषक की वासवदत्ता संबन्धी बातों से उदयन का मन बरबस अतीत में चला जाता है, तथा पूर्वाभ्यास वश अनायास ही उसके मुँह से उक्त शब्द निकल पड़ते हैं; यही बात वह, विदूषक के शब्दों से पुनः वर्तमान में आने पर, 'अनेन परिहासेन' इत्यादि शब्दों द्वारा कहता है । **रमणीयः कथायोगः**—अर्थात् वार्तालाप का सुन्दर क्रम । प्रस्तुत वाक्य में नृशंस शब्द निष्ठुर विधाता का भी व्यञ्जक हो सकता है, जिसने कि उदयन-वासवदत्ता के सुन्दर कथा-प्रसङ्ग को बीच में ही तोड़ दिया ।

प्रियं नामेदृशं वचनमप्रत्यक्षं श्रूयते—प्रिय द्वारा प्रत्यक्ष में कहे गए प्रिय वचन चाटूक्ति रूप भी हो सकते हैं, परंतु अप्रत्यक्ष में, विशेषतः मृत्यु के बाद, कहे गए वचनों की निश्छलता संदेहातीत है । वासवदत्ता इस संबन्ध में अपना हर्षातिरेक पहले भी व्यक्त कर चुकी है : 'दत्तं वेतनमस्य परिखेदस्य । अहो, अज्ञातवासोऽप्यत्र बहुगुणः संपद्यते ।' (पृ० ७०)

अनतिक्रमणीयो हि विधिः—विधि अथवा भाग्य की अलङ्घ्यता का वर्णन संस्कृत साहित्य में अनेकत्र हुआ है; तु० 'नियतिः केन लङ्घ्यते' (काव्यादर्श २.१७२) । 'विधिरहो बलवानिति मे मतिः' (पञ्चतन्त्र २.२२) ।

पृष्ठ ७४

व्याकरण : बाष्पं विमुच्य बुद्धिः प्रसादं याति—यहाँ विमुच्य में क्त्वा > ल्यप् का प्रयोग व्याकरण-संमत नहीं है (तु० स्मृत्वा स्मृत्वा, पृ० ७२, पर टि०)। **प्राप्तानृण्या**—प्राप्तम् आनृण्यं यया सा (बहु० स०) । **आनृण्यम्**—अविद्यमानम्

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

ऋणं यस्य सः अनृणः (बहु० स०), तस्य भावः आनृण्यम्; अनृण+('गुण-वचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च', ५.१.१२४, से) ष्यञ् । **बाष्पाकुलपटान्तरितम्**—बाष्पेन आकुलं (तृ० तत्पु०), पटेन च अन्तरितम् (तृ० तत्पु०), बाष्पाकुलं च पटान्तरितं च इति (मयूरव्यंसकादित्व से तत्पु०), अथवा बाष्पाकुलः यः पटः (कर्मधा०), तेन अन्तरितम् (तृ० तत्पु०)।

विशेष : यात्रा त्वेषा०—यहाँ यात्रा लोकयात्रा अथवा लोकव्यवहार के अर्थ में है । इन पंक्तियों में मानव-मनोविज्ञान का सुन्दर अंकन है । मनुष्य आँसू बहाकर, ऋणमुक्त व्यक्ति के समान, मानसिक प्रसाद प्राप्त कर लेता है, उसका मन हल्का हो जाता है । भवभूति ने इस मनोवैज्ञानिक सत्य को इन शब्दों में व्यक्त किया है : 'पूरोत्पीडे तडागस्य परीवाहः प्रतिक्रिया । शोकक्षोभे च हृदयं प्रलापैरेव धार्यते ॥' (उत्तररामचरित ३.२६) । **उत्कण्ठितं भर्तारम्०**—उत्कण्ठित हुए उदयन के लिए वासवदत्ता की चिन्ता स्वाभाविक है, परंतु यह भाग्य की विडम्बना है कि उदयन उत्कण्ठित उसके अपने लिए है और उसे धीरज बँधाने वह भेजती है पद्मावती को । स्वयं वह उदयन की आँखों के बाष्पाकुल और पटान्तरित होने का लाभ उठाकर वहां से धीरे से निकल जाती है; उसकी मनोव्यथा यहाँ शब्दोक्त न होकर व्यङ्ग्य है । **एतद् इदम्, इदम् एतत्**—विदूषक के ये शब्द घबराहट में भी उसके प्रत्युत्पन्नमतित्व के सूचक हैं; इन शब्दों से वह वाक्छल द्वारा पद्मावती के 'किमेतत् ?' प्रश्न का चतुर उत्तर देता है : 'यह यह (अर्थात् पानी) है, यह (पानी) है यह' । आगे वह, कुछ सोचने का समय पाकर, इस मुखोदक के लाने का विश्वासोत्पादक कारण प्रस्तुत करता है (पृ० ७६) ।

पृष्ठ ७६

व्याकरण : आस्यताम्— √आस्, भाव में यक्, लोट्, प्र०पु० एक० । **आज्ञापयति**—आ √ज्ञा, णिच्, लट् । **शरच्छशाङ्कगौरेण**—शरदः शशाङ्कः शरच्छशाङ्कः (ष० तत्पु०), सः इव गौरः (कर्मधा०) तेन । **वाताविद्धेन**—वातेन आविद्धः (आ √व्यध्+क्त) तेन वाताविद्धेन (तृ० तत्पु०) । **भामिनि**—भामिनी, संबोधन एक० । भामिनी यहाँ 'कोपना' के विशिष्ट अर्थ में न होकर, 'कामिनी या रमणी' के साधारण अर्थ में है, क्योंकि यहाँ पद्मावती कोपयुक्त अथवा मानवती के रूप में संभावित नहीं की गई है । **नवोद्वाहा**—नवः उद्वाहः यस्याः सा (बहु० स०) । **कामम्**—'यद्यपि', 'चाहे' के अर्थ में निपात, अथवा 'अत्यन्त' (क्रियावि०) । **धीरस्वभावा**—धीरः स्वभावः यस्याः सा (बहु० स०) । **स्त्रीस्वभावः**—स्त्रियाः स्वभावः (ष० तत्पु०) ।

अन्वय (४८) : भामिनि, वाताविद्धेन शरच्छशाङ्कगौरेण काशपुष्पलवेन

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

इदं मम मुखं साश्रुपातम् ।

(४.६) : इयं बाला नवोद्वाहा, (इयं) सत्यं श्रुत्वा व्यथां व्रजेत् । कामम् इयं धीरस्वभावा, (परं) स्त्रीस्वभावः तु कातरः (भवति) ।

विशेष : सदाक्षिण्यस्य जनस्य०—यहाँ उदयन और उसके परिजन-भूत विदूषक का दाक्षिण्य इस बात में है कि वे पद्मावती के सामने वासवदत्ता-विषयक उत्कण्ठा की बात छिपा लेते हैं, ताकि उसके कोमल हृदय को ठेस न पहुंचे । उदयन के दाक्षिण्य के इस पक्ष की चर्चा पद्मावती पहले कर चुकी है : 'आर्याया वासवदत्ताया गुणान् स्मृत्वा दक्षिणतया ममाग्रतो न रोदिति' (पृ० ५६) । तु० 'अदाक्षिण्यः खलु भर्ता' (पृ० ७०) पर टि० भी । राजा के दाक्षिण्य का यह रूप अनुपद आने वाले पद्य, इयं बाला इत्यादि, में भलीभाँति प्रकट है ।

अपवार्य—यह नाट्य-निर्देश राजा की उक्ति के 'अपवारित' होने का सूचक है । अपवारित नामक नाट्योक्ति वहाँ होती है जहाँ कोई पात्र थोड़ा परे हटकर किसी अन्य पात्र को कोई गोपनीय बात कहता है; तु० साद० ६.१३८ : 'तद् भवेदपवारितम् । रहस्यं तु यदन्यस्य परावृत्य प्रकाश्यते ॥'

शरच्छशाङ्क०—इस पद्य को वामन ने काव्यालङ्कारसूत्रवृत्ति (४.३.२५) में, कुछ परिवर्तन (शरच्चन्द्रांशु–, –मुखं कृतम्) के साथ, व्याजोक्ति अलंकार के उदाहरण के रूप में उद्धृत किया है । असत्य को सत्य के रूप में उपस्थापित करना व्याजोक्ति है : 'व्याजस्य सत्यसारूप्यं व्याजोक्तिः' (वामन) । दण्डी (२. २६५-६६) के अनुसार यहाँ लेश अलंकार है, जिसे उसने इस पद्य से उदाहृत किया है : 'आनन्दाश्रु प्रवृत्तं मे कथं दृष्ट्वैव कन्यकाम् । अक्षि मे पुष्परजसा वातोद्धूतेन दूषितम् ॥' दण्डी का यह पद्य आंशिक रूप में भास के पद्य से तुलनीय है । विश्वनाथ (साद० १०.९२) के अनुसार व्याजोक्ति का लक्षण है : 'व्याजोक्तिर्गोपनं व्याजादुद्भिन्नस्यापि वस्तुनः ॥' 'शरच्छशाङ्कगौरेण काशपुष्पलवेन' में समासगा उपमा है; तु० 'प्रसारितबलदेवबाहुदर्शनीयाम्' (पृ० ६०) पर टि० ।

इयं बाला०—पद्मावती का नवविवाहित तथा अप्रौढ होना रूप अर्थ उसके व्यथित हो सकने के हेतु के रूप में उपन्यस्त है, अतः यहाँ काव्यलिङ्ग अलंकार है (लक्षण के लिए, द्र० कार्यं नैवार्थैः०, पृ० १६, पर टि०) । 'इयं नवोद्वाहा बाला सत्यं श्रुत्वा व्यथां व्रजेत्'—इस प्रकार अन्वय करने पर, 'नवोद्वाहा' विशेषण के साभिप्राय होने से, यहाँ परिकर अलंकार होगा (लक्षण के लिए द्र० धीरस्याश्रम०, पृ० ६, पर टि०) । पूर्वार्ध में कथित विशेष का 'स्त्रीस्वभावस्तु कातरः' इस सामान्य से समर्थन होने से यहाँ अर्थान्तरन्यास भी है (लक्षण के लिए, द्र० पूर्वं त्वया०, पृ० ८, पर टि०) । **स्त्रीस्वभावस्तु कातरः**—स्त्री-स्वभाव

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

की कातरता से अभिप्राय उसका बहुत जल्दी घबरा जाने या डर जाने का स्वभाव है। इसे अधीरता अथवा भीरुता भी कहा जा सकता है।

पृष्ठ ७८

व्याकरण : मगधराजस्य सुहृज्जनदर्शनम्—यहाँ मगधराज में कर्ता अर्थ में 'कर्तृकर्मणोः कृति', २.३.६५, से कृद्योगलक्षणा षष्ठी हुई है (=मगधराज-कर्तृकं सुहृज्जनदर्शनम्)। **अपराह्णकाले**—द्र० मध्याह्नः (पृ० २०) पर टि०। **प्रतीष्टः**—समानभावेन स्वीकृतः अथवा प्रत्यर्पितः। प्रति √इष्+क्त। तु० प्रतीष्टा, पृ० ३८, पर टि०।

अन्वय (४.१०) : विशालानां वा गुणानां सत्काराणां च कर्तारः लोके नित्यशः सुलभाः, विज्ञातारः तु दुर्लभाः।

विशेष : प्रथमः कल्पः—अर्थात् श्रेष्ठ प्रस्ताव है। भास के नाटकों में तथा अन्यत्र भी यह अनेकत्र प्रयुक्त है। तु० मालविकाग्निमित्र १.१२–गद्य, शाकु० ५.२१–गद्य (उदारः कल्पः)। **गुणानां वा०**—इस पद्य में दो बातें कही गई हैं : गुणी सुलभ हैं, परंतु गुणग्राही जन दुर्लभ हैं; और, सत्कार करने वाले सुलभ हैं, परंतु सत्कार को मानने वाले अर्थात् प्रतिसत्कार करने वाले दुर्लभ हैं। इनमें से दूसरी बात प्रस्तुत है, पहली बात आनुषङ्गिक होने से अप्रस्तुत। यहाँ दोनों का सुलभत्व-दुर्लभत्व रूप समान धर्म से अभिसंबन्ध वर्णित होने से दीपक अलंकार है। इसका लक्षण है : 'अप्रस्तुतप्रस्तुतयोर्दीपकं तु निगद्यते' (साद० १०.४८)। यदि समस्त श्लोक के भाव को अप्रस्तुत मानें, तो उससे राजा दर्शक और उसके मित्रजन से संबद्ध प्रस्तुत की प्रतीति मानने पर यहाँ अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार होगा (लक्षण : 'अप्रस्तुतप्रशंसा स्यात् सा यत्र प्रस्तुताश्रया'—कुव-लया० ६६)। पद्य में कथित बात का (सत्कार से संबन्धित) दूसरा अंश विदूषक की इस उक्ति का प्रकारान्तर से आख्यान है : 'सत्कारो हि नाम सत्कारेण प्रतीष्टः प्रीतिमुत्पादयति', अर्थात् सत्कार सत्कार द्वारा प्रत्युत्तरित अथवा प्रत्यर्पित होकर प्रेमभाव को जन्म देता है।

पञ्चम अङ्क

पृष्ठ ८०

व्याकरण : शब्दापय— √शब्द् (चुरा० उभय०), णिच् लोट् म०पु० एक०; =बुलवाओ। **विनोदयति**—वि √तुद्, णिच्, लट्;=अपाकरोति। वर्तमान के आसन्नवर्ती भविष्यत् में लट्। **निवेदय**—नि √विद् (अदा० पर०), णिच्, लोट्। तु० निवेदयितव्यम्, पृ० ८२।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

विशेष : समुद्रगृहक—प्रमदवन के अन्तर्गत, जलयन्त्रों (फव्वारों) से शीतल, संभवतः दीर्घिका के पास स्थित, भवन। रोग अथवा मानसिक दुःख की स्थिति में राजपरिवार के सदस्य यहां आकर विश्राम करते थे। समुद्रगृह का उल्लेख भास ने प्रतिमानाटक में भी किया है। और भी तु० मालविकाग्निमित्र ४.६–गद्य: 'समुद्रगृहे सखीसहितां मालविकां स्थापयित्वा भवन्तं प्रत्युद्गतोऽस्मि'। हारावली (द्र० संस्कृत टीका) के अनुसार, समुद्रगृह जलयन्त्रों का गृह है।

पृष्ठ ८२

व्याकरण : पद्मावतीपाणिग्रहणसमीरितस्य—पद्मावत्याः पाणिग्रहणम् (ष० तत्पु०), तेन समीरितस्य संक्षोभितस्य (तृ० तत्पु०); यह 'वत्सराजस्य' का विशेषण है। सी० आर० देवधर के संस्करण में '–समीर्यमाणः' पाठ है, जो समीचीन है। अर्थ होगा : 'पद्मावतीपाणिग्रहणेन तद्रूपपवनेन समीर्यमाणः संधुक्ष्यमाणः (मदनाग्निदाहः)'। अथवा 'मदनाग्नेः दाहः' पाठ मानकर '–समीरितस्य' को 'मदनाग्नेः' का विशेषण माना जा सकता है—पद्मावतीपाणिग्रहणेन समीरितस्य संधुक्षितस्य मदनाग्नेः दाहः। **समीरित**— सम् √ईर् + क्त। **त्वरयामि**— √त्वर्, णिच्, लट्। णिच् के अभाव में तु० त्वरते (पृ० ४०), त्वरताम् (पृ० ८४)। **पुनरागतदारभारः**—पुनः आगतः दारभारः (दाराणां भारः—ष० तत्पु०) यम् सः (बहु० स०)। दार (=स्त्री) शब्द पुंलिङ्ग है तथा नित्य बहुवचन में प्रयुक्त होता है।

अन्वय (५.१) : कालक्रमेण पुनरागतदारभारः (अहं) लावाणके हुतवहेन हृताङ्गयष्टिं तां श्लाघ्याम् अवन्तिनृपतेः सदृशीं तनूजां हिमहतां पद्मिनीम् इव चिन्तयामि।

विशेष : प्रवेशकः—यह प्रवेशक (परिभाषा के लिए, तु० पृ० ३४ पर टि०) भी चतुर्थ अङ्क के आरम्भ में आने वाले प्रवेशक की भाँति मिश्रविष्कम्भक की संकल्पना के अधिक निकट है (द्र० पृ० ५२ पर टि०)। **–दारभार**—यहाँ भार शब्द इस बात की व्यञ्जना करता है कि उदयन ने परिस्थितियों से विवश होकर पद्मावती से विवाह किया था और इस प्रकार यह विवाह उसके लिए भाररूप था। यही कारण है कि वह अपनी पूर्व पत्नी के विषय में ही चिन्तामग्न है। **श्लाघ्यामवन्ति०**—द्वितीय विवाह के फलस्वरूप उदयन को पूर्व प्रेयसी से संबन्धित दुःख का अभाव अपेक्षित था, परंतु वह नहीं हुआ। अतः कारण के होने पर भी दुःख-अभाव रूप कार्य के न होने का वर्णन होने से यहाँ विशेषोक्ति अलंकार है। इसका लक्षण है : 'सति हेतौ फलाभावो विशेषोक्तिस्तथा द्विधा' (साद० १०.६७)। **हिमहतां पद्मिनीम् इव चिन्तयामि**—यहाँ 'चिन्तयामि' को 'मन्ये'

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

(मानता हूँ, मानो) के अर्थ में ग्रहण करके उत्प्रेक्षा अलंकार मानना चाहिए। इसका लक्षण है : 'संभावना स्यादुत्प्रेक्षा वस्तुहेतुफलात्मना' (कुवलया० ३२)। 'चिन्तयामि' को 'स्मरामि' के अर्थ में मानने पर यहां उपमा अलंकार होगा। उपमान के रूप में हिमहता पद्मिनी का उल्लेख साहित्य में अन्यत्र भी हुआ है; तु० मेघदूत २.२३ : 'जातां मन्ये शिशिरमथितां पद्मिनीं वान्यरूपाम्'। रघु० ८.४५ : 'हिमसेकविपत्तिरत्र मे नलिनी पूर्वनिदर्शनं मता'। परंतु प्रस्तुत प्रसङ्ग में अग्निदग्ध वासवदत्ता के लिए हिमहत पद्मिनी की उपमान के रूप में योजना औचित्यपूर्ण नहीं है।

पृष्ठ ८४

व्याकरण : हुतवहेन हृताङ्गयष्टिम्—(हुतवहेन) हृता अङ्गयष्टिः यस्याः सा (बहु० स०), ताम्। यह 'सापेक्षत्वेऽपि गमकत्वात्समासः' का उदाहरण है: तु० विनयाद् अपेतपुरुषः (पृ० ६) पर टि०। अङ्गयष्टि में 'अङ्गं यष्टिः इव' इस विग्रह से, 'उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याप्रयोगे', २.१.५६, से उपमित कर्मधा० है। **गुणतः युक्ताम्**—यहाँ गुण से तृतीया विभक्ति के अर्थ में तसि प्रत्यय है (यद्यपि यह व्याकरण-संमत नहीं है)। **पूर्वाभिघातसरुजः**—पूर्वः अभिघातः पूर्वाभिघातः (कर्मधा०), तेन सरुक् (रुजा सहितः इति सरुक्) पूर्वाभिघात-सरुक् (तृ० तत्पु०), तस्य। **समर्थयामि**—सम् √अर्थ् (चुरा० उभय०), लट् उ०पु० एक० में परस्मै० रूप। इस ('विचार करने' के) अर्थ में प्रायः आत्मने० रूप प्रयुक्त होता है; तु० 'समर्थये यत्प्रथमं प्रियां प्रति' (विक्रमोर्वशीय ४.६८)।

अन्वय (५.२) : रूपश्रिया समुदितां गुणतः च युक्तां प्रियां लब्ध्वा पूर्वाभिघातसरुजः अपि मम शोकः अद्य मन्दः इव। (परम्) अनुभूतदुःखः (अहं) पद्मावतीम् अपि तथा एव समर्थयामि।

विशेष : रूपश्रिया०—यहाँ शोक की मन्दता के प्रति रूपवती और गुणसंपन्न पत्नी की प्राप्ति हेतु है तथा पद्मावती के संबन्ध में अनिष्ट की संभावना के प्रति वासवदत्ता की मृत्यु रूप विपत्ति की पूर्व अनुभूति हेतु है। अतः यहाँ काव्यलिङ्ग अलंकार है—पहली स्थिति में वाक्यार्थहेतुक तथा दूसरी में पदार्थहेतुक। लक्षण के लिए, द्र० १.६ (पृ० १६) पर टि०। प्रस्तुत पद्य में 'पूर्वाभिघात-सरुजः' यह विशेषण अपने विशेष्य 'मम' से दूर जा पड़ा है; वाक्यरचना की दृष्टि से यह दूरान्वय दोष है।

पृष्ठ ८६

व्याकरण : काकोदरः—काकस्य उदरम् इव उदरं यस्य सः =सांप। तु० अमरकोश : 'कुण्डली गूढपाच्चक्षुःश्रवाः काकोदरः फणी'। **सर्पव्यक्तिः**—सर्पस्य

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

व्यक्तिः ज्ञानम्; =सर्प का (भ्रान्तिपूर्ण) ज्ञान। **वैधेयस्य**—इस अवसर पर विदूषक के लिए वैधेय शब्द का प्रयोग नितान्त उपयुक्त है। इसकी व्युत्पत्ति के लिए, द्र० वैधेय (पृ० ७०) पर टि०। **तथास्तृतसमा**—तथा यथापूर्वम् आस्तृता तथा-स्तृता, तादृशी च असौ समा च। मयूरव्यंसकादित्व से तत्पु०। तथा को पृथक् पद मानकर आस्तृतसमा को ही समस्त पद मानना भी ठीक है। **शिरोपधानम्**—शिरस्य उपधानम् (ष० तत्पु०)। शिरसः उपधानम्—ऐसा विग्रह करने पर पृषो-दरादि में इसका ग्रहण करके इसे उपपन्न करना होगा।

अन्वय (५.३) : मूर्ख, (त्वं) क्षितौ भ्रष्टाम् ऋज्वायतां मुखतोरणलोलमालां हि सर्पम् अवगच्छसि, या निशि मन्दानिलेन परिवर्तमाना भुजगस्य विचेष्टितानि किंचित् करोति।

(५.४) : शय्या अवनता न, तथास्तृतसमा, व्याकुलप्रच्छदा न। अमलं शिरोपधानं शीर्षाभिघातौषधैः क्लिष्टं न हि। रोगे दृष्टिविलोभनं जनयितुं काचित् शोभा न कृता। प्राणी रुजा शयनं प्राप्य पुनः स्वयं (तद्) शीघ्रं न मुञ्चति।

विशेष : ऋज्वायताम्—इस विशेषण का प्रयोग इससे पूर्व लेखक ने सारस-पंक्ति के लिए भी किया है (तु० पृ० ६०)। **मुखतोरण**—मुखरूप अर्थात् मुख्य तोरण (=प्रवेशद्वार)। समुद्गृह के मुख्य प्रवेशद्वार के लिए मुखतोरण शब्द आया है। मांगलिक अवसरों पर प्रवेशद्वारों को फूलों की माला आदि से सजाया जाता था। **ऋज्वायतां हि०**—यहाँ भ्रान्तिमान् अलंकार है। इसका लक्षण है: 'साम्यादतस्मिंस्तद्बुद्धिर्भ्रान्तिमान् प्रतिभोत्थितः' (साद० १०.३६)। हवा में हिलती माला के वस्तुरूप और क्रिया के वर्णन में स्वभावोक्ति अलंकार की भी स्थिति है (लक्षण के लिए, द्र० १.१२, पृ० २२, पर टि०)। **पद्मावती इहागत्य निर्गता भवेत्**—यह वाक्य विदूषक अन्य अवसर पर पहले भी (पृ० ६२ पर) कहता है; यह पद्मावती के प्रति उसके विशेष आदरभाव (तु० पृ० ७०: 'तत्रभवती पद्मावती तरुणी दर्शनीया······') का सूचक है। **शीर्षाभिघातौषधैः**—शीर्षा-भिघातस्य शिरोवेदनायाः औषधैः। अभिघात का प्रयोग भास ने पहले (पृ० ८४ पर) कुछ भिन्न ('दुःख या विपत्ति रूप आघात') अर्थ में किया है।

शय्या नावनता०—यहाँ बिछौने के दबे न होने आदि से पद्मावती के समुद्र-गृह में न आने का अनुमान किया गया है; अतः यहाँ अनुमान अलंकार है। लक्षण के लिए, द्र० ४.४ (पृ० ६६) पर टि०। शय्या के वस्तुरूप के स्वाभा-विक वर्णन में स्वभावोक्ति अलंकार की भी सुन्दर स्थिति है।

पृष्ठ ८८

व्याकरण : मुहूर्तकम् उपविश्य—यहाँ मुहूर्तकम् में 'कालाध्वनोरत्यन्त-संयोगे', २.३.५, से काल के अत्यन्त संयोग में द्वितीया हुई है; तु० मुहूर्तकं

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

प्रतिपालयतु, पृ० ६० । **अवन्त्याधिपतेः**—अवन्त्याः अधिपतिः (ष० तत्पु०), तस्य । यहाँ 'अवन्त्यधिपतेः' यह रूप अपेक्षित था । 'अवन्त्याधिपतेः' रूप अशुद्ध है, फिर भी इसको 'अवन्त्याः आ समन्ताद् अधिपतिः तस्य' अथवा 'अवन्त्या (हेतौ तृतीया) अधिपतिः तस्य'—इन व्याख्याओं के आधार पर शुद्ध माना जा सकता है । **अवन्त्याधिपतेः सुतायाः स्मरामि**—यहाँ 'अधीगर्थदयेशां कर्मणि', २.३.५२, से स्मरणक्रिया के कर्म में, उसकी शेषत्व-विवक्षा में, षष्ठी विभक्ति है । 'स्वजनं स्मरन्त्याः' में उक्त कर्म में द्वितीया ही रखी गई है ।

अन्वय (५.५) : प्रस्थानकाले स्वजनं स्मरन्त्याः प्रवृत्तं नयनान्तलग्नं बाष्पं स्नेहाद् मम एव उरसि पातयन्त्याः अवन्त्याधिपतेः सुतायाः स्मरामि ।

विशेष : उदकस्नानानि—जलस्नानप्रदेशाः । 'उदकस्थानानि' यह पाठ यहाँ अपेक्षित है । श्री भिडे द्वारा स्वीकृत 'उदयज्ञानानि' पाठ अर्थ की दृष्टि से क्लिष्ट-कल्पनापेक्षी है । इसका अर्थ होगा : 'उदय(न) संबन्धी चिह्न अथवा स्मारक अवशेष' । **स्मराम्यवन्त्या०**—इस पद्य में उज्जयिनी का नाम सुनने से वासवदत्ता के स्मरण का वर्णन होने से स्मरण अलंकार है । इसका लक्षण है : 'सदृशानुभवाद् वस्तुस्मृतिः स्मरणमुच्यते' (साद० १०.२७) । **प्रस्थानकाले**—अर्थात् उदयन के साथ उज्जयिनी को छोड़कर कौशाम्बी के लिए प्रस्थान करते समय, उदयन के प्रेम के लिए स्वजनों को छोड़ते समय । इसका उल्लेख पहले आवन्तिका (वासवदत्ता) के इन शब्दों में हुआ है : 'यद्यल्पः स्नेहः सा स्वजनं न परित्यजति' (पृ० ५६) । उदयन संबन्धी कथा के इस अंश का वर्णन प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण में हुआ है । **स्नेहात्**—इसका संबन्ध 'प्रवृत्तं' के साथ भी जोड़ा जा सकता है : 'स्नेहात् प्रवृत्तं बाष्पं' । इस स्थिति में यहाँ स्नेह से अभिप्राय स्वजन-स्नेह होगा, अन्यथा स्नेह यहाँ प्रेम के अर्थ में है । प्रेम के अर्थ में स्नेह के प्रयोग के लिए, द्र० शाकु० ४.१७ : 'त्वय्यस्याः कथमप्यबान्धवकृतां स्नेह-प्रवृत्तिं च ताम्' । तु० विक्रमोर्वशीय २.४ भी ।

पृष्ठ ९०

व्याकरण : आकाशवादितम्—आकाशे वादितम् (स० तत्पु०) । वादितम् में √वद् णिच् से 'नपुंसके भावे क्तः', ३.३.११४, से भाव अर्थ में क्त हुआ है । **सुप्तोऽत्रभवान्**—यहाँ सुप्तः में 'गत्यर्थाकर्मकश्लिष०', ३.४.७२, से कर्ता में क्त हुआ है; तु० प्रतिबुद्धोऽत्रभवान् (पृ० ९६) भी ।

अन्वय (५.६) : उपदेशेषु माम् ईक्षमाणया यया बहुशः स्रस्तकोणेन हस्तेन आकाशवादितं कृतम् (तस्याः स्मरामि) ।

विशेष : बहुशोऽप्युपदेशेषु०—इस पद्य में भी पूर्व पद्य की भाँति स्मरण अलंकार है । विवाह से पूर्व, उदयन के उज्जयिनी-निवास के काल में वासवदत्ता

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

उदयन से वीणा सीखती थी। यहाँ उदयन के उपदेशों से अभिप्राय उसके द्वारा वासवदत्ता को वीणा बजाने की शिक्षा देना है। इसी संबन्ध से उदयन वासवदत्ता को 'प्रियशिष्या' कहता है (पृ० २६, ६४)। वीणा-शिक्षण काल में ही दोनों के बीच अनुराग अंकुरित और पल्लवित हुआ था। **कोण**—वीणा आदि वाद्यों के बजाने के लिए प्रयुक्त मिजराब को कोण अथवा सारिका कहते हैं। **आकाशवादितम्**—अनुरागवश उदयन को एकटक देखते-देखते उस पर ही ध्यान के केन्द्रित हो जाने के कारण वासवदत्ता को हाथ में से मिजराब के खिसक जाने का भी पता न लगता था और वह वीणा-वादन में ध्यान न होते हुए भी केवल अभ्यासवश आकाश अर्थात् शून्य में ही अपना हाथ चलाती रहती थी। यही उसका 'आकाशवादित' था।

काम्पिल्यम्—यह दक्षिण पाञ्चाल की राजधानी का नाम है। आज यह फर्रुखाबाद ज़िले में कांपिल नामक ग्राम है। **ओष्ठगतं करिष्यामि**—अर्थात् बार-बार बोल-बोलकर ज़बान पर चढ़ाता हूँ। **अतिशीतलेयं वेला**—उदयन के सारा शरीर ढँककर सोने की स्वाभाविकता बताने के लिए यहाँ नाटककार ने अत्यन्त शीतल वेला का पूर्वोल्लेख किया है। उदयन के इसी स्थिति में सोने के कारण ही वासवदत्ता को 'यह पद्मावती सोई है' ऐसा भ्रम हुआ था।

पृष्ठ ९२

व्याकरण : प्रह्लादितम्—प्र √ह्लाद्+क्त। **एकदेशसंविभागतया**—एकदेशस्य संविभागः पृथक् परिकल्पनं, तस्य भावः एकदेशसंविभागता तया। यहाँ हेतु में तृतीया है। **स्वप्नायते**—स्वप्नवान् भवति इस अर्थ में 'भृशादिभ्यो भुव्यच्वेर्लोपश्च हलः', ३.१.१२, से क्यङ् होने पर लट् में रूप। वस्तुतः 'उत्स्वप्नायते' यह समीचीन रूप है : उत्स्वप्नः (स्वप्नं दृष्टवान्) भवति इति, उक्त सूत्र से क्यङ्।

विशेष : अकरुणाः खल्वीश्वरा मे—वासवदत्ता पद्मावती की अस्वस्थता को भी अपने भाग्य की प्रतिकूलता मानती है, क्योंकि पद्मावती उसके अपने वियोग में व्याकुल राजा का इस समय एकमात्र 'विश्रमस्थान' (=दुःखविनोदन द्वारा मानसिक शान्ति का कारण) है। अपने भाग्य की निष्ठुरता का कथन वासवदत्ता पहले भी (पृ० ४४ पर) इन्हीं शब्दों में करती है। **दीपसहायां कृत्वा**—=दीपक के सहारे अर्थात् अकेली छोड़कर। इस वाक्यांश द्वारा रात्रि के आरम्भ की सूचना भी मिलती है। दीपक के मन्द प्रकाश में सिर से पैर तक चादर ओढ़कर सो रहे उदयन को पद्मावती समझ लेने के भ्रम की स्वाभाविकता का सुन्दर नाटकीय संकेतन यहाँ हुआ है। **किं नु खलु एतया सहोपविशन्त्याः०**—यहाँ वासवदत्ता के

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

अन्तःकरण अथवा अवचेतन मन की स्वतःप्रेरित प्रतिक्रिया का नाटकीय वर्णन है। मन की ऐसी प्रतिक्रियाओं को ही कालिदास ने 'अन्तःकरणप्रवृत्तयः' (शाकु० १.२०) कहा है और संदेह के अवसरों पर इन्हें प्रमाणभूत माना है : 'सतां हि संदेहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः'। **हा वासवदत्ते**—राजा स्वप्न में वासवदत्ता को उन्हीं शब्दों में संबोधित करता है जो शब्द उसके मुंह से आग में जल जाने से उसकी मृत्यु का समाचार सुनकर शोकावेश में निकले थे : 'हा वासवदत्ते, हा अवन्तिराजपुत्रि, हा प्रिये, हा प्रियशिष्ये' (पृ० २६)। 'हा अवन्तिराजपुत्रि' आदि संबोधनों के लिए, द्र० पृ० ६४। यहाँ से आरम्भ होने वाला स्वप्न-दृश्य ही 'स्वप्नवासवदत्त' नाम का आधार है; द्र० पृ० १३०-३१।

पृष्ठ ६४

व्याकरण : मुहूर्तकं स्थित्वा—'मुहूर्तकम्' में अत्यन्त संयोग में द्वितीया है; द्र० मुहूर्तकम् उपविश्य (पृ० ८८) पर टि०। **प्रसादयामि**—प्र √सद्, णिच्, लट्। **आरोप्य**—आ √रुह् णिच्, +क्त्वा>ल्यप्। **व्यक्तम्**—व्यक्तं (वि √अञ्ज्+क्त) स्फुटं यथा स्यात् तथा (क्रियावि०)। **भूतार्थः**—भूतः अर्थः इति (कर्मधा०)।

अन्वय (५.७) : संभ्रमेण निष्क्रामन् अहं द्वारपक्षेण ताडितः। ततः अयं भूतार्थः मनोरथः (वा इति) व्यक्तं न जानामि।

विशेष : महान् खल्वार्ययौगन्धरायणस्य०—अपने स्वामी उदयन के खोए गए राज्य की पुनः प्राप्ति यौगन्धरायण की प्रतिज्ञा थी। मगधराज दर्शक से सैन्य सहायता प्राप्त करने के लिए पद्मावती से उसका विवाह संपन्न कराना उक्त प्रतिज्ञा की दिशा में एक प्रयत्न था जिसमें वह वासवदत्ता की मृत्यु का समाचार फैलाकर सफल हो गया है। परंतु चूंकि उदयन अभी मगध राज्य में ही है और दर्शक का अतिथि है, अतः वासवदत्ता का अज्ञात स्थिति में रहना अनिवार्य है। वासवदत्ता समझती है कि वह उदयन द्वारा देख ली गई है, और इस प्रकार यौगन्धरायण की प्रतिज्ञा अब, रहस्य के खुल जाने से, अधूरी ही रह जाएगी। **इतः परं किम्?**—इसकी दो प्रकार से व्याख्या की जा सकती है : (१) मेरे अलंकार धारण न करने का 'मैं दुःखित हूँ' इससे अन्य क्या कारण हो सकता है?, (२) तुम्हारे वियोग में इससे अधिक प्रसाधन क्या धारण कर सकती हूं?

विरचिका—उदयन अपने अवचेतन मन में वासवदत्ता के अलंकृत न होने का कारण विरचिका संबन्धी उसके ईर्ष्याभाव को समझता है। विरचिका उदयन के अन्तःपुर की एक परिचारिका थी। उदयन का उसके साथ प्रणय-संबन्ध था। एक बार वासवदत्ता के लिए उसके मुंह से विरचिका संबोधन-पद निकल गया।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

तब कुपित वासवदत्ता को उसने उसके पैरों में पड़कर प्रसन्न किया। इस घटना का संक्षिप्त वर्णन कथासरित्सागर में मिलता है। उदयन के अवचेतन मन में इस समय विरचिका से अपने गुप्त संबन्ध से कुपित वासवदत्ता का चित्र घूम रहा होता है; इसी चित्र का वह स्वप्न में साक्षात्कार करता है।

भूतार्थोऽयं मनोरथः—इसकी व्याख्या दो प्रकार से की जा सकती है : (१) यह भूतार्थ (सत्य) था (अथवा) मनोरथ मात्र था—यह मैं स्पष्ट नहीं जानता। (२) यह मेरा मनोरथ अर्थात् इष्टकल्पना भूतार्थ (=वास्तविक) थी—यह मैं स्पष्ट नहीं जानता। इस पद्य में, व्यक्त रूप से जानने के प्रति द्वारपक्ष से ताडित होना हेतु है, अतः काव्यलिङ्ग अलंकार है। लक्षण के लिए, द्र० कार्यं नैवार्थैं० (पृ० १६) पर टि०।

पृष्ठ ९६

व्याकरण : धरते खलु वासवदत्ता—यहाँ धरते √धृ (भ्वा० उभय०) का लट् में रूप है, परंतु यह सकर्मक धातु है, अतः इसके साथ प्राणान् (कर्म) का प्रयोग अपेक्षित था। अथवा यहां √धृङ् (तुदा० आत्म०), जो अकर्मक धातु है, के म्रियते रूप का प्रयोग होना चाहिए था, जिसका प्रयोग भास पहले (पृ० २६ पर) कर चुका है। **बोधयित्वा**—√बुध्, णिच्+क्त्वा। **अप्रतिबोधनम्**—न प्रतिबोधनम् (नञ् तत्पु०); प्रति√बुध्+ल्युट्>अन।

अन्वय (५.८) : सखे, (सा) शय्यायाम् अवसुप्तं मां बोधयित्वा गता। पूर्वं दग्धा इति ब्रुवता रुमण्वता (अहं) वञ्चितः अस्मि।

(५.९) : यदि तावत् अयं स्वप्नः, (तद्) अप्रतिबोधनं धन्यम्। अथ अयं विभ्रमः वा स्यात्, (तद्) विभ्रमः हि (एव) मे चिरम् अस्तु।

विशेष : असंभावनीयमेतत्—यौगन्धरायण की योजना की जानकारी विदूषक को भी थी। वह यह भी जानता था कि, इस योजना के अन्तर्गत, वासवदत्ता पद्मावती के पास रहती है। फिर भी वह इस सारी बात को उदयन से छिपाए रखता है। यहाँ वह राजा द्वारा वासवदत्ता के देखे जाने की बात को 'वह सपने में दिखी होगी या वह अवन्तिसुन्दरी नामक यक्षिणी रही होगी' कहकर चतुरतापूर्वक टाल देता है। **शय्यायाम्**०—इस पद्य में उत्तरार्ध में कथित बात के प्रति पूर्वार्ध का वाक्यार्थ हेतु है, अतः यहां काव्यलिङ्ग अलंकार है (लक्षण के लिए द्र० कार्यं नैवार्थैं०, पृ० १६, पर टि०)। **यदि तावदयं**०—यहाँ प्रतिकूल पदार्थों—अप्रतिबोधन और विभ्रम—की अनुकूलता का वर्णन होने से अनुकूल अलंकार है। इसका लक्षण है : 'अनुकूलं प्रातिकूल्यमनुकूलानुबन्धि चेत्' (साद० १०.६४)। **अवन्तिसुन्दरी नाम यक्षिणी**—मगध के राजकुल में, संभव है कि,

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

आवन्तिका अपने अनुपम रूपलावण्य के कारण यक्षिणी (देवयोनि विशेष) समझी जाती रही हो, और उसे अवन्तिसुन्दरी नाम से संबोधित किया जाता रहा हो। यह भी संभव है कि यह सब-कुछ विदूषक की ही चतुर कल्पना हो।

पृष्ठ ९८

व्याकरण : नेत्रविप्रोषिताञ्जनम्—नेत्राभ्यां विप्रोषितं नेत्रविप्रोषितं (प० तत्पु०), तादृशम् अञ्जनं यस्मिन् तत् (बहु० स०)। विप्रोषित<वि प्र √ वस्+क्त। **स्वप्नेऽप्युत्पन्नसंस्पर्शः**—(स्वप्ने) उत्पन्नः संस्पर्शः आलिङ्गनं यस्य सः (अपि)। बहु० स०। अर्थदृष्ट्या यहाँ 'स्वप्नोत्पन्नसंस्पर्शोऽपि' पाठ अपेक्षित था। **रोमहर्षः**—रोम्णां हर्षः (ष० तत्पु०); =रोंगटों का खड़े हो जाना, रोमाञ्च। **मा····अनर्थं चिन्तयित्वा**—यहाँ मा के योग में क्त्वा का प्रयोग अपाणिनीय है; तु० मा इदानीमन्यद् चिन्तयित्वा (पृ० ४४) पर टि०। **अभिघातयितुम्**—अभि √ हन्, णिच्, तुमुन्। **हस्त्यश्वरथपदातीनि**—हस्तिनः च अश्वाः च रथाः च पदातयः च तेषां समाहारः हस्त्यश्वरथपदातम्; 'द्वन्द्वश्च प्राणितूर्य-सेनाङ्गानाम्', २.४.२, से समाहार द्वन्द्व में एकवद्भाव। तद् एषाम् अस्ति इति हस्त्यश्वरथपदातीनि (विजयाङ्गानि); 'अत इनिठनौ', ५.२.११५, से इनि>इन्।

अन्वय (५.१०) : स्वप्नस्य अन्ते विबुद्धेन (मया) चारित्रम् अपि रक्षन्त्याः (तस्याः) नेत्रविप्रोषिताञ्जनं दीर्घालकं मुखं दृष्टम्।

(५.११) : यः अयं बाहुः संत्रस्तया तया देव्या निपीडितः (सः) स्वप्ने अपि उत्पन्नसंस्पर्शः रोमहर्षं न मुञ्चति।

(५.१२) : ते रिपवः भिन्नाः, भवद्गुणरताः पौराः समाश्वासिताः, भवत्प्रयाणसमये या अपि पार्ष्णी तस्याः विधानं कृतम्। अरिप्रमाथजननं यत् यत् साध्यं तत् तत् मया अनुष्ठितम्, बलैः च अपि त्रिपथगा नदी तीर्णा, वत्साः च तव हस्ते।

विशेष : आरुणि—आरुणि कहाँ का राजा था, यह स्पष्ट नहीं है। कथा-सरित्सागर में भी इसका उल्लेख नहीं मिलता। स्पष्टतः यह भास की अपनी कल्पना है। **रिपवः भिन्नाः**—शत्रुओं में परस्पर फूट डाल दी गई है। शत्रुओं में भेद डालना (भेद) उन्हें वश में करने के चार उपायों में से एक है। अन्य तीन उपाय हैं साम, दान और दण्ड। **पार्ष्णी**—पार्ष्णि। सेना के पिछले भाग के लिए यह पारिभाषिक शब्द है। **भिन्नास्ते०**—यहाँ वत्सदेश के हस्तगत होने में 'भिन्नास्ते रिपवः' आदि वाक्यों का अर्थ हेतुभूत है, अतः यहाँ वाक्यार्थहेतुक काव्यलिङ्ग अलंकार है (लक्षण के लिए, द्रष्टव्य नैवार्थैः० पृ० १६, पर टि०)।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

पृष्ठ १००

व्याकरण : अरिप्रमाथजननम्—अरेः प्रमाथः (ष० तत्पु०), तस्य जननम् (ष० तत्पु०)। **विकीर्णबाणोग्रतरङ्गभङ्गे**—विकीर्णाः बाणाः विकीर्णबाणाः, उग्रतरङ्गाणां भङ्गाः उग्रतरङ्गभङ्गाः (ष० तत्पु०), विकीर्णबाणाः अग्रतरङ्गभङ्गाः यस्मिन् तत् (बहु० स०), तादृशे। **युधि**—युध् (√युध्+क्विप्) स० एक०। युद्ध के अर्थ में यह शब्द स्त्रीलिङ्ग है, परंतु यहाँ यह पुं० में प्रयुक्त हुआ है। **(अयं) नाशयामि**—आसन्न भविष्यत् अर्थ में 'वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद् वा', ३.३.१३१, से लट्।

अन्वय (५.१३) : नागेन्द्रतुरङ्गतीर्णे विकीर्णबाणोग्रतरङ्गभङ्गे महार्णवाभे युधि तं दारुणकर्मदक्षम् आरुणिम् उपेत्य नाशयामि।

विशेष : त्रिपथगा—तीन मार्गों—स्वर्ग, भूलोक और पाताल मार्गों—से जाने वाली (त्रिपथेन गच्छति इति) गङ्गा नदी। द्र० : 'स्वर्गे मन्दाकिनी गङ्गा मर्त्ये भागीरथी तथा। पाताले च भोगवती मार्गास्तस्यास्त्रयो मताः ॥', अथवा 'क्षितौ तारयते मर्त्यान् नागांस्तारयतेऽप्यधः। दिवि तारयते देवांस्तेन त्रिपथगा स्मृता ॥' **वत्साः**—प्रयाग के पश्चिम में यमुना और संभवतः गङ्गा का तटवर्ती प्रदेश, जिसकी राजधानी कौशाम्बी (वर्तमान कोसम, ज़िला इलाहाबाद) थी। उदयन इसी देश का राजा था। यहाँ इस देश के, जो आरुणि के हाथ में आ गया था, पुनः हस्तगत किए जाने की बात कही गई है। वत्साः बहुवचनान्त रूप है; देशवाचक शब्द बहु० में प्रयुक्त होते हैं। **उपेत्य०**—इस पद्य में युद्धभूमि और महासागर की सर्वाङ्गीण उपमा होने से समस्तवस्तुविषया उपमा है। उपमा के लक्षण के लिए, द्र० पृ० ६० पर टि० (पृ० १५५)।

षष्ठ अङ्क

पृष्ठ १०२

व्याकरण : रैभ्यसगोत्रः—रैभ्येन सगोत्रः (समानं गोत्रं यस्य सः—बहु० स०) इति रैभ्यसगोत्रः (तृ० तत्पु०); =रैभ्य नामक प्रसिद्ध पूर्वपुरुष के गोत्र (=कुल) में उत्पन्न। **कूर्चगुल्मलग्ना**—कूर्चानां दर्भाणां गुल्माः स्तम्बाः इति (ष० तत्पु०), तेषु लग्ना संसक्ता (स० तत्पु०)। **मोहप्रत्यागतेन**—मोहात् प्रत्यागतः इति (प० तत्पु०), तेन। **अदेशकालः**—अयोग्यः देशः अयोग्यः कालः च। यहाँ नञ् अप्राशस्त्य अर्थ में हुआ है। तु० अनवसरः (इसी पृष्ठ पर)। **भर्तुः सूर्यामुखप्रासादगतेन**—(भर्तुः) सूर्यामुखप्रासादं गतः (द्वि० तत्पु०), तेन। विनयाद् अपेतपुरुषः (प० तत्पु०) की भाँति 'सापेक्षत्वेऽपि गमकत्वात् समासः' का उदाहरण। वस्तुतः यहाँ समास नहीं होना चाहिए था।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

विशेष : काञ्चनतोरणद्वारम् अशून्यं कुरुते—यह 'द्वार पर कौन खड़ा है ?' के अर्थ में मुहावरेदार प्रयोग है। ऐसे प्रयोग के लिए, द्र० शाकु० २.७–गद्य (पृ० ६८) : 'त्वमपि स्वं नियोगम् अशून्यं कुरु'। **काञ्चुकीयः प्राप्तः वासवदत्ता-धात्री च प्रतीहारमपुस्थितौ**—यहाँ काञ्चुकीयः के बाद 'प्राप्तः' अनपेक्षित है। पृ० १०६ पर प्रतीहारी के कथन में यह नहीं है, यद्यपि राजा के कथन में यह है। **अङ्गारवती**—महासेन प्रद्योत की पत्नी, वासवदत्ता की माता। **प्रतीहारम् उपस्थितौ**—प्रतीहार (अथवा प्रतिहार) राजकुल या उसके किसी भवन के द्वार-प्रदेश को कहते हैं; इसे प्रती(ति)हारभूमि भी कहते हैं। किसी के आगमन को सूचित करना भी प्रतीहार का अर्थ है; 'अदेशकालः प्रतीहारस्य' में इसका यही अर्थ है। प्रतीहारभूमि में तैनात द्वारपालिका को प्रतीहारी कहते हैं। **सूर्यामुख-प्रासाद**—इसको दो प्रकार से समझा जा सकता है : (१) वह भवन जिसका मुख्य द्वार पूर्व दिशा की ओर हो, (२) वह भवन जिसके मुख्य द्वार पर सूर्या (जो विवाह की देवता है) की मूर्ति हो। इसके स्थान पर निम्नलिखित पाठान्तर भी प्राप्त होते हैं : (१) शय्यासुखप्रासाद– अर्थात् वह भवन जिसके सामने शयनागार हो, (२) सुयामुनप्रासाद– अर्थात् यमुना के तट पर स्थित सुन्दर भवन। यह अवधेय है कि कौशाम्बी (उदयन की राजधानी) यमुना नदी के तट पर बसी थी। आज इस स्थान पर कोसम नामक ग्राम की स्थिति है। **घोषवती**—यह उदयन की वीणा थी। यह वीणा उसे वसुनेमि नामक नाग से प्राप्त हुई थी, जिसे उसने बचपन में किसी शबर से बचाया था। प्रद्योत के सेनापति शालङ्कायन ने यह वीणा उदयन को छलपूर्वक बन्दी बनाते समय हस्तगत की, और इसे विजयोपहार के रूप में उसने राजा के समक्ष प्रस्तुत किया। राजा प्रद्योत ने यह वीणा वासवदत्ता को, उसे इसका उचित पात्र जानकर, सौंप दी। इस प्रकार यह वीणा, वासवदत्ता की संपत्ति के रूप में, पुनः उदयन को प्राप्त हो गई थी (तु० प्रतिज्ञा० २.१२-३, गद्य)। **नर्मदातीरे**—चूंकि कौशाम्बी और लावाणक यमुना के तट पर स्थित थे तथा नर्मदा की स्थिति यहाँ से बहुत दूरी पर है, अतः यहाँ 'यमुनातीरे' यह पाठ अपेक्षित है। यमुना के किनारे ही किसी झाड़ी में इस वीणा के छूट जाने और पड़े होने की संभावना की जा सकती है। यह भी संभव है कि जिसे यह वीणा मिली थी उसने भ्रमवश अथवा (इस राज्य में नहीं अपितु किसी दूरस्थ राज्य में यह मिली है—यह सूचित करने के इरादे से) जानबूझकर इसका प्राप्तिस्थान नर्मदा-तट को बताया हो।

पृष्ठ १०४

व्याकरण : श्रुतिसुखनिनदे—श्रुतिभ्यां सुखः श्रुतिसुखः (च० तत्पु०), श्रुति-

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

सुखः निनदः यस्याः सा (बहु० स०), संबोधन एकवचन। **विहगगणरजोविकीर्ण-दण्डा**—विहगानां गणः विहगगणः (ष० तत्पु०), तस्य रजः विष्ठा (ष० तत्पु०), तेन विकीर्णः व्याप्तः दण्डः यस्याः सा (बहु० स०)। **अरण्यवासम् अध्युषिता असि**—अधि √वस् के आधार (अरण्यवास) का, 'उपान्वध्याङ् वसः' (१.४.४८) से, कर्म कारकत्व (द्वितीया विभक्ति) हुआ है। **श्रोणीसमुद्वहनपार्श्वनिपीडितानि**—श्रोण्याम् अङ्के कटिभागे वा समुद्वहनं संधारणं (स० तत्पु०), तेन पार्श्वनिपीडितानि (तृ० तत्पु०) पार्श्वयोः प्रगाढालिङ्गनानि, तानि (द्वितीया)। अन्यविध व्याख्या के लिए द्र० संस्कृत टीका। **खेदस्तनान्तरसुखानि**—खेदे (वादनजनितश्रमे संजाते) स्तनान्तरे स्तनयोः मध्यभागे सुखानि सुखकराणि। यहाँ समास अनियमित प्रकार का है। वस्तुतः यहाँ 'खेदे स्तनान्तर०' पाठ अपेक्षित है। **उपगूहितानि**—उप √गुह् + क्त। यहाँ तथा निपीडित, परिदेवित और कथित (पृ० १०६) में 'नपुंसके भावे क्तः' (३.३.११४) से भाव में क्त हुआ है।

अन्वय (६.१) : श्रुतिसुखनिनदे, देव्याः स्तनयुगले जघनस्थले च सुप्ता (त्वं) विहगगणरजोविकीर्णदण्डा (सती) प्रतिभयम् अरण्यवासं कथं नु अध्युषिता असि ?

(६.२) : (या तपस्विन्याः) श्रोणीसमुद्वहनपार्श्वनिपीडितानि, खेदस्तनान्तरसुखानि उपगूहितानि, विरहे च माम् उद्दिश्य परिदेवितानि, वाद्यान्तरेषु च सस्मितानि कथितानि (न स्मरसि)।

विशेष : मिश्रविष्कम्भकः—जैसा कि प्रवेशक (पृ० ३४) की व्याख्या में पहले कहा गया है, पाँच अर्थोपक्षेपकों में से एक का नाम विष्कम्भक है। अङ्क के आरम्भ में आने वाले और भूत एवं भविष्य के कथाभागों को सूचित करने वाले अर्थोपक्षेपक को विष्कम्भक कहते हैं। यदि वह मध्यवर्ग के पात्र या पात्रों द्वारा संप्रयोजित हो तो शुद्ध-विष्कम्भक और निम्न एवं मध्य वर्गों के पात्रों द्वारा संप्रयोजित हो तो मिश्र-विष्कम्भक होता है। इसकी शास्त्रीय परिभाषा यह है : 'वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः। संक्षिप्तार्थस्तु विष्कम्भ आदावङ्कस्य दर्शितः॥ मध्येन मध्यमाभ्यां वा पात्राभ्यां संप्रयोजितः। शुद्धः स्यात् स तु संकीर्णो नीचमध्यमकल्पितः॥' (साद० ६.५५-५६)। प्रस्तुत संदर्भ में प्रतीहारी निम्नवर्ग से एवं काञ्चुकीय मध्यवर्ग से संबद्ध पात्र हैं। इस प्रकार यहाँ मिश्रविष्कम्भक की योजना है।

श्रुतिसुखनिनदे०—उदयन द्वारा अभागी वीणा को संबोधित ये शब्द शाकु० (६.११) में दुष्यन्त द्वारा अभागी अंगूठी के प्रति संबोधित शब्दों से तुलनीय हैं। घोषवती वीणा का 'श्रुतिसुखनिनदा' यह विशेषण प्रतिज्ञा० (२.१२) में इसके लिए प्रयुक्त 'श्रुतिसुखमधुरा' इस विशेषण से तुलनीय है। **प्रतिभयम्**

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

अरण्यवासम्—यहाँ प्रतिभयम् भयानक के अर्थ में प्रयुक्त है। तु० अमरकोश : 'भयंकरं प्रतिभयम्'। इस अर्थ में यह महाभारत में तथा स्वयं भास के अविमारक (पृ० ३०, ४२) में प्रयुक्त है। यहाँ अ का पूर्वरूप मानकर 'अप्रतिभयम्' पाठ भी ग्रहण किया जा सकता है; अर्थ होगा : 'अविद्यमानं प्रतिभयं (भयं) यस्य तद् अप्रतिभयं, तद् यथा स्यात् तथा (क्रियावि०)'; =भयरहित होकर। अरण्यवास शब्द अरण्यप्रदेश के अर्थ में है। **तपस्विन्याः**—यहाँ तपस्विनी शब्द 'बेचारी' इस लाक्षणिक अर्थ में प्रयुक्त है। तु० शाकु० ४.४–गद्य : 'सा तपस्विनी निर्वृता भवतु'।

पृष्ठ १०६

व्याकरण : अलं···संतप्य—यहाँ अलं उपपद होने पर प्रतिषेधवाची सम् √तप् से क्त्वा>ल्यप् हुआ है। अन्यत्र भास ने इसी भाव को व्यक्त करने के लिए 'मा···संतप्तुम्' (पृ० ११४) का प्रयोग किया है, जो अपाणिनीय है। **आहूयताम्**—आ √ह्वे, कर्मवाच्य, लोट् प्र०पु० एक०।

अन्वय (६.३) : चिरप्रसुप्तः मे कामः वीणया प्रतिबोधितः। तां देवीं तु (अहं) न पश्यामि यस्याः (इयं) घोषवती प्रिया।

विशेष : वाद्यान्तरेषु— =वीणावादन के दौरान दो रागों के अन्तराल में अथवा संगीत-स्वरों के विराम की अवधि में। **चिरप्रसुप्तः०**—इस पद्य द्वारा भास ने वासवदत्ता की प्राप्ति का, नाटकीय ढंग से, पूर्व-संकेत दिया है; वीणाप्राप्ति द्वारा उसने वासवदत्ता से संबन्धित उदयन के चिरप्रसुप्त औत्सुक्य भाव को प्रतिबोधित किया है।

पृष्ठ १०८

व्याकरण : आस्यताम्—√आस्, भाववाच्य, लोट् प्र०पु० एक०। तु० आस्यते, लट्। **कलत्रदर्शनार्हम्**—कलत्रदर्शनम् अर्हति इति सः, तम्; 'अर्हः' (३.२.१२) से √अर्ह् से अच् तथा 'उपपदमतिङ्' (२.२.१९) से उपपद-समास। **महत्**—महद् यथा स्यात्तथा (क्रियावि०)। **प्राप्तकाले**—प्राप्तः कालः इति, तस्मिन्। यहाँ 'प्राप्ते काले' पाठ अपेक्षित था : 'काले विनाशकाले प्राप्ते समुपस्थिते'।

अन्वय (६.४) : (तातः वा अम्बा वा) किं वक्ष्यति इति मे हृदयं परिशङ्कितम्। मया अपि सा कन्या अपहृता, न च रक्षिता। चलैः भाग्यैः महत् अवाप्तगुणोपघातः (अहं) पितुः जनितरोषः पुत्रः इव भीतः अस्मि।

विशेष : आर्यपुत्रस्यापरः परिग्रहः—पद्मावती के कहने का भाव यह है कि आगन्तुक उदयन की पहली पत्नी, वासवदत्ता, से संबन्धित हैं तथा वह स्वयं

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

उसकी दूसरी पत्नी है, अतः उसकी उपस्थिति पहली पत्नी के बन्धुजनों की असुविधा का कारण बन सकती है। परिग्रह का अर्थ यहाँ पत्नी है। इस अर्थ में इसके प्रयोग के लिए, तु० रघुवंश १६.८ : 'का त्वं शुभे कस्य परिग्रहो वा'। तु० अमरकोश : 'पत्नीपरिजनादानमूलशापाः परिग्रहाः'। 'अपरः परिग्रहः' का अर्थ 'दूसरा विवाह' भी लिया जा सकता है। इस स्थिति में संपूर्ण वाक्य का अर्थ होगा : 'आर्यपुत्र का दूसरा विवाह हो गया है, इस बात से वे औदासीन्य अनुभव करेंगे'। **कलत्रदर्शनार्हं जनं०**—उदयन पद्मावती की उपस्थिति में कुछ अनौचित्य स्वीकार करते हुए भी उसकी उपस्थिति को वाञ्छनीय मानता है, क्योंकि यदि वह पद्मावती की अनुपस्थिति में वासवदत्ता के स्वजनों से मिले तो वे सोचेंगे कि स्त्री-दर्शन के योग्य हमें भी राजा ने अपनी दूसरी पत्नी से नहीं मिलाया, और यह बात उन्हें खलेगी। इस प्रकार उदयन के अनुसार यदि पहले विकल्प में 'कुछ दोष' है तो दूसरे विकल्प में 'बहुत दोष' है।

किं वक्ष्यतीति०—यहाँ 'जनितरोषः पुत्रः इव' में उपमा अलंकार है (लक्षण के लिए, द्र० पृ० ६० पर टि०)। **भाग्यैश्चलैः**—इसका प्रयोग पहले भी (पृ० ६ पर) हुआ है। **महदवाप्तगुणोपघातः**—इसकी व्याख्या इस प्रकार भी की जा सकती है : अवाप्तः गुणोपघातः (गुणानाम् उपघातः, ष० तत्पु०) येन सः (बहु० स०), महत्सु (महासेनादिषु पूजनीयेषु जनेषु) अवाप्तगुणोपघातः (स० तत्पु०)। प्रो० देवधर ने 'महदवाप्य गुणोपघातं' पाठ ग्रहण किया है। 'महत्' इस स्थिति में क्रियावि० होगा। इसे 'भीतः' के साथ भी लगाया जा सकता है : महत् अतिमात्रं यथा स्यात्तथा भीतः।

पृष्ठ ११०

व्याकरण : राजवंश्यानाम् उदयास्तमयप्रभुः—(राजवंश्यानां राज्ञाम्) उदयास्तमययोः (उदयः च अस्तमयः च इति, द्वन्द्व स०, तयोः) प्रभुः समर्थः। स० तत्पु०। यह 'सापेक्षत्वेऽपि गमकत्वात्समासः' का उदाहरण है; तु० विनयादपेतपुरुषः (पृ० ६) पर टि०। **मया काङ्क्षितबान्धवः**—यहाँ भी काङ्क्षितबान्धवः में ऐसा ही समास है : मया सह काङ्क्षितं बान्धवं बन्धुभावः येन सः, अथवा मया काङ्क्षितं बान्धवं यस्य सः। बान्धव में 'ऋगन्ताच्च लघुपूर्वात्', ५.१.१३१, से अण् होगा। यहाँ 'प्रज्ञादिभ्यश्च', ५.४.३८, से स्वार्थ में अण् मानने पर इसका अर्थ 'बन्धु' होगा और 'काङ्क्षितश्चासौ बान्धवः' इस विग्रह द्वारा कर्मधा० होगा। **अपि राजा स कुशली**—यहाँ 'अपि' प्रश्नसूचक निपात है; तु० शाकु० १.१३-गद्य : 'अपि संनिहितोऽत्र कुलपतिः ?'

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

अन्वय (६.५) : इदं सर्वान्वितराज्यम् एत्य महान् प्रहर्षः, मृतसुतानिधनं पुनः

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

स्मृत्वा विषादः । दैव, भवता किं नाम न कृतं (स्यात्) यदि परैः अपहृतं राज्यं (प्रत्यानीतं) देव्याः च कुशलं स्यात् ?

(६.६) : अपि सः पृथिव्यां राजवंश्यानाम् उदयास्तमयप्रभुः मया काङ्क्षित-बान्धवः राजा कुशली ?

विशेष : यदि स्याद् राज्यं परैरपहृतं—यहाँ अर्थ की परिपूर्णता के लिए 'प्रत्यानीतम्' का अध्याहार करना होगा : 'यदि शत्रुओं द्वारा छीना गया राज्य (वापिस मिल जाता) और वासवदत्ता भी कुशलपूर्वक होती, तो, हे दैव, तुमने क्या न कर दिया होता ?' **आर्यपुत्रः**—इस शब्द का प्रयोग, नाट्यशास्त्रीय नियम के अनुसार, पत्नी अपने पति के लिए करती है। यहाँ इसका अर्थ होता है : आर्य अर्थात् श्वसुर का पुत्र। काञ्चुकीय द्वारा राजा के लिए इस शब्द का प्रयोग भास के नाट्यशास्त्र से पूर्ववर्ती होने का सूचक है। **वैदेहीपुत्रस्य**—उदयन के लिए प्रयुक्त इस विशेषण-शब्द से सूचित होता है कि उसकी माता विदेह की राजकुमारी थी, परंतु वह कौन थी यह अज्ञात है।

पृष्ठ ११२

व्याकरण : दृढम्—दृढं (√दृह्+क्त) यथा स्यात्तथा (क्रियावि०), =कठोर-तापूर्वक। **मम प्रवासदुःखार्ता**—(मम) प्रवासस्य दुःखं (ष० तत्पु०), तेन ऋता (तृ० तत्पु०)। 'सापेक्षत्वेऽपि गमकत्वात्समासः' का उदाहरण; तु० विनयादपेत-पुरुषः (पृ० ६) पर टि०। दुःखार्ता में 'ऋते च तृतीयासमासे' (वार्त्तिक) से वृद्धि हुई है।

अन्वय (६.७) : ये अपि कातराः अशक्ताः वा तेषु उत्साहः न जायते। प्रायेण हि नरेन्द्रश्रीः सोत्साहैः एव भुज्यते।

(६.८) : पूर्वं तावत् अहम् अवजितः (अपि) सुतैः सह लालितः। मया कन्या दृढम् अपहृता, भूयः च न रक्षिता। तस्याः च निधनम् अपि श्रुत्वा मयि (तस्य) तथा एव स्वता। ननु यद् उचितान् वत्सान् प्राप्तुम् (आशक्नवम्), अत्र हि नृपः कारणम्।

(६.९) : ननु षोडशान्तःपुरज्येष्ठा पुण्या नगरदेवता मम प्रवासदुःखार्ता माता कुशलिनी ?

विशेष : प्रायेण हि नरेन्द्रश्रीः०—यह भाव संस्कृत साहित्य में अनेकत्र प्राप्त होता है; तु० मृच्छकटिक ४.५-गद्य : 'साहसे श्रीः प्रतिवसति'। प्रस्तुत पद्य में अप्रस्तुत का कथन एवं उससे (आप शत्रु द्वारा अपहृत राज्य को पुनः प्राप्त करके उसका सानन्द भोग कर रहे हैं—इस) प्रस्तुत की प्रतीति होने से अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार है। इसका लक्षण है : 'अप्रस्तुतात् प्रस्तुतं चेद् गम्यते

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

पञ्चधा ततः । अप्रस्तुतप्रशंसा स्यात्' (साद० १०.५६) । हृढमपहृता०—उदयन के मन को यह बात रह रहकर सालती है । पहले भी वह कह चुका है : 'कन्या मयाप्यपहृता न च रक्षिता सा' (पृ० १०८) । षोडशान्तःपुरज्येष्ठा—यहाँ अन्तःपुर 'राजपत्नी' के लाक्षणिक अर्थ में प्रयुक्त है । इस रूप में इसके प्रयोग के लिए, द्र० शाकु० २.१७–गद्य : 'कदाचिदस्मत्प्रार्थनाम् अन्तःपुरेभ्यः कथयेत्'।

पृष्ठ ११४

व्याकरण : मेदानीं भर्ता·· संतप्तुम्—यहाँ मा के योग में तुमुन् का प्रयोग अपाणिनीय है । शुद्ध प्रयोग होगा : 'अलम् इदानीं संतप्य' (जैसा कि स्वयं लेखक ने पृ० १०६ पर प्रयोग किया है) । **वनानां तुल्यधर्मः**—(वनानां) तुल्यः धर्मः यस्य सः । 'सापेक्षत्वेऽपि गमकत्वात्समासः' का उदाहरण । यहाँ 'धर्मादनिच् केवलात्' (५.४.१२४) से अनिच्>अन् समासान्त होकर 'तुल्यधर्मा' पाठ अपेक्षित था । **रुह्यते**—यहाँ कर्तृवाच्य में 'रोहति' पाठ अपेक्षित था ।

अन्वय (६.१०) : मृत्युकाले कः कं रक्षितुं शक्तः ? रज्जुच्छेदे के घटं धारयन्ति ? एवं वनानां तुल्यधर्मः लोकः काले काले छिद्यते रुह्यते च ।

(६.११) : महासेनस्य दुहिता, मे शिष्या देवी प्रिया च सा मया देहान्तरेषु अपि स्मर्तुं कथं न शक्या ?

विशेष : उपरताप्यनुपरता०—यह भाव प्रथम अङ्क (पृ० २८) में ब्रह्मचारी के इन शब्दों से तुलनीय है : 'भर्तृस्नेहात्सा हि दग्धाप्यदग्धा' (१.१३) । **कः कं शक्तो रक्षितुं०**—यहाँ रस्सी के टूट जाने पर घड़े को न पकड़ सकने के दृष्टान्त की योजना से दृष्टान्त अलंकार है । इस अलंकार का लक्षण है : 'दृष्टान्तस्तु सधर्मस्य वस्तुनः प्रतिबिम्बनम्' (साद० १०.५०) । पद्य के उत्तरार्ध में उपमा अलंकार है । **महासेनस्य दुहिता०**—उदयन वासवदत्ता को जन्म-जन्मान्तर में भी नहीं भूल सकता । इसके हेतु के रूप में उपस्थापित हैं : उसका महासेन की पुत्री होना, उसकी अपनी शिष्या होना, देवी (रानी) होना तथा प्रिया होना । उसके द्वारा, स्वप्न में भी, वासवदत्ता को इन शब्दों में संबोधित करना इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है : 'हा अवन्तिराजपुत्रि, हा प्रिये, हा प्रियशिष्ये' (पृ० ६२-६४); तु० उक्त पर टि० भी । पद्य के उत्तरार्ध में भाव की अभिव्यञ्जना अटपटे ढंग से हुई है । यहां कथ्य भाव की समीचीन अभिव्यञ्जना इस प्रकार हो सकती थी ; 'विस्मर्तुं सा कथं शक्या मया देहान्तरेष्वपि' । इस पद्य में काव्यलिङ्ग तथा अर्थापत्ति अलंकार हैं । काव्यलिङ्ग के लक्षण के लिए द्र० १.६, पृ० १६, पर टि० । अर्थापत्ति का लक्षण है : 'दण्डापूपिकयान्यार्थागमोऽर्थापत्तिरिष्यते' (साद० १०.८३) । यहाँ 'कथं शक्या ?' से 'न कथमपि शक्या' इस अन्य अर्थ का आगम हुआ है,

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

अतः यहाँ उक्त अलंकार है। **गोपालकपालकौ**—ये दोनों महासेन के पुत्र हैं। प्रतिज्ञा० (२.१३) में इनके नाम हैं गोपालक और अनुपालक : 'अर्थशास्त्रगुणग्राही ज्येष्ठो गोपालकः सुतः। गान्धर्वद्वेषी व्यायामशाली चाप्यनुपालकः ॥'

पृष्ठ ११६

व्याकरण : अनग्निसाक्षिकम्—अग्निः साक्षी यस्मिन् कर्मणि तद् अग्निसाक्षिकम् (बहु० स०), न अग्निसाक्षिकम् इति अनग्निसाक्षिकम् (नञ् तत्पु०)। **अनिर्वृत्तविवाहमङ्गलः**—अनिर्वृत्तं (न निर्वृत्तम् इति) विवाहमङ्गलं (विवाहस्य मङ्गलम् इति) यस्य सः (बहु० स०)। **राज्यलाभशतात्**—राज्यस्य लाभाः राज्यलाभाः (ष० तत्पु०), तेषां शतं, तस्मात्। यहाँ भेदकथन में 'पञ्चमी विभक्ते' (२.३.४२) से पञ्चमी विभक्ति हुई है।

अन्वय (६.१२) : एतत् वाक्यं राज्यलाभशतात् अपि प्रियतरम् यत् अपराद्धेषु अपि अस्मासु स्नेहः (तया) न विस्मृतः।

(६.१३) : अस्य स्निग्धस्य वर्णस्य दारुणा विपत्तिः कथम्? इदं च मुखमाधुर्यम् अग्निना कथं दूषितम्?

विशेष : अनग्निसाक्षिकम्—विवाह में यज्ञीय अग्नि का साक्ष्य अनिवार्य माना जाता था। तु० कुमारसंभव ७.८३ : 'वह्निर्विवाहं प्रति कर्मसाक्षी'; दशकुमारचरित, पृ० ११६ : 'पुनरपीमं जातवेदसं साक्षीकृत्य स्वहृदयेन दत्ता'। **प्रतिकृति चित्रफलकायामालिख्य**—प्रतिकृति के आलेखन से दोनों के विवाह का अनुष्ठान प्रतिज्ञा० (४.२३-गद्य) में इस प्रकार वर्णित हुआ है : 'तच्चित्रफलकस्थयोर्वत्सराजवासवदत्तयोर्विवाहोऽनुष्ठीयताम् इति'।

पृष्ठ ११८

व्याकरण : प्रहृष्टोद्विग्ना—पूर्वं प्रहृष्टा पश्चात् उद्विग्ना इति। 'पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराण०' (२.१.४६) से कर्मधा०। **व्यक्तम्**—व्यक्तं यथा स्यात्तथा (क्रियावि०)। तु० पृ० ६४ पर टि०।

अन्वय (६.१४) : यदि (सा) विप्रस्य भगिनी, (तद्) व्यक्तम् अन्या भविष्यति। लोके परस्परगता रूपतुल्यता दृश्यते।

विशेष : परपुरुषदर्शनं परिहरति—तु० पृ० २२। **यदि विप्रस्य भगिनी०**—यहाँ उत्तरार्ध में कथित सामान्य से पूर्वार्ध में कथित विशेष का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलंकार है (लक्षण द्र० १.४, पृ० ८, पर टि०)। आवन्तिका के कोई अन्य स्त्री होने के प्रति 'विप्रस्य भगिनी' इन पदों का अर्थ हेतु है, अतः यहाँ काव्यलिङ्ग (लक्षण द्र० ९.६, पृ० १२ पर टि०) भी है।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

पृष्ठ १२०

व्याकरण : कामम्—'यद्यपि' के अर्थ में निपात, अथवा 'स्वच्छन्दता-पूर्वक' (क्रियावि०)। तु० पृ० ७६ पर टि०। **त्वर्यताम्**— √त्वर्, कर्मवाच्य, लोट् प्र०पु० एक०।

अन्वय (६.१५) : नृपतेः हितार्थं राजमहिषीं प्रच्छाद्य कामं मया इदं हितम् इति अवेक्ष्य कृतं, (तदपि) मम कर्मणि सिद्धे अपि नाम असौ पार्थिवः किं वक्ष्यति इति मे हृदयं परिशङ्कितम्।

विशेष : अभ्यन्तरसमुदाचारेण— =अभ्यन्तर भवन के अनुकूल उचित शिष्टाचार के साथ। 'समुदाचार' के 'उचित मर्यादा अथवा व्यवहार' के अर्थ में प्रयोग के लिए, द्र० पृ० ३८, ५६, १२४। **किं वक्ष्यतीति०**—पद्य का यह चरण ६.४ (पृ० १०८) के प्रथम चरण के रूप में पहले भी आया है।

पृष्ठ १२२

व्याकरण : निर्यातय—निर् √यत् (चुरा० उभय०), 'वापिस करना, लौटाना', लोट् म०पु० एक०। तु० निर्यातयितव्यः भी। **साक्षिमत्**—साक्षिमत् साक्षियुक्तं यथा स्यात्तथा (क्रियावि०)। **भारतानाम्**—भरतस्य गोत्रापत्यं पुमान् भारतः, ते भारताः तेषाम्। **देशिकः**—दिश्यते इति देशः (उपदेशः), सः अस्यास्ति इति देशिकः (देश+ठन्>इक); =गुरु अथवा पथप्रदर्शक (तु० आप्टे)।

अन्वय (६.१६) : (त्वं) भारतानां कुले जातः, विनीतः ज्ञानवान् शुचिः राजधर्मस्य (च) देशिकः (असि), तत् बलात् हर्तुं न अर्हसि।

विशेष : रैभ्यः—रैभ्य के गोत्र में उत्पन्न अर्थ में लाक्षणिक प्रयोग (तु० पृ० १०२)। **अधिकरणम्**— =न्यायाधिकरण। यहां इसका लक्ष्य अर्थ 'साक्षी' है (तु० प्रो० देवधर भी)। **भारतानां कुले जातः**—प्रतिज्ञा० (४.१७) में भी उदयन का इन्हीं शब्दों में आख्यान किया गया है। इतिहास के अनुसार, उदयन भरत-वंशी परीक्षित् (अर्जुन का पौत्र) के बाद छब्बीसवां राजा था। प्रस्तुत पद्य में 'बलाद् हर्तुं न अर्हसि' में 'भारतानां कुले जातः' इत्यादि पदों का अर्थ हेतुभूत है, अतः यहां काव्यलिङ्ग अलंकार है (लक्षण के लिए द्र० १.६ पर टि०)।

पृष्ठ १२४

व्याकरण : संक्षिप्यताम्—सम् √क्षिप्, 'हटाना', कर्मवाच्य, लोट्, प्र० पु० एक०। **मन्त्रितैः**— √मन्त्र् से 'नपुंसके भावे क्तः', ३.३.११४, से भाव में

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

क्त हुआ है। **मज्जमानाः**— √मज्ज्+शानच्। यह धातु तुदा० पर० है, अतः 'मज्जन्तः' रूप अपेक्षित है।

अन्वय (६.१७) : किं नु इदं सत्यम् (उत) स्वप्नः ? सा मया भूयः दृश्यते। तदा एवम् एव दृष्टया अनया अपि अहं वञ्चितः (आसम्)।

(६.१८) : मज्जमानाः वयं मिथ्योन्मादैः च युद्धैः च शास्त्रदृष्टैः च मन्त्रितैः भवद्यत्नैः खलु समुद्धृताः।

विशेष : यवनिका—अवगुण्ठन, घूंघट। सामान्यतः यह परदे के अर्थ में प्रयुक्त होता है। इसका दूसरा रूप जवनिका है। तु० अमरकोश : 'प्रतिसीरा जवनिका स्यात्तिरस्करिणी च सा'। **दृष्टया वञ्चितस्तदा**— यहाँ 'तदा' से अभिप्राय स्वप्नदर्शन के समय से है; तु० पृ० ६४-६८। **मिथ्योन्मादैः**—यहाँ प्रतिज्ञा० में यौगन्धरायण के कृत्रिम उन्माद की ओर संकेत है। अपने उन्मादपूर्ण व्यवहार से ही यौगन्धरायण उदयन को उज्जयिनी के बन्दीगृह से छुड़ा सका था। **शास्त्र-दृष्टैः मन्त्रितैः**—संधि, विग्रह आदि के संबन्ध में शास्त्र-निर्दिष्ट प्रकार से दी गई मन्त्रणाओं द्वारा जो वह एक मन्त्री के रूप में उदयन को देता रहता था। **युद्धैः**—जैसे, आरुणि के साथ किए गए युद्ध (जिसमें यौगन्धरायण की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी) द्वारा। **सखीजनसमुदाचारेण**—सखीजनोचित व्यवहार द्वारा। यहाँ 'समुदाचार' व्यवहार अर्थ में है, परंतु इसी वाक्य में 'अतिक्रान्तः समुदाचारः' में आया 'समुदाचार' शब्द शिष्टाचार या उचित मर्यादा के अर्थ में है (तु० पृ० ३८, ५६, १२० भी)। **अर्थिस्वं नाम शरीरम् अपराध्यति**— =निश्चय से (नाम) यहाँ अर्थी (=याचक अर्थात् यौगन्धरायण) का (धरोहर रूप) स्व अर्थात् धन (=स्वरूप मेरा) शरीर ही अपराधी है। अर्थात् शिष्टाचार का उल्लङ्घन करने का अपराध तुम्हारा नहीं है, अपितु यह मेरे अपने शरीर का अपराध है जो याचक-भूत यौगन्धरायण की संपत्ति था और तुम्हारे पास धरोहर के रूप में निक्षिप्त था।

पृष्ठ १२६

व्याकरण : का कृता ते बुद्धिः—यहाँ 'त्वया' के स्थान पर 'ते' (षष्ठी) का प्रयोग 'षष्ठी शेषे' (२.३.५०) के अनुसार शेषत्व-विवक्षा में षष्ठी का उदाहरण है। **देव्याः कुशलनिवेदनार्थम्**—(देव्याः) कुशलस्य निवेदनाय इदं (च० तत्पु०), तद् यथा स्यात्तथा (क्रियावि०)। यह सापेक्ष समास है; तु० विनयादपेतपुरुषः (पृ० ६) पर टि०।

अन्वय (६.१६) : नः राजसिंहः इमां सागरपर्यन्तां हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम् एकातपत्रां महीं प्रशास्तु।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

विशेष : कौशाम्बीमात्रं परिपालयामि इति—अर्थात् (आपके मन्त्री के रूप में) केवल कौशाम्बी (वत्स की राजधानी) का परिपालन अथवा प्रशासन कर रहा हूँ (केवल कौशाम्बी मेरे—अर्थात् आपके—अधिकारक्षेत्र में रह गई है, शेष राज्यभाग शत्रुओं के हाथ में चला गया है) इसलिए। **पुष्पकभद्रादिभिः०**—तु० पृ० १२ पर यौगन्धरायण का स्वगतकथन। यौगन्धरायण के कहने का अभिप्राय है : (१) पद्मावती आपकी पत्नी बनेगी, (२) अन्त में वासवदत्ता को आपके संमुख उपस्थापित करते समय पद्मावती वासवदत्ता के चरित्र के संबन्ध में विश्वास दिलाने में साक्षी बनेगी (तु० पृ० २०), तथा (३) वासवदत्ता सुखपूर्वक रहेगी। **भरतवाक्यम्**—नाटक की समाप्ति पर सभी नटों द्वारा पठित आशीर्वादात्मक श्लोक को भरतवाक्य कहते हैं। नाट्यशास्त्र के प्रवर्तक भरत मुनि के प्रति आदर-भाव प्रकट करने के लिए इसका नाम 'भरतवाक्य' रखा गया है। भरत को यहाँ, भरत मुनि के संबन्ध से, नट का वाचक भी माना जा सकता है; इस स्थिति में भरतों अर्थात् नटों के मङ्गलकामनात्मक वचन को भरतवाक्य माना जाएगा। भरतवाक्य के रूप में यह श्लोक प्रतिज्ञा०, अविमारक, पञ्चरात्र, बालचरित तथा अभिषेक में भी उपलब्ध होता है। भास ने यहाँ बिना उपयुक्त अवतरणिका के भरतवाक्य की योजना की है। उत्तरवर्ती नाटकों में प्रायः निम्नलिखित प्रकार की अवतरणिका प्राप्त होती है : नाटक का कोई पात्र कहता है—'किं ते भूयः प्रियमुपकरोमि ?' नायक उत्तर में कहता है—'किमतः परमपि प्रियमस्ति ? तथापीदमस्तु—(भरतवाक्य के रूप में श्लोक)'। **राजसिंहः**—राजसिंह किसी समकालीन राजा का नाम हो सकता है अथवा 'राजा सिंहः इव' इस अर्थ में सामान्य राजा का अथवा स्वयं उदयन का बोधक हो सकता है। **इति स्वप्नवासवदत्तमवसितम्**—त्रिवेन्द्रम से प्रकाशित सभी नाटकों की समाप्ति इसी प्रकार के शब्दों से होती है।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

परिशिष्ट

प्रथम परिशिष्ट : नाटक में प्रयुक्त छन्द

१. **अनुष्टुभ्** : आठ वर्णों वाले चार चरणों से युक्त समवृत्त।

लक्षण : श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम्। द्विचतुष्पादयो-र्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः ॥, अर्थात् इसके चारों चरणों में पाँचवाँ वर्ण लघु (।) एवं छठा वर्ण गुरु (ऽ) होता है, और सातवाँ वर्ण दूसरे-चौथे चरणों में लघु एवं पहले-तीसरे चरणों में गुरु होता है।

उदाहरण : **नृत्यंर्मग ध रा ज स्य, स्निग्धैः कन्या नु गा मि भिः।**
। ऽ ऽ   । ऽ ।

धृष्टमुत्सा यं ते स बंस्, तपोवन ग तो ज नः ॥ (१.२)
। ऽ ऽ   । ऽ ।

विशेष : नाटक में अन्य प्रयोग-स्थल : १. ७, १०, १५; ४. ४, ६, ८, ९, १०; ५. ६, ७, ८, ९, १०, ११; ६. ३, ६, ७, ९, ११, १२, १३, १४, १६, १७, १८, १९ =कुल २७ बार।

२. **उपेन्द्रवज्रा** : ग्यारह वर्णों वाले चार चरणों से युक्त, त्रिष्टुभ् श्रेणी का समवृत्त।

लक्षण : उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ।, अर्थात् इसके प्रत्येक चरण में क्रमशः जगण (। ऽ ।), तगण (ऽ ऽ ।), जगण (। ऽ ।) एवं दो गुरु (ऽ ऽ) होते हैं।

उदाहरण :

उपेत्य नागेन्द्र तुरङ्गतीर्णे, तमार्र्णण दारुणकर्मदक्षम्।
। ऽ । ऽ ऽ । । ऽ । ऽ ऽ   । ऽ । ऽ ऽ । । ऽ । ऽ ऽ
जगण तगण जगण ग ग   जगण तगण जगण ग ग

विकीर्णबाणोग्रतरङ्गभङ्गे, महार्णवाभे युधि नाशयामि ॥ (५.१३)

विशेष : नाटक में अन्यत्र अप्रयुक्त।

३. **उपजाति** : ग्यारह वर्णों वाले चार चरणों से युक्त, त्रिष्टुभ् श्रेणी का समवृत्त।

लक्षण : अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्ताः।, अर्थात् इन्द्रवज्रा [=तगण (ऽ ऽ ।), तगण (ऽ ऽ ।), जगण (। ऽ ।) एवं दो गुरु (ऽ ऽ)] और उपेन्द्रवज्रा के चरणों के मिश्रण से यह छन्द बनता है।

उदा० : **स्मराम्य वन्त्याधि पतेः सुतायाः,**
। ऽ । ऽ ऽ । । ऽ । ऽ ऽ
जगण तगण जगण ग ग   =उपेन्द्रवज्रा

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

प्रस्थान काले स्व जनं स्म रन्त्याः ।

ऽऽ। ऽऽ । ।ऽ। ऽ ऽ

तगण तगण जगण ग ग =इन्द्रवज्रा

बाष्पं प्रवृत्तं नयनान्तलग्नं, =इन्द्रवज्रा

स्नेहान्ममैवोरसि पातयन्त्याः ॥ =इन्द्रवज्रा (५.५)

विशेष : नाटक में अन्यत्र अप्रयुक्त ।

४. **शालिनी :** ग्यारह वर्णों वाले चार चरणों से युक्त, त्रिष्टुभ् श्रेणी का समवृत्त।

लक्षण : शालिन्युक्ता म्तौ तगौ गोऽब्धिलोकैः ।, अर्थात् इसके प्रत्येक चरण में क्रमशः एक मगण (ऽऽऽ), दो तगण (ऽऽ।) और दो गुरु (ऽऽ) होते हैं, एवं चौथे वर्ण के बाद यति होती है ।

उदाहरण :

नैवेदा नीं ताद्द शाश्चक्र वाका, नैवाप्य न्ये स्त्रीवि शेषैर्वि युक्ताः ।

ऽऽऽऽ ऽ। ऽऽ। ऽऽ ऽऽ। ऽ ऽ। ऽऽ। ऽऽ

मगण तगण तगण ग ग मगण तगण तगण ग ग

धन्या सा स्त्री यां तथा वेत्ति भर्ता, भर्तृस्नेहात्सा हि दग्धाप्यदग्धा ॥ (१.१३)

विशेष : अन्य प्रयोग-स्थल : ४. ७; ६. १० =कुल ३ बार।

५. **वैश्वदेवी :** बारह वर्णों वाले चार चरणों से युक्त, जगती श्रेणी का समवृत्त।

लक्षण : पञ्चाश्वैश्छिन्ना वैश्वदेवी ममौ यौ ।, अर्थात् इसके प्रत्येक चरण में क्रमशः दो मगण (ऽऽऽ) और दो यगण (।ऽऽ) होते हैं एवं पाँचवें वर्ण के बाद यति होती है ।

उदाहरण :

कार्यं नै वार्थैर्ना पि भोगै र्न वस्त्रै, र्नाहं का षायं वृ त्तिहेतोः प्रपन्नः ।

ऽऽऽ ऽऽऽ । ऽऽ। ऽऽ ऽऽऽ ऽऽऽ। ऽऽ। ऽऽ

मगण मगण यगण यगण मगण मगण यगण यगण

धीरा कन्येयं दृष्टधर्मप्रचारा, शक्ता चारित्रं रक्षितुं मे भगिन्याः ॥ (१.६)

विशेष : नाटक में अन्यत्र अप्रयुक्त ।

६. **वसन्ततिलका :** चौदह वर्णों वाले चार चरणों से युक्त, शक्करी श्रेणी का समवृत्त।

लक्षण : उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः ।, अर्थात् इसके प्रत्येक चरण में क्रमशः एक तगण (ऽऽ।), एक भगण (ऽ।।), दो जगण (।ऽ।) और दो गुरु (ऽऽ) होते हैं ।

उदाहरण : पूर्वं त्व याप्यभि मतं ग तमेव मासीच्-,

ऽऽ। ऽ।। ।ऽ। ।ऽ। ऽऽ

तगण भगण जगण जगण ग ग

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

छ्लाघ्य गमिष्यसि पुनर्विजयेन भर्तुः ।

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

कालक्रमेण जगतः परिवर्तमाना,

चक्रारपङ्क्तिरिव गच्छति भाग्यपङ्क्तिः ॥ (१.४)

विशेष : अन्य प्रयोग-स्थल : १. ६, ११; ४. २; ५. १, २, ३; ६. २, ४, ५, १५ =कुल ११ बार।

७. **शिखरिणी :** सत्रह वर्णों वाले चार चरणों से युक्त, अत्यष्टि श्रेणी का समवृत्त।

लक्षण : रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी।, अर्थात् इसके प्रत्येक चरण में क्रमशः यगण (।ऽऽ), मगण (ऽऽऽ), नगण (।।।), सगण (।।ऽ), भगण (ऽ।।) और लघु-गुरु (।ऽ) होते हैं, एवं छठे और ग्यारहवें वर्णों के बाद यति होती है।

उदाहरण : **अनाहा रे तुल्यः सतत रुदित क्षामव दनः,**

।ऽऽ ऽऽऽ ।।। ।।ऽ ऽ।। ।ऽ
यगण मगण नगण सगण भगण ल ग

शरीरे संस्कारं नृपतिसमदुःखं परिवहन् ।

दिवा वा रात्रौ वा परिचरति यत्नैर्नरपतिं,

नृपः प्राणान्सद्यस्त्यजति यदि तस्याप्युपरमः ॥ (१.१४)

विशेष : अन्य प्रयोग-स्थल : १. १६ = कुल २ बार।

८. **हरिणी :** सत्रह वर्णों वाले चार चरणों से युक्त, अत्यष्टि श्रेणी का समवृत्त।

लक्षण : नसमरसला गः षड्वेदैर्हयैर्हरिणी मता।, अर्थात् इसके प्रत्येक चरण में क्रमशः नगण (।।।), सगण (।।ऽ), मगण (ऽऽऽ), रगण (ऽ।ऽ), सगण (।।ऽ) और लघु-गुरु (।ऽ) होते हैं। यति छठे और दसवें वर्णों के बाद होती है।

उदाहरण : **अहम वजितः पूर्वं ता वत्सुतैः सह ला लितो,**

।।। ।।ऽ ऽऽऽ ऽ।ऽ ।।ऽ ।ऽ
नगण सगण मगण रगण सगण ल ग

दृढमपहृता कन्या भूयो मया न च रक्षिता।

निधनमपि च श्रुत्वा तस्यास्तथैव मयि स्वता,

ननु यदुचितान् वत्सान्प्राप्तुं नृपोऽत्र हि कारणम् ॥ (६.८)

विशेष : नाटक में अन्यत्र अप्रयुक्त।

९. **शार्दूलविक्रीडित :** उन्नीस वर्णों वाले चार चरणों से युक्त, अतिधृति श्रेणी का समवृत्त।

लक्षण : सूर्याश्वैर्मसजस्तताः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम्।, अर्थात् इसके प्रत्येक चरण में क्रमशः मगण (ऽऽऽ), सगण (।।ऽ), जगण (।ऽ।), सगण (।।ऽ), दो तगण (ऽऽ।) और एक गुरु

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

(ऽ) होते हैं । यति बारहवें वर्ण के बाद होती है ।

उदा० : **धीरस्या श्रमसं स्थितस्य वसत स्तुष्टस्य वन्यैः फ लै-**

ऽऽऽ ।।ऽ ।ऽ। ।।ऽ ऽऽ। ऽऽ। ऽ

मगण सगण जगण सगण तगण तगण ग

र्मानार्हस्य जनस्य वल्कलवतस्त्रासः समुत्पाद्यते ।

उत्सिक्तो विनयादपेतपुरुषो भाग्यैश्चलैर्विस्मितः,

कोऽयं भो निभृतं तपोवनमिदं ग्रामीकरोत्याज्ञया ॥ (१.३)

विशेष : अन्य प्रयोग-स्थल : १. ८, १२; ४. १; ५. ४, १२ =कुल ६ बार।

१०. पुष्पिताग्रा : सम चरणों में तेरह और विषम चरणों में बारह वर्णों वाला अर्धसमवृत्त ।

लक्षण : अयुजि नयुगरेफतो यकारो युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा ।, अर्थात् इसके विषम चरणों में क्रमशः दो नगण (।।।), एक रगण (ऽ।ऽ) और एक यगण (।ऽऽ) तथा सम चरणों में क्रमशः एक नगण (।।।), दो जगण (।ऽ।), एक रगण (ऽ।ऽ) और एक गुरु (ऽ) होते हैं ।

उदाहरण :

परिह रतु भ वान्नृपा पवादं, न परु षमाश्र मवासि षु प्रयो ज्यम् ।

।।। ।।। ऽ।ऽ ।ऽऽ ।।। ।ऽ। ।ऽ। ऽ।ऽ ऽ

नगण नगण रगण यगण नगण जगण जगण रगण ग

नगरपरिभवान् विमोक्तुमेते, वनमभिगम्य तपस्विनो वसन्ति ।।(१.५)

विशेष : अन्य प्रयोग-स्थल : ६. १ = कुल २ बार ।

११. आर्या : मात्राओं की संख्या पर आधारित मात्रिक छन्द ।

लक्षण : यस्याः पादे प्रथमे द्वादश मात्रास्तथा तृतीयेऽपि । अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश सार्या ।।, अर्थात् इसके प्रथम चरण में बारह, द्वितीय में अठारह, तृतीय में बारह और चतुर्थ में पन्द्रह मात्राएं होती हैं ।

उदा० : **उदयनवेन्दुसवर्णा (=१२) वासवदत्ताबलौ बलस्य त्वाम् । (=१८)**

पद्मावतीर्णपूर्णौ (=१२) वसन्तकम्रौ भुजौ पाताम् (=१५)।।(१.१)

विशेष : अन्य प्रयोग-स्थल : ४. ३, ५ = कुल ३ बार ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

द्वितीय परिशिष्ट : नाटक में आए सुभाषित

१. अनतिक्रमणीयो हि विधिः । पृ० ७२
२. अनिर्ज्ञातानि दैवतान्यवधूयन्ते । ८
३. अन्यासनपरिग्रहेणाल्प इव स्नेहः प्रतिभाति । ६२
४. अयुक्तं परपुरुषसंकीर्तनं श्रोतुम् । ४६
५. अर्थित्वं नाम शरीरमपराध्यति । १२४
६. आगमप्रधानानि सुलभपर्यवस्थानानि महापुरुषहृदयानि भवन्ति । ४०
७. एवं लोकस्तुल्यधर्मो वनानां काले काले छिद्यते रुह्यते च । ११४
८. कः कं शक्तो रक्षितुं मृत्युकाले रज्जुच्छेदे के घटं धारयन्ति ? ११४
९. कलत्रदर्शनार्हं जनं कलत्रदर्शनात्परिहरतीति बहुदोषमुत्पादयति । १०८
१०. कातरा येऽप्यशक्ता वा नोत्साहस्तेषु जायते । ११२
११. कालक्रमेण जगतः परिवर्तमाना चक्रारपंक्तिरिव गच्छति भाग्यपंक्तिः । ८
१२. गुणानां वा विशालानां......॥४.१० ७८
१३. तथा परिश्रमः परिखेदं नोत्पादयति यथायं परिभवः । ८
१४. तपोवनानि नामातिथिजनस्य स्वगेहम् । १४
१५. तस्मिन् सर्वमधीनं हि यत्राधीनो नराधिपः । २८
१६. दुःखं त्यक्तुं बद्धमूलोऽनुरागः । ७२
१७. न परुषमाश्रमवासिषु प्रयोज्यम् । १०
१८. नहि सिद्धवाक्यान्युत्क्रम्य गच्छति विधिः सुपरीक्षितानि । २०
१९. परस्परगता लोके दृश्यते रूपतुल्यता । ११८
२०. प्रद्वेषो बहुमानो वा संकल्पादुपजायते । १२
२१. प्रायेण हि नरेन्द्रश्रीः सोत्साहैरेव भुज्यते । ११२
२२. यात्रा त्वेषा यद् विमुच्येह बाष्पं प्राप्तानृण्या याति बुद्धिः प्रसादम् । ७२
२३. सत्कारो हि नाम सत्कारेण प्रतीष्टः प्रीतिमुत्पादयति । ७८
२४. सदाक्षिण्यस्य जनस्य परिजनोऽपि सदाक्षिण्य एव भवति । ७६
२५. सर्वजनमनोभिरामं खलु सौभाग्यं नाम । ३८
२६. सर्वजनसाधारणमाश्रमपदं नाम । २२
२७. साक्षिमान्न्यासो निर्यातयितव्यः । १२२
२८. सुखमर्थो भवेद्दातुं......॥१.१० १८
२९. स्त्रीस्वभावस्तु कातरः । ७६
३०. स्मृत्वा स्मृत्वा याति दुःखं नवत्वम् । ७२

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

तृतीय परिशिष्ट : नाटक में प्रयुक्त पारिभाषिक शब्द

शब्द	नाटक में प्रयोग-स्थल	टिप्पणियों में व्याख्या-स्थल
अङ्क	पृ० ६	पृ० १३५
अपवारितम् (अपवार्य)	७६	१६२
अर्थोपक्षेपक (द्र० प्रवेशक)	—	१४६
आकाशभाषित	३४ (संकेतित)	१४५
आत्मगतम् (द्र० स्वगतम् भी)	१०	१३८
काञ्चुकीय (कञ्चुकी)	८	१३७
जनान्तिकम्	३० (संकेतित)	१४५
नान्दी	२	१३१
नेपथ्य	२	१३३
पूर्वरङ्ग (द्र० नान्दी)	—	१३१
प्रकाशम्	१६	१३८
प्रतीहारी	१०२	१७३
प्रयोगातिशय (द्र० स्थापना)	—	१३४
प्रवेशक	३४	१४६, १५१-५२, १६४
प्रस्तावना (द्र० स्थापना)	—	१३४
भरतवाक्य	१२६	१८२
रङ्गद्वार (द्र० नान्दी)	—	१३१-३२
विदूषक	५०	१५०-५१
विष्कम्भक, मिश्र-	१०४	१४६, १५१, १७४
सूत्रधार	२	१३२
स्थापना	४	१३३-३४
स्वगतम् (द्र० आत्मगतम् भी)	१२	१३८

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

चतुर्थ परिशिष्ट : मूल एवं सहायक ग्रन्थों की सूची

मूल ग्रन्थ : (१) **भासनाटकचक्र**, सं० सी० आर० देवधर, पूना, १९६२; बलदेव उपाध्याय, वाराणसी; (२) **स्वप्नवासवदत्त**, सं० टी० गणपति शास्त्री, त्रिवेन्द्रम, १९१२; एन०एस० रजवाडे एवं एच०डी० भिडे, भावनगर, १९१६; बनारसीदास जैन एवं मदनगोपाल शास्त्री, लाहौर, १९२०; लक्ष्मणस्वरूप, लाहौर, १९२५; विजयानन्द त्रिपाठी, वाराणसी, १९२५; वी०एम० आप्टे, अहमदाबाद, १९२६; सी०आर० देवधर, पूना, १९२८; एम०आर० काले, बम्बई, १९२९; एस० राय एवं के० राय, कलकत्ता, १९३६; नारायणशास्त्री खिस्ते, वाराणसी, १९३६; ए०एस० वेताल एवं जे०एस० होसिंग, वाराणसी, १९३६; विजयानन्द शास्त्री खण्डूड़ी, दिल्ली, १९४८; नारायणराम आचार्य, बम्बई, १९४८; विजयचन्द्र शास्त्री, जालन्धर, १९५८; संसारचन्द्र, दिल्ली, १९५९; पी० एस० साने एवं एस० ए० उपाध्याय, बम्बई, १९६२; सी० एम० मेहता, बम्बई, १९६५; जयपाल विद्यालंकार, दिल्ली, १९६८; गणेशदत्त शर्मा, मेरठ, १९६८; जी० के० भट्ट, सूरत; सी० शंकरराम शास्त्री, मद्रास; कान्तानाथ शास्त्री तैलंग, वाराणसी; जगदीशलाल शास्त्री, दिल्ली; एच० आर० कर्णिक; एस० रङ्गाचार्य।

इतिहास-आलोचना-ग्रन्थ : (१) अय्यर, ए०एस०पी० : **भास**, मद्रास, १९५७; (२) उपाध्याय, बलदेव : **महाकवि भास—एक अध्ययन**, वाराणसी; (३) —: **संस्कृत साहित्य का इतिहास**, वाराणसी, १९५८; (४) कीथ, ए० बी० : **ए हिस्ट्री आफ़ संस्कृत लिटरेचर**, लण्डन, १९२०; (५)—: **संस्कृत ड्रामा**, लण्डन; १९२४; (६) कृष्णमाचारिअर, एम०: **हिस्ट्री आफ़ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर**, मद्रास, १९३७; (७) गैरोला, वाचस्पति : **संस्कृत साहित्य का इतिहास**, वाराणसी, १९६०; (८) दीक्षित, जगदीशदत्त : **भास की भाषा-संबन्धी तथा नाटकीय विशेषताएं**, दिल्ली, १९६७; (९) दे, सुशीलकुमारः **हिस्ट्री आफ़ संस्कृत लिटरेचर**, कलकत्ता, १९४७; (१०) देवधर, सी०आर० : **प्लेज ऐस्क्राइब्ड टु भास—देअर ऑथेंटिसिटी एंड मेरिट्स**, पूना, १९२७; (११) पिशारोटि, ए०के० : **भास'ज वर्क्स—ए क्रिटिसिज्म**, त्रिवेन्द्रम, १९२५; (१२) पुसालकर, ए०डी० : **भास—ए स्टडी**, बम्बई, १९४० (पुनर्मुद्रण, दिल्ली, १९६८); (१३) शास्त्री, टी० गणपति : **भास'ज वर्क्स—ए क्रिटिकल स्टडी**, त्रिवेन्द्रम, १९२५।

अन्य उद्धृत ग्रन्थ : (१) **अभिज्ञानशाकुन्तल**, कालिदास-कृत, सं० एम० आर० काले, दिल्ली, १९६९; (२) **अमरकोश**, अमरसिंह-कृत, बम्बई, १९४०; (३) **अलंकारसर्वस्व**, रुय्यक-कृत, दिल्ली, १९६५; (४) **अष्टाध्यायी**, पाणिनि-

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

कृत, मद्रास, १६३७; (५) **उत्तररामचरित**, भवभूति-कृत, सं० एम०आर० काले, बम्बई, १६३४; (६) **कथासरित्सागर**, सोमदेव-कृत, दिल्ली, १६७०; (७) **काव्य-प्रकाश**, मम्मट-कृत, सं० आचार्य विश्वेश्वर, वाराणसी, १६६७; (८) **काव्यादर्श**, दण्डि-कृत, सं० धर्मेन्द्रकुमार गुप्त, दिल्ली, १६७३; (९) **काव्यालंकारसूत्रवृत्ति**, वामन-कृत, कलकत्ता, १६२२; (१०) **कुमारसंभव**, कालिदास-कृत, वाराणसी, १६६३; (११) **कुवलयानन्द**, अप्पयदीक्षित-कृत, वाराणसी, १६६३; (१२) **कौटि-लीयार्थशास्त्र**, सं० उदयवीर शास्त्री, दिल्ली, १६७०; (१३) **दशकुमारचरित**, दण्डि-कृत, सं० एम०आर० काले, दिल्ली, १६६६; (१४) **दशरूपक**, धनंजय-कृत, वाराणसी, १६७३; (१५) **ध्वन्यालोक**, अभिनवगुप्त-कृत लोचन सहित, वाराणसी, १६६५; (१६) **नागानन्द**, हर्ष-कृत, कलकत्ता, १६१२; (१७) **नाट्य-दर्पण**, रामचन्द्र-गुणचन्द्र-कृत, बड़ौदा, १६२६; (१८) **नाट्यशास्त्र**, भरत-कृत, कलकत्ता, १६५६, १६६७; (१९) **पञ्चतन्त्र**, विष्णुशर्म-कृत, लाहौर, १६३२; (२०) **प्रियदर्शिका**, हर्ष-कृत, श्रीरंगम्, १६२७; (२१) **महाभारत**, गीता प्रेस, गोरखपुर, १६५६-५८; (२२) **मालतीमाधव**, भवभूति-कृत, सं० एम०आर० काले, दिल्ली, १६६७; (२३) **मालविकाग्निमित्र**, कालिदास-कृत, लाहौर, १६३३; (२४) **मृच्छकटिक**, शूद्रक-कृत, कलकत्ता, १६३८; (२५) **मेघदूत**, कालिदास-कृत, सं० एम०आर० काले, दिल्ली, १६६६; (२६) **रघुवंश**, कालिदास-कृत, बम्बई, १६१६; (२७) **विक्रमोर्वशीय**, कालिदास-कृत, इलाहाबाद; (२८) **वृत्त-रत्नाकर**, केदारभट्ट-कृत, लाहौर, १६४२; (२९) **शिशुपालवध**, माघ-कृत, बम्बई, १६५७; (३०) **साहित्यदर्पण**, विश्वनाथ-कृत, वाराणसी, १६४७-४८; (३१) **हर्षचरित**, बाणभट्ट-कृत, बम्बई, १६४६ ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

पञ्चम परिशिष्ट : पद्यों की अकारादिक्रम से सूची

अनाहारे तुल्यः	१.१४	पृ० २८	पूर्वं त्वयाप्यभिमतं	१.४	पृ० ८
अनेन परिहासेन	४.६	७२	पृथिव्यां राज-	६.६	११०
अस्य स्निग्धस्य	६.१३	११६	प्रच्छाद्य राजमहिषीं	६.१५	१२०
अहमवजितः पूर्वं	६.८	११२	प्रद्वेषो बहुमानो वा	१.७	१२
इमां सागरपर्यन्तां	६.१९	१२६	बहुशोऽप्युपदेशेषु	५.६	९०
इयं बाला नवोद्वाहा	४.९	७६	भारतानां कुले	६.१६	१२२
उदयनवेन्दुसवर्णा-	१.१	२	भिन्नास्ते रिपवो	५.१२	९८
उपेत्य नागेन्द्रतुरङ्ग-	५.१३	१००	भृत्यैर्मगधराजस्य	१.२	४
ऋज्वायतां च विरलां	४.२	६०	मधुमदकला मधुकरा	४.३	६४
ऋज्वायतां हि मुख-	५.३	८६	महासेनस्य दुहिता	६.११	११४
कः कं शक्तो रक्षितुं	६.१०	११४	मिथ्योन्मादैश्च	६.१८	१२४
कस्यार्थः कलशेन को	१.८	१६	यदि तावदयं स्वप्नो	५.९	९६
कातरा येऽप्यशक्ता	६.७	११२	यदि विप्रस्य भगिनी	६.१४	११८
कामेनोज्जयिनीं गते	४.१	५८	योऽयं संत्रस्तया देव्या	५.११	९८
कार्यं नैवार्थैर्नापि	१.९	१६	रूपश्रिया समुदितां	५.२	८४
किं वक्ष्यतीति हृदयं	६.४	१०८	वाक्यमेतत्प्रियतरं	६.१२	११६
किंनु सत्यमिदं स्वप्नः	६.१७	१२४	विस्रब्धं हरिणा-	१.१२	२२
खगा वासोपेताः	१.१६	३२	शय्या नावनता तथा	५.४	८६
गुणानां वा विशाला-	४.१०	७८	शय्यायामवसुप्तं मां	५.८	९६
चिरप्रसुप्तः कामो मे	६.३	१०६	शरच्छशाङ्कगौरेण	४.८	७६
तीर्थोदकानि समिधः	१.६	१२	श्रुतिसुखनिनदे कथं	६.१	१०४
दुःखं त्यक्तुं बद्धमूलो	४.७	७२	श्रोणीसमुद्वहनपार्श्व-	६.२	१०४
धीरस्याश्रमसंस्थितस्य	१.३	६	श्लाघ्यामवन्तिनृपतेः	५.१	८२
निष्क्रामन् संभ्रमेणाहं	५.७	९४	षोडशान्तःपुर-	६.९	११२
नैवेदानीं तादृशाश्चक्र-	१.१३	२६	संबन्धिराज्यमिदमेत्य	६.५	११०
पद्मावती नरपतेर्महि-	१.११	२०	सविश्रमो ह्ययं भारः	१.१५	२८
पद्मावती बहुमता	४.५	६८	सुखमर्थो भवेद्दातुं	१.१०	१८
परिहरतु भवान्नृपा-	१.५	१०	स्मराम्यवन्त्याधि-	५.५	८८
पादाक्रान्तानि पुष्पा-	४.४	६६	स्वप्नस्यान्ते विबुद्धेन	५.१०	९८

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

गच्छतः स्खलनं क्वापि

गच्छतः स्खलनं	क्वापि		समादधतु सज्जनाः
ग्रामीकरोत्याज्ञाया	पृ० ६,	पं० ११	ग्रामीकरोत्याज्ञया
जो इस	७.	११	जो अपनी आज्ञा से इस
कुसुमानि	१२,	१	कुसुमानि
मन्द्वारमुद्वहति	२८,	१३	महन्द्वारमुद्वहति
क्रीडन्तीति	३४,	१४	क्रीडन्तीत
परिश्रान्तरमणीयेन	३५,	२७	परिश्रान्तरमणीयेति
वारिता	४०,	५	वरिता
विचित्ररचरिता	४०,	२८	विचित्रचरिता
पुनरुन्मङ्क्तयाम इति	५०,	१५	पुनरुन्मङ्क्ष्याम इति
सुप्रच्छन्नायां	५०,	१८	सुप्रच्छदनायां
आवान्तिका	५३,	१३	आवन्तिका
अर्धमनःशिलापट्टकेरिव	५४,	११	अर्धमनःशिलापट्टकैरिव
दाक्षिण्यतया	५६, ५७,	३१, २६	दक्षिणतया
विभज्यमानम्	६०,	६	विभज्यमानाम्
कान्तावियुक्ता स्युः	६०,	१५	कान्तावियुक्ताः स्युः
तस्मादिहैं वासिष्यावहे	६४,	१६	तस्मादिहैवासिष्यावहे
रुद्धा खलु	६६,	४	रुद्धाः खलु
तथा समं	८३,	२०	तया समं
शार्दुलविक्रीडितम्	८८,	२७	शार्दूलविक्रीडितम्
वाद्यन्तरेपु	१०५,	३१	वाद्यान्तरेषु
त्रिया	१०६,	३२	प्रिया
देव्या सन्देशम्	११२,	१०	देव्याः सन्देशम्
रक्षितुं	११४,	८	रक्षितुं

विशेष : पृ० १४५ पर, पृ० ३२ की टि० के अन्तर्गत, १.१६ (खगा वासोपेताः ··) का अन्वय छूट गया है, जो इस प्रकार है : खगाः वासोपेताः, मुनिजनः सलिलम् अवगाढः, प्रदीप्तः अग्निः भाति, धूमः मुनिवनं प्रविचरति। अपि च दूरात् परिभ्रष्टः संक्षिप्तकिरणः असौ रविः रथं व्यावर्त्य शनैः अस्तशिखरं प्रविशति।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

अन्य छात्रोपयोगी ग्रन्थ

तर्कसंग्रह (संस्कृत व्याख्या तथा टिप्पणी एवं सरल हिन्दी व्याख्या सहित)
—नृसिंहदेव शास्त्री तथा **म.म. पं. माधवशास्त्री भांडारी** रु० 1.50

कौटलीय अर्थशास्त्र [तीन भाग] (मूल, विस्तृत हिन्दी अनुवाद, चाणक्यप्रणीत सूत्र, पारिभाषिक शब्दावली तथा श्लोकानुक्रमणी)
—उदयवीर शास्त्री रु० 25

पातञ्जल महाभाष्य [आह्निक १, २]
(विस्तृत संस्कृत तथा हिन्दी व्याख्या सहित)
—म.म. पं. माधवशास्त्री भांडारी तथा **म.म. पं. छज्जूराम शास्त्री** रु० 2.50

शुकनासोपदेश: (भाषानुवाद सहित: संस्कृत-हिन्दी-व्याख्या संवलितो विस्तृतया भूमिकया च सनाथित:) **—डा० प्रह्लादकुमार** रु० 7.50

शुकनासोपदेश (मूल, हिन्दी व्याख्या, व्याकरणादि टिप्पणियाँ)
—डा० प्रह्लादकुमार रु० 3.75

किरातार्जुनीयम् [प्रथम सर्ग] (मूल, सरल संस्कृत व्याख्या, व्याकरण-संबन्धी टिप्पण, हिन्दी अनुवाद तथा छात्रोपयोगी अन्य आवश्यक सामग्री सहित)
—प्रो० रामलाल सावल रु० 1.50

निरुक्त पंचाध्यायी [अध्याय १, २, ३, ४ तथा ७] (विस्तृत भूमिका, संक्षिप्त दुर्गाचार्य संस्कृत भाष्य, मन्त्रार्थ, हिन्दी व्याख्या, मन्त्रसूची तथा निघण्टु सहित। अन्त में परीक्षाओं में आए प्रश्नों का सम्यक्रूपेण परिशीलन भी किया गया है)
—म.म. पं. छज्जूराम शास्त्री, आचार्य भगीरथ शास्त्री आदि रु० 8.50

काव्यादर्श (आलोचनात्मक-संस्कृत-हिन्दी-व्याख्या सहित)
—डा० धर्मेन्द्रकुमार गुप्त रु० 16

वृत्तरत्नाकर ('रत्नप्रभा' संस्कृत व्याख्या तथा हिन्दी-भाषा टीका सहित)
—आचार्य नृसिंहदेव शास्त्री रु० 3.50

हितोपदेश [मित्रलाभ] (मूल, सरल संस्कृत व्याख्या, अन्वय तथा हिन्दी अनुवाद) **—पं० प्रेमनिधि शास्त्री** [illegible]

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.